बांगला देश के सन्दर्भ में

विष्णुकान्त शास्त्री

बांगलादेश

हिन्दी प्रचारक संस्थान

वाराणसी * लखनऊ * कलकत्ता

विष्णुकान्त शास्त्री

अपनी माँ
श्रीमती रूपेश्वरी देवी को
जिन्हें
नानीमाँ व्यंग्य से 'वीरमाता'
कहती थीं

भूमिका

बांगला देश का मुक्ति-संग्राम उत्पीड़ित मानवता के विश्वव्यापी संग्राम का एक गौरवपूर्ण अध्याय है। पाकिस्तानी फौजी तानाशाही का जैसा क्रूर और अमानवीय रूप इस संघर्ष के मध्य उभड़ा, स्वतन्त्रता के लिये वैसा ही अदम्य संकल्प अत्याचारित बंगाली जनता के हृदय में मूर्त्त हो उठा। इस युद्ध में भारतीय जनता पूरी तरह बांगला देश के साथ थी। न्याय के प्रति अपने देश का उत्तरदायित्वपूर्ण कर्त्तव्य बोध अनायास ही मुझ में भी संक्रमित हो उठा। २६ मार्च १६७१ से ही बांगला देश की स्वतंत्रता की लड़ाई के सहभागी के रूप में मैं काम करने लगा। यह मेरा सौभाग्य था कि 'कलकत्ता विश्वविद्यालय बांगला देश सहायक समिति' की कार्य-समिति के सदस्य के रूप में चुन लिये जाने के कारण बांगला देश के बुद्धि-जीवियों और मुक्ति योद्धाओं के निकट सम्पर्क में आने का सुयोग पा सका। मुक्तियोद्धाओं के शिविरों का परिदर्शन करते समय मुझे यह अन्त:प्रेरणा मिली कि सच्चाई को अपने देशवासियों के सामने रखना मेरा धर्म है। मेरा यह दुहरा सौभाग्य था कि मुझे 'धर्मयुग' का उन्मुख सहयोग मिला। यदि प्रो० दिलीप चक्रवर्ती और डॉ० धर्मवीर भारती इस कार्य में अपने को पूरी तरह झोंक देने की मुझे अनवरत प्रेरणा न देते रहते, तो निश्चय ही मैं जो कुछ कर सका, उसका शतांश भी न कर पाता। इन दोनों अग्रजों का मैं सदा कृतज्ञ रहूँगा।

कैसे अद्भुत थे वे दिन! उत्तेजना, विक्षोभ और उत्साह का जैसा अनुभव उन दिनों हुआ, वैसा कभी नहीं हुआ था। कहाँ विश्वविद्यालय का शान्तिपूर्ण प्राध्यापक जीवन और कहाँ युद्ध के मोर्चों पर अर्धसैनिक वेश में गोलों के धमाकों के बीच मुक्तियोद्धाओं का साहचर्य! शरणार्थियों की दुर्दशा देखकर कलेजा मुँह को आता था, तो बांगला देश के नौजवान कार्यकर्त्ताओं की निष्ठा और लगन आश्वत करती थी कि स्थिति पलट कर रहेगी। बांगला देश सम्बन्धी मेरे रिपोर्ताजों, भेंट-वार्ताओं को देश की जनता का इतना स्नेह मिला कि मैं अभिभूत हो गया। मित्रों के तकाजों पर तकाजे आते रहे कि और लिखो, और लिखो? पाठकों के इतने पत्र मुझे कभी नहीं मिले थे, आगे भी शायद कभी नही मिलेंगे। मुझे लगता रहा कि मेरी सेवा स्वीकार की जा रही है। प्रधान मंत्री इन्दिरा गाँधी, शेख-मुजीबुर्रहमान, ले० जेनरल जगजीत सिंह अरोड़ा, सैयद नजरूल इस्लाम, श्री ताजुद्दीन अहमद, जेनरल उस्मानी तथा अनगिनत बुद्धिजीवियों, मुक्ति-योद्धाओं, छात्रों, कार्य-कर्त्ताओं, शरणार्थियों, बांगला देशवासियों के सम्पर्क में आने का सुअवसर इस क्रान्ति ने मुझे दिया। अब तक के मेरे जीवन के सबसे हलचल भरे दिन थे वे। आज भी उनके बारे में सोचता हूँ तो रोमांच हो आता है। मेरी क्या बिसात थी कि मैं ऐसे काम कर पाता। यह भगवान की कृपा ही थी कि उसने मुझसे यह सेवा ले ली।

पिछले वर्ष कई प्रकाशक मित्र मुझे सुझाव देते रहे कि मैं बांगला देश पर एक सर्वांगीण पुस्तक लिख डालूँ। युद्ध-काल में की गयी अपनी अधिकार चर्चा के लिए तो मैं अपने को आश्वस्त कर सकता हूँ कि वह आपद्धर्म था, किन्तु शान्ति-काल में साहित्य और संस्कृति का अध्येता होकर मैं राजनीतिक, आर्थिक, सैनिक, कूटनीतिक दृष्टियों से बांगला देश की क्रांति पर कच्ची पक्की बातें लिखूँ, यह मुझे गवारा नहीं था। अतः मैंने अपने को इन प्रलोभनों से बचाया। हाँ, बांगला देश की संग्रामी कविताओं में से जो मुझे अधिक स्थायी महत्त्व की लगीं, उनका संकलन नागरी-लिप्यन्तरण एवं हिन्दी-काव्यानुवाद करने के काम को रूचिपूर्वक करता रहा। मुझे हर्ष है कि भारतीय ज्ञानपीठ ने 'संकल्प, संत्रास संकल्प' के नाम से मेरे उस कार्य को प्रकाशित किया और सुधी विचारकों ने उसे पसन्द किया।

इसी बीच अक्टूबर १९७२ में मुझे मराठवाड़ा विश्वविद्यालय राष्ट्रीय एकात्मता समिति के अध्यक्ष डॉ० भ० ह० राजूरकर का स्नेहपूर्ण निमंत्रण मिला कि मैं बांगला देश की क्रांति के सांस्कृतिक पक्ष को भारत की एकात्मता के सन्दर्भ में तीन व्याख्यानों में प्रस्तुत करूँ। रुचि के अनुकूल होने के कारण मैंने इस कार्य को स्वीकार कर लिया। फलतः ४. ५. ६ दिसम्बर को मराठवाड़ा विश्वविद्यालय में क्रमशः "बांगला देश की क्रांति में निहित सांस्कृतिक चेतना", "बांगला देश की संग्रामी कविता" तथा "बांगला देश की क्रान्ति और भारत की एकात्मता" पर मैंने तीन व्याख्यान दिये। आदरणीय श्री कृष्णचन्द्र बेरी को जब इन व्याख्यानों का पता चला तो उन्होंने बड़े भाई के अधिकार से मुझसे कहा, अब आप को अपने पूर्ववर्ती निबन्धों के साथ इन्हें ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित करवा ही देना चाहिये। उनके अनुल्लंघनीय आग्रह के कारण यह सारी सामग्री अब पुस्तक के रूप में आप के समक्ष है।

मैं प्रो० दिलीप चक्रवर्ती, डॉ० धर्मवीर भारती, श्री मनोहर श्याम जोशी, श्री गोविन्द केजरीवाल, डॉ० भ० ह० राजूरकर, श्री देवेन्द्रस्वरूप, पं० श्यामलाल शर्मा, श्री लक्ष्मण शास्त्री एवं श्री कृष्णचन्द्र बेरी के प्रति आन्तरिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ, जिनके सहयोग के कारण इन निबन्धों का लेखन एवं प्रकाशन संभव हो सका। परिशिष्ट मेरी पुत्री भारती शास्त्री ने तैयार किया है, उसे आशीर्वाद देता हूँ कि उसका भविष्य मंगलमय हो।

आगे[illegible] पाठक को अग्रिम धन्यवाद देता हुआ क्या यह आशा रखूँ कि आप इस पुस्तक के सम्बन्ध में अपनी प्रतिक्रिया से मुझे अवगत करायेंगे।

२६ मार्च, १९७३ — विष्णुकान्त शास्त्री

बांगला देशकी स्वाधीनताकी
दूसरी वर्ष गाँठ

अनुक्रम

* * *

परिशिष्ट

१.

बांगला देश की क्रान्ति में निहित सांस्कृतिक चेतना

बांगला देश की स्वतंत्रता मुक्तिकामी विश्व मानवता के रक्तरंजित स्वातंत्र्य-संघर्ष की विशिष्ट उपलब्धि है। फिर भी कुछ तथाकथित विचारक यह कहते नहीं सकुचाते कि बांगला देश में जो हुआ वह 'क्रान्ति' न होकर 'विस्फोट' मात्र था। ऐसा कहकर वे मुख्यतः सांस्कृतिक प्रेरणा से घटित इस एशियायी क्रान्ति का महत्त्व कम करने की कुचेष्टा ही करते हैं। स्मरण रखना चाहिए कि विस्फोट प्रायः आकस्मिक एवं दृष्टिहीन होता है जब कि क्रान्ति के पीछे अन्यायपूर्ण वर्तमान स्थिति को बदलने की संकल्पबद्ध योजना, संग्रामी कर्म-परम्परा और न्यायाधारित भविष्य के निर्माण की जीवन्त प्रेरणा होती है। बांगला देश की गत २४-२५ वर्षों की समग्र गतिविधि से ही नहीं, मुक्ति के बाद राष्ट्रीयता, धर्मनिरपेक्षता, लोकतंत्र एवं समाजवाद के आधार पर नये बांगला देश के निर्माण के निष्ठावान् प्रयास से भी स्पष्ट है कि बांगला देश में वस्तुतः क्रान्ति हुई है, अन्ध विस्फोट नहीं।

व्यावहारिक रूप ग्रहण करने के पहले क्रान्ति वैचारिक-मानसिक स्तर पर ही हुआ करती है। जिस बदली हुई मानसिकता के कारण पूर्वी पाकिस्तान आज बांगला देश बन गया है, उसको यदि एक वाक्य में कहना हो तो यही कहा जा सकता है कि वहाँ की नयी मुस्लिम पीढ़ी ने अपने को बंगाली मुसलमान मानने के स्थान पर मुसलमान बंगाली मानना शुरू कर दिया है। इसको ठीक-ठीक समझने के लिए कुछ पीछे जाना पड़ेगा।

पाकिस्तान के निर्माण के मूल में थी बहुसंख्यक हिन्दू प्रभुत्व की आशंका से मुक्त रहने की उच्चवर्गीय मुस्लिम-आकांक्षा। मुस्लिम नेतृत्व की यह आशंका पुरानी थी। औरंगजेब की मृत्यु (१७०७ ई०) के बाद केन्द्रीय मुगल शक्ति दुर्बल होती चली गयी। ज्यों-ज्यों मराठा, सिख तथा जाट प्रबल होते गये त्यों-त्यों मुस्लिम सामन्त वर्ग में अरक्षा की भावना बढ़ती गई। इसका प्रभाव सांस्कृतिक क्षेत्र पर भी पड़ा। इस्लाम को भारतीय जीवन के अनुरूप ढालने की चेष्टा में मौलाना दाऊद, कुतबन, मंझन, जायसी आदि सूफी

कवियों ने भारतीय कथानक, चरित्र, भाषा, छन्द आदि का उदार व्यवहार किया था। कबीर, दादू आदि ने तो इस्लाम की परिधि के बाहर जाकर तात्विक दृष्टि से हिन्दू-मुस्लिम भेद को अस्वीकार कर समन्वित आध्यात्मिक साधना का उपदेश दिया था। रसखान, चैतन्य शिष्य हरिदास, नानक शिष्य मर्दाना जैसे कुछ मुस्लिम भक्तों ने भारतीय भक्ति पद्धति के विविध रूपों के माध्यम से चरम आध्यात्मिक उपलब्धि का प्रयास किया था। इस्लाम के साधारण अनुयायियों पर ही नहीं, कुछ धर्म-गुरुओं पर भी भारतीय रीति-नीति का स्वाभाविक रूप से प्रभाव पड़ने लगा था। राजनीतिक शक्ति के ह्रास के युग में इस प्रकार के सांस्कृतिक सम्मिश्रण को खतरनाक माननेवाले इस्लामी विचारक शाहवली उल्लाह देहलवी (१७०३–१७६२ ई०) ने स्वयं सूफी होते हुए भी इस्लाम के शुद्धीकरण का नारा दिया। इस्लाम में घुस आई सामयिक एवं स्थानीय प्रवृत्तियों को दूषित एवं ह्रासोन्मुखी करार देकर, उन्हें दूर करना एवं इस्लाम के विभिन्न सम्प्रदायों को सुसंगठित कर मुगल साम्राज्य की भाँति भारत में मुस्लिम-शक्ति की पुनः स्थापना करना ही उनका जीवन-लक्ष्य था।[1] भारतीय मुस्लिम चेतना पर उनके आन्दोलन का गहरा असर पड़ा। उनकी शिष्य-परम्परा में सैयद अहमद बरेलवी (१७८२–१८३१ ई०) हुए जिन्होंने बंगाल से पेशावर तक अपने प्रभाव का विस्तार किया। संभवतः वहाबी आन्दोलन से भी वे अनुप्रेरित थे। राजनीतिक दृष्टि से सिखों से हुए उनके युद्ध असफल रहे किन्तु वैचारिक स्तर पर 'उग्र, विशुद्ध इस्लामी चेतना' के प्रसार में उनका महत्वपूर्ण योगदान है।

उनके बंगाली शिष्य थे मौलवी निसार अली उर्फ तीतू मीर। बंगाल में नवाबी के पतन के बाद राजनीतिक शक्ति ईस्ट इंडिया कम्पनी के हाथों में आ गयी थी। इससे स्वभावतः मुस्लिम मानस खिन्न था। बंगाल में पुनः मुस्लिम राज्य की स्थापना के निमित्त बंगाली मुसलमानों को 'तरीका–ए-मुहम्मदिया' के अनुसार संगठित होने एवं इस्लाम के प्रतिकूल कुसंस्कारों को त्यागने का सन्देश तीतूमीर ने दिया। पीरों के प्रति श्रद्धा, निवेदन, मजारों की पूजा, कब्रों पर दीपदान, मुहर्रम का पालन, उच्चवंश का अहंकार, ज्योतिष और भविष्यवाणी में विश्वास, शीतला पूजा आदि का निषेध कर दाढ़ी रखने, लुंगी पहनने एवं माथे के बिचले हिस्से को मुँड़ाने का आदेश भी उन्होंने दिया। उन्होंने मुख्यतः मुस्लिम किसानों का संगठन किया था। अतः पहले हिन्दू

---

१. विलफ्रेड कैंटवेल स्मिथ कृत इस्लाम इन मॉडर्न हिस्ट्री (मेंटर बुक तृतीय मुद्रण) पृष्ठ ५०–५१।

जमीन्दारों एवं बाद में अंग्रेज शासकों से उनका संघर्ष हुआ। १८३१ ई० में वे अंग्रेजों से लड़ते हुए मारे गये। उनके बाद भी हाजी शरीयत उल्ला एवं उनके पुत्र दूदूमियाँ ने बंगाल में शुद्ध इस्लामवादी फरायजी आन्दोलन का नेतृत्व किया। उन लोगों की दृष्टि में अंग्रेज शासित भारतवर्ष 'दार उल-हरब' था, जहाँ ईद या जुम्मा की नमाज नहीं हो सकती थी।[1] 'शुद्ध इस्लामवादी' धर्म-गुरुओं की प्रबल प्रेरणा के कारण उत्तर भारत के हजारों मुसलमानों ने १८५७ ई० के स्वातंत्र्य-संग्राम में हिस्सा लिया था। यद्यपि बंगाल के मुसलमान इस युद्ध में बड़े पैमाने पर कुछ नहीं कर सके तो भी मुर्शिदाबाद, ढाका, चटगाँव में उसकी क्षीण प्रतिध्वनि गूँजी थी।[2]

वहाबी आन्दोलन की प्रेरणा से उग्र मुस्लिम कार्यकर्त्ता १८७० ई० तक अंग्रेजों से छिट-पुट संघर्ष करते रहे। इन मुठभेड़ों की विफलता एवं इनके कारण होनेवाली मुसलमानों की क्षति को दृष्टिगत रखकर मुस्लिम धर्म-गुरुओं ने अपनी नीति में परिवर्तन किया। मक्का के तीन प्रसिद्ध मुफ्तियों ने घोषणा की कि अंग्रेज शासित भारतवर्ष 'दार-उल-इस्लाम' है। १८७१ ई० में मौलाना करामत अली जौनपुरी ने यह फतवा दिया कि अंग्रेजों के विरुद्ध 'जेहाद' न केवल असिद्ध है बल्कि ऐसा संग्राम होने पर मुसलमानों का कर्त्तव्य है कि वे जेहादियों के खिलाफ अंग्रेज शासकों का समर्थन करें।[3] इसके बाद खिलाफत आन्दोलन के समय तक भारतीय मुसलमानों ने सम्प्रदाय के रूप में अंग्रेजों के विरुद्ध कोई प्रत्यक्ष संघर्ष नहीं किया।

१८५७ ई० की हिन्दू-मुस्लिम-एकता से आतंकित होकर अंग्रेजों ने अपनी भेदनीति के द्वारा हिन्दुओं और मुसलमानों को यथासंभव अलग रखने का प्रयास शुरू किया। मुसलमानों को राजभक्ति का पाठ पढ़ाने के लिए उन्होंने सर सैयद अहमद खाँ (१८१७–९८ ई०) एवं बंगाल के नवाब अब्दुल लतीफ (१८२८–९१ ई०) जैसे नरमपंथी नेताओं को प्रोत्साहित किया। ये दोनों नेता विशेषतः सर सैयद अहमद मुसलमानों के आधुनिकीकरण के पक्ष में थे। उनके कारण भारतीय मुस्लिम नेतृत्व दो भागों में बँट गया। यदि प्राचीनतावादी

१. मुस्लिम मानस ओ बांगला साहित्य (डॉ० अनीसुज्जमान) पृ० ४९–५१

२. वही, पृ० ५५

३. वही, पृ० ४९–५१।

इस्लामी विचारकों ने १८६७ ई० में देवबन्द में 'दार उल उलेमा' की स्थापना की, जिसके अध्यापकों एवं विद्यार्थियों में प्राचीन इस्लामी आदर्शों के प्रति भक्ति एवं अंग्रेजों के प्रति विरोध भाव सुस्पष्ट था तो सर सैयद अहमद ने १८७३ ई० में अलीगढ़ में मुस्लिम ऐंग्लो-ओरिएण्टल कॉलेज खोला जिसमें न केवल आधुनिक ज्ञान-विज्ञान का अध्यापन एवं इस्लामी आदर्शों का नया बौद्धिक विवेचन होता था बल्कि जिसके प्राध्यापक और विद्यार्थी अंग्रेजी राज के प्रशंसक और समर्थक भी थे। सर सैयद अहमद ने मुसलमानों को अंग्रेजों के प्रति वफादार और अंग्रेजों को मुस्लिम सम्प्रदाय के प्रति कृपालु बनाने का आजीवन प्रयास किया। सेना में हिन्दुओं और मुसलमानों की पृथक् रेजिमेंट बनाने तथा सरकारी नौकरियों में मुसलमानों को संरक्षण देने की जोरदार सिफारिश उन्होंने की थी। मुसलमानों का आर्थिक-राजनीतिक लाभ उस समय सर सैयद अहमद के दिखाये रास्ते पर चलने पर ही संभव था अतः मुस्लिम उच्चवर्ग का उन्हें पूरा समर्थन प्राप्त हुआ।

बंगाली मुसलमानों के तत्कालीन नेता नवाब अब्दुल अतीफ भी सर सैयद अहमद के मित्र और सहयोगी थे। उनकी चेष्टा भी यही थी कि तीतू मीर, शरीयत उल्ला, दूदूमियाँ की अंग्रेज विरोधी नीति का परित्याग कर बंगाली मुसलमान पूर्णतः राजभक्त बनें एवं अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त कर अधिकाधिक सरकारी नौकरियाँ पायें। बंगाली मुसलमानों की स्थिति कई ऐतिहासिक कारणों से उत्तर भारतीय मुसलमानों की तुलना में आर्थिक, राजनीतिक, दृष्टियों से हीनतर थी। अतः उनका मानसिक द्वन्द्व और गहरा था। उसे सहानुभूतिपूर्वक समझे बिना बांगला देश की क्रान्ति को समझना असंभव है।

बंगाल में नवाबी राज्य की समाप्ति एवं अंग्रेजी शासन के प्रवर्त्तन के फलस्वरूप बंगाल के पुराने मुस्लिम एवं हिन्दू अभिजात वर्ग समान रूप से क्षतिग्रस्त हुए। मुस्लिम अभिजात वर्ग का बहुतांश गैर बंगाली था। सेना, राजस्व, न्याय और राजनीतिक विभागों से जब उनकी छँटनी शुरू हुई तो उनमें से बहुतेरे बंगाल छोड़कर चले गये। जो रहे, उत्तरोत्तर उनकी आर्थिक-सामाजिक स्थिति कमजोर होती चली गयी। नवाबी शासन से सम्बद्ध मुस्लिम मध्यवर्ग तथा मुस्लिम कारीगरों (विशेषतः जुलाहों) की हालत भी बिगड़ती चली गई। बंगाली मुसलमानों का अधिकांश किसान-मजदूरों का था। अंग्रेजों के हृदयहीन शोषण से बंगाली किसान (हिन्दू-मुसलमान दोनों) करीब-करीब तबाह हो गये।

बंगाली हिन्दुओं के पुराने अभिजात वर्ग (विशेषतः नवाबी अमल के उच्च-पदस्थ कर्मचारियों एवं जमीन्दारों) की स्थिति भी खराब हुई किन्तु व्यापारी वर्ग को लाभ हुआ। हिन्दुओं के उच्च एवं व्यापारी वर्ग में अंग्रेजी शिक्षा-दीक्षा के प्रति विरोध मुसलमानों की तुलना में बहुत कम था। अतः उनके लड़के अंग्रेजी पढ़-पढ़ कर नयी सरकारी नौकरियाँ पाने लगे। वकील, प्रोफेसर, इंजीनियर, डॉक्टर बनने लगे। कार्नवालिस के स्थायी बन्दोबस्त के बाद नये जमीन्दारों का जो वर्ग उदित हुआ, उसमें भी अधिकतर हिन्दू थे। इस प्रकार हिन्दू-समाज के प्रभावशाली वर्ग ने नयी व्यवस्था में अपनी स्थिति मुस्लिम उच्च वर्ग की तुलना में सुदृढ़ कर ली।

आर्थिक विकास और सामाजिक प्रतिष्ठा की दौड़ में आगे न बढ़ पाने के कारण उपरले तबके के मुस्लिम नेताओं में हिन्दुओं के प्रति विद्वेष की भावना दृढ़ होती चली गई। शासक वर्ग से शासित वर्ग में परिणत होने और फिर हिन्दुओं से भी पिछड़ते जाने के कारण उनके आहत स्वाभिमान ने अपनी क्षति-पूर्ति के लिए एक तरफ विश्वव्यापी इस्लामी भ्रातृत्ववाद के पुनरुज्जीवन के स्वप्न देखे, दूसरी तरफ व्यावहारिक स्तर पर भारतवर्ष में अपनी अस्मिता (आइडेंटिटी) को बनाये रखने के लिए पृथकतावादी दृष्टि अपनायी तथा भौतिक उन्नति के लिए अंग्रेजी शिक्षा-दीक्षा को स्वीकारा।

नवाब अब्दुल लतीफ ने १८६६ ई० में मोहम्मडन लिटरेरी सोसाइटी की स्थापना कर बंगाली मुसलमानों में आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के प्रति दिलचस्पी पैदा करने की कोशिश शुरू की। किन्तु जहाँ सर सैयद अहमद मुसलमानों की शिक्षा-व्यवस्था को पूर्णतः अंग्रेजी साँचे में ढालना पसन्द करते थे, वहाँ नवाब साहब 'मदरसा शिक्षा पद्धति' को बनाये रखना चाहते थे; अतः वे शिक्षा क्षेत्र में विशेष क्रान्ति नहीं कर सके। उनके अधिक सफल न होने का एक कारण और भी है। बंगाली मुसलमान होते हुए भी उन्होंने अरबी, फारसी, उर्दू और अंग्रेजी के माध्यम से पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान के विवेचन एवं बंगाली मुसलमानों में उसके प्रचार-प्रसार को अपनी सोसायटी का उद्देश्य घोषित किया था। इन भाषाओं में बंगला का न होना आकस्मिक भूल नहीं, सुचिन्तित यद्यपि विकृत दृष्टि का फल था। असल में उस समय तक (और उसके बहुत बाद तक) बंगाली मुसलमान दुहरी हीनता-ग्रन्थि के शिकार रहे। यह एक अद्भुत और पीड़ादायक सच्चाई है कि प्रभावशाली मुसलमानों की दृष्टि में बंगाल में दो प्रकार के मुसलमान थे—एक ऊँची श्रेणी के और दूसरे नीची श्रेणी के। स्मरण रहे यह श्रेणी-विभाजन आर्थिक आधार पर

अवलम्बित नहीं था। इसका आधार जातिगत और भाषागत था। नीची श्रेणी में उन मुसलमानों की गिनती होती थी जो मूलतः बंगाल के निवासी थे और स्वभावतः जिनकी मातृभाषा बंगला थी। ऊँची श्रेणी के मुसलमान वे माने जाते थे जिनका दावा था कि वे अरब, ईरान या मध्य एशिया से आकर यहाँ बसे हैं।[1] धर्म भाषा होने के कारण अरबी का तथा [illegible] और १८३६ ई० तक राजभाषा होने के कारण फारसी का सभी श्रेणियों के मुसलमानों में समादर था। किन्तु इन भाषाओं को बोल पाना या इनमें काम-काज कर पाना उँगलियों पर गिनने योग्य लोगों को छोड़ कर तथाकथित ऊँची श्रेणी के मुसलमानों के लिए भी संभव न था। अतः दैनन्दिन व्यवहार एवं भावात्मक आदान-प्रदान के लिए विशेषतः मुसलमानों के उद्योग से अट्ठारहवीं सदी में उर्दू का विकास तेजी से हुआ एवं दिल्ली, हैदराबाद, लखनऊ आदि के मुस्लिम राज-दरबारों में उसकी कद्र बढ़ती चली गयी। बंगाल में मुर्शिदाबाद, ढाका आदि के सामन्ती परिवारों में भी उर्दू को ही प्रतिष्ठा प्राप्त थी। अतः मुस्लिम-समाज के उच्च वर्ग में प्रवेश पाने के लिए बंगाली मुसलमान भी उर्दू में बोलना, लिखना, पढ़ना गौरवपूर्ण एवं आवश्यक कर्त्तव्य समझता था। इसीलिए नवाब अब्दुल लतीफ ने अपनी सोसाइटी में बंगला को स्थान न देकर उर्दू को दिया था। विश्व इस्लाम के लघु रूप एवं भारतीय इस्लाम की चेतना भी उन्हें इसी की प्रेरणा देती थी कि मुसलमानों के संगठन के लिए क्षेत्रीय भाषाओं से भिन्न उर्दू का ही प्रयोग किया जाना चाहिए :

एक और बात थी। मातृभाषा बंगला होते हुए भी बंगाली मुसलमानों को लगता था कि उसके गौरव में उनका अंश बहुत कम है। दौलत काजी, आलाओल और लालन फकीर को छोड़कर आधुनिक युग के आरंभ तक बंगला भाषा और साहित्य की मर्यादा बढ़ाने में किसी और उल्लेख योग्य मुस्लिम कवि का योगदान नहीं था। इनमें भी दौलत काजी और आलाओल पश्चिमी मुसलमान कवियों मौलाना दाऊद तथा मलिक मुहम्मद जायसी द्वारा रचित हिन्दू कथाश्रित प्रेमाख्यानक काव्य के अनुवादक ही थे और लालन फकीर हिन्दू ही थे, जो बाद में सूफी हो गये थे। अतः बंगला साहित्य कट्टर मुसलमानों की दृष्टि में हिन्दुओं का साहित्य था, जिसके दुष्प्रभाव से अपने को, अपने समाज को बचाना अच्छे मुसलमानों का कर्तव्य था। किन्तु बच्चे तो

---

१. दे० बदरुद्दीन उमरकृत पूर्व बांगलार सांस्कृतिक संकट, नामक पुस्तक का ऊनिश शतके 'मुस्लिम शिक्षा ओ मातृभाषा चर्चा' शीर्षक निबन्ध।

वही भाषा बोल सकते हैं जो उन्होंने माँ के दूध के साथ सीखी हो। करोड़ों बंगाली मुसलमान बंगला की जगह उर्दू को मातृभाषा के रूप में अपना लें, यह भी संभव न था। अतः नवाब अब्दुल लतीफ को बाध्य होकर १८८२ ई० में हंटर कमीशन के सामने गवाही देते समय यह लिखित रूप से स्वीकारना पड़ा कि निम्न श्रेणी के मुसलमानों को (जो जातिगत रूप से हिन्दुओं से भिन्न नहीं हैं) प्राथमिक स्तर पर बंगला में शिक्षा दी जा सकती है; किन्तु वह बंगला हिन्दुओं द्वारा व्यवहृत एवं संस्कृत से प्रभावित बंगला नहीं होनी चाहिए। उसमें उच्च श्रेणी के मुसलमानों में प्रचलित अरबी, फारसी, उर्दू शब्दों का भरपूर प्रयोग होना चाहिए। उच्च और उच्चमध्यवर्ग के मुसलमानों की शिक्षा का माध्यम उर्दू हो, यह उनका दृढ़ मत था।

मुस्लिम हित साधन के जोश में नवाव अब्दुल लतीफ ने, मुहम्मद मुहसिन के दान से चलने वाले हुगली मुहसिन कॉलेज से हिन्दुओं का ही अधिक उपकार होता है, यह तर्क देकर सरकार को सुझाव दिया था कि उस कॉलेज के कोष से एक मोटी रकम मुस्लिम मदरसों के संचालन के लिए दी जाये। मुसलमानों को अपनी ओर करने की नीति के कारण अंग्रेज सरकार ने इस सुझाव को तुरन्त मान लिया था। मुस्लिम छात्रों को अंग्रेजी पढ़ने की विशेष सुविधाएँ देने का निश्चय भी सरकार ने १८७० ई० में किया। इन्हीं दिनों पाट की खेती के और कीमत में वृद्धि के साथ-साथ मुसलमान किसानों के पास भी कुछ रुपया जमा होने लगा था। वे भी अपने लड़कों को अंग्रेजी शिक्षा दिलाने के लिए उद्यत होने लगे थे। कलकत्ते के मुसलमान खानसामा भी गरीब मुसलमान विद्यार्थियों की बहुत मदद किया करते थे। इस तरह उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में अंग्रेजी शिक्षित बंगाली मुस्लिम मध्य वर्ग का धीरे-धीरे उदय होने लगा था। यह भी स्मरण रखना चाहिए कि आर्थिक दृष्टि से पिछड़ जाने के बावजूद अंग्रेजी शासन में बंगाली मुसलमानों की जनसंख्या हिन्दुओं की तुलना में कहीं अधिक तेजी से बढ़ी थी और कालान्तर में वे ही बंगाल में बहुसंख्यक हो गये थे। जनसंख्या की तुलना में सरकारी नौकरियों में हिन्दुओं के मुकाबले बङ्गाली मुसलमानों का अनुपात बहुत कम था, इससे उनमें स्वभावतः क्षोभ था। नवाव अब्दुल लतीफ सदृश मुस्लिम नेताओं की दृष्टि में इसका प्रतिकार मुसलमानों का अलग संगठन तथा अंग्रेज सरकार से पूर्ण सहयोग ही था ताकि मुसलमानों को अधिक सरकारी नौकरियाँ और संरक्षण मिल सके।

नवाव अब्दुल लतीफ की दृष्टि को (सैयद अमीर अली जैसे मुस्लिम नेताओं की अधिक प्रगतिशील दृष्टि के बावजूद) उस समय के बङ्गाली मुस्लिम

समाज की प्रतिनिधि दृष्टि कहा जा सकता है। इस दृष्टि का विश्लेषण करने से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं :—

(१) मुस्लिम समाज के नेतृ स्थानीय व्यक्तियों द्वारा बङ्गला भाषी मुसलमान अच्छा मुसलमान, उच्च कोटि का मुसलमान नहीं माना जाता था।

(२) अपनी इस हीन स्थिति को मुसलमानों के उच्च वर्ग में सम्मिलित होने की आकांक्षा रखने वाले बंगाली मुसलमानों ने भी स्वीकार कर लिया था।

(३) अपनी हीनता को मिटाने के जोश में इन बंगाली मुसलमानों ने अपने 'बंगालीपन' को छोड़कर यथासंभव अच्छा मुसलमान बनने के प्रयास में अपनी भाषा (यानी इस्लाम पूर्व बंगाली संस्कृति) के परित्याग के औचित्य तक को सिद्धान्ततः मान लिया था।

(४) आर्थिक विकास एवं सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए अंग्रेजी शिक्षा-पद्धति को अंशतः स्वीकारते हुए भी कट्टरपंथी मदरसा शिक्षा-पद्धति को चालू रखने के आग्रह पर बल देना मुस्लिम-संस्कृति के संरक्षण की दृष्टि से उचित समझा गया था। अच्छा मुसलमान बनने और माने जाने की इच्छा इसके मूल में थी।

(५) हिन्दुओं के प्रति भय एवं विद्वेष के कारण अंग्रेज सरकार से पूर्ण सहयोग के सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप दिया जाने लगा था। अंग्रेज भी उन्हें उचित-अनुचित ढंग से सन्तुष्ट एवं हिन्दुओं से अलग कर अपने साम्राज्य को सुरक्षित रखना चाहते थे।

सांस्कृतिक दृष्टि से इसका सारांश यह हुआ कि उस समय के बंगाली मुसलमान के लिए 'मुसलमान' पद ही मुख्य था, विशेष्य था, बंगाली विशेषण मात्र था, ऐसा विशेषण जिसे वह स्वयं बहुत गौरवशाली नहीं मानता था। हम कह सकते हैं कि पाकिस्तान बनने तक बंगाल के सामान्य मुसलमानों की प्रवृत्ति (कुछ महत्त्वपूर्ण अपवादों के बावजूद) बहुत कुछ इस विश्लेषण के अनुरूप ही रही।

इस्लाम पूर्व भारतीय संस्कृति को नकारने की आत्मघाती प्रवृत्ति एक हद तक भारतीय मुसलमानों में भी पनप रही थी। इसके मूल में एक ओर शुद्ध इस्लामवादी चिन्तकों की प्रेरणा थी, दूसरी ओर भेद नीति पर आधारित ब्रिटिश कूटनीति थी, जो पृथकतावादी इस्लामी राजनीति को सदा पुरस्कृत करती थी। भारतीय पुनर्जागरण के प्रथम आवेश में प्राचीन भारतीय संस्कृति

और परम्परा के प्रति हिन्दुओं में जो ललक जागी थी, उसमें इस्लामी देन को नकारने का या उसकी विकृतियों को ही उभार कर रखने का अनुचित आग्रह भी विद्यमान था। इस प्रवृत्ति की तीखी प्रतिक्रिया शुद्ध इस्लामवादी नेतृत्व में होती रही। अंग्रेजों के विरुद्ध किये जाने वाले राष्ट्रीय आन्दोलनों से मुस्लिम सामन्त वर्ग (हिन्दू सामन्त वर्ग की तरह ही) शंकित था और उन्हें अपने निहित स्वार्थ के प्रतिकूल मानता था। फिर नवोदित मुस्लिम मध्यवर्ग का स्वार्थ भी अंग्रेजों के साथ सहयोग करने में ही था। क्योंकि बीसवीं शताब्दी के आरंभ तक बंगला के लेखक गवर्नर बैमफील्ड फुलर के अनुसार 'मुसलमान अंग्रेजों की चहेती बीबी' बन गये थे। अतः कुछ व्यक्तिगत अपवादों को छोड़ कर सम्प्रदाय के रूप में मुसलमान स्वदेशी आन्दोलन, क्रान्तिकारी आन्दोलन तथा होमरूल आदि आन्दोलनों से अलग ही रहे। उनके इस विच्छेदवादी मनोभाव को दूर करने के लिए ही 'खिलाफत आन्दोलन' में महात्मा गांधी तथा अन्य राष्ट्रीय नेताओं ने पूरा योग दिया; किन्तु हिन्दू-मुस्लिम एकता का यह राजनीतिक रूप स्थायी नहीं रह सका। निश्चय ही बहुत से श्रेष्ठ एवं उदार मुस्लिम नेताओं ने आजादी की लड़ाई में राष्ट्रीयता को ही प्रमुख स्थान दिया किन्तु इतिहास का दुःखद एवं कठोर सत्य है कि अधिकांश राजनीतिचेता मुसलमान अलग रह कर ही अपनी लड़ाई लड़ते रहे।

पाकिस्तान की रचना के सांस्कृतिक प्रेरणा-स्रोत महाकवि इकबाल माने जाते हैं। आरंभ में हिन्दू-मुस्लिम एकता के समर्थक एवं नया शिवाला तथा तराना-ए-हिन्दी के गायक होते हुए भी बाद में वे 'शुद्ध इस्लामवादी' बन गये थे। 'जवाबे शिकवा' में उन्होंने भारतीय मुसलमानों को 'तमद्दुन में हनूद' (संस्कृति में हिन्दू) हो जाने के कारण कसकर फटकारा था। स्वदेशवासी हिन्दुओं से अलगाव के कारण पृथकतावादी भारतीय मुसलमानों का वर्ग स्वदेश (भारत) से भी लगाव का अनुभव नहीं कर पा रहा था। अतः इसने मुसलमानों के लिए अलग देश की कल्पना की, देश भाइयों से बिछुड़ने से उत्पन्न शून्यता को धर्म भाइयों से जुड़ने के बोध से भरने का आतुरतापूर्ण (किन्तु अयथार्थ) प्रयास किया। 'हिन्दी हैं हम, वतन है हिन्दोस्तां हमारा' के कवि इकबाल ने विश्व इस्लामवाद के समर्थन में लिखा—

'चीनो अरब हमारा, हिन्दोस्ताँ हमारा,
मुस्लिम हैं हम वतन हैं, सारा जहाँ हमारा।'

इस आक्रामक सांस्कृतिक चेतना का राजनीतिक रूपान्तर एवं उपयोग करने में श्री जिन्ना को अद्भुत सफलता मिली। अन्ततोगत्वा अंग्रेजों की कूट-

नीति एवं हिन्दू-मुस्लिम-विद्वेष के यूपकाष्ठ पर भारत की अखंडता की बलि चढ़ गयी तथा इस्लामी राष्ट्र पाकिस्तान की सृष्टि हुई ।

पश्चिमी पाकिस्तान को पूर्व पाकिस्तान से जोड़ने वाला एक ही तत्त्व था इस्लाम । साधारणतः यह घोषित किया जाता है कि भौगोलिक दृष्टि से विच्छिन्न, ऐतिहासिक-सांस्कृतिक परम्पराओं में विभिन्न ये दोनों क्षेत्र धर्म की एकता के कारण ही एक देश वन गये थे । किन्तु यह सच नहीं है । पाकिस्तान के निर्माण में धर्म का नारा लगाकर साधारण मुस्लिम-भावना को इसके लिए उभारा जरूर गया था परन्तु इसकी वास्तविक प्रेरणा इस्लाम धर्मानुकूल न होकर पश्चिमी राष्ट्रीयतावादी राजनीतिक चेतना की भ्रान्त व्याख्या से उपजी थी । वस्तुगत रूप से इसकी प्रेरणा का आधार था मुसलमानों के मनों में बहुसंख्यक हिन्दुओं के प्रभुत्व का भय तथा अंग्रेजों द्वारा अपने स्वार्थ संरक्षण के लिए उच्चवर्ग (एवं उच्चमध्य वर्ग) के मुस्लिम नेताओं को विच्छेदवादी नीति अपनाने के लिए दी गयी सतत कूटनीतिक उद्दीपना । विश्व इस्लाम की भावना ने भी इस आन्दोलन को बल दिया । हिन्दुओं के प्रति भय एवं विद्वेष तथा सत्ताग्रहण के प्रति लोभ को राजनीतिक दर्शन का जामा पहनाते हुए श्री जिन्ना ने अपने द्विराष्ट्रवाद के सिद्धान्त की घोषणा की । इसके अनुसार हिन्दुस्तान के मुसलमान एक पृथक राष्ट्र थे । ऐतिहासिक, भौगोलिक, सांस्कृतिक, नृतात्त्विक, भाषिक इकाइयों की उपेक्षा कर केवल धर्म के आधार पर टिकी राष्ट्र की यह कल्पना बहुत दुर्बल थी । एक तरफ उन्नीसवीं शताब्दी के जिस पश्चिमी राष्ट्रीयतावादी सिद्धान्त की यह दुहाई देती थी, उसकी आवश्यक शर्तों को पूरा नहीं करती थी, दूसरी तरफ इस्लाम की स्थापित मान्यताओं के भी प्रतिकूल थी । इस्लाम विश्व-धर्म है, वह किसी एक राष्ट्र का निर्मायक तत्त्व नहीं हो सकता, न किसी देश के पाक और नापाक दो टुकड़ों की धारणा का समर्थन करता है । इसीलिए पाकिस्तानी आन्दोलन को न तो देवबन्द के उदारचेता मुस्लिम उलेमाओं का, न जमात-ए-इस्लामी के कट्टरपंथी विचारकों का ही समर्थन प्राप्त था । किन्तु सफलता के समान सफल और कुछ नहीं होता । पाकिस्तान बन कर रहा ।

पाकिस्तान के बनने के साथ ही उसके अन्तर्विरोध स्पष्ट होने लगे । प्रश्न उठा पाकिस्तान यदि एक राष्ट्र है तो उसके सभी नागरिक पाकिस्तानी हैं या यह गौरव केवल मुसलमानों को ही प्राप्त हो सकता है ? ११ अगस्त १९४७ को कराची में पाकिस्तान संविधान सभा के उद्घाटन-भाषण में श्री जिन्ना ने कहा—'इस पाकिस्तान राज्य में आप स्वतंत्र हैं आप स्वतंत्र हैं अपने मन्दिरों

में जाने के लिए, आप स्वतंत्र हैं अपनी मस्जिदों में जाने के लिए या अन्य पूजा-स्थानों में जाने के लिए। आप किसी भी धर्म या जाति या पंथ के हो सकते हैं, इसका राज्य-कार्य से कोई सम्बन्ध नहीं।...हम इस सिद्धान्त के साथ आरंभ कर रहे हैं कि हम सब एक ही राज्य के नागरिक हैं और समान नागरिक हैं।...मेरा ख्याल है कि हमें इस आदर्श को अपने सम्मुख रखना चाहिए और समय बीतने के साथ आप पायेंगे कि हिन्दू हिन्दू नहीं रह गये, मुसलमान मुसलमान नहीं रह गये—धार्मिक अर्थ में नहीं, क्योंकि वह तो प्रत्येक व्यक्ति का अपना वैयक्तिक विश्वास है, बल्कि राजनीतिक अर्थ में, राज्य के नागरिकों के रूप में।'[1]

इसका अर्थ यह हुआ कि पाकिस्तान की स्थापना के साथ ही श्री जिन्ना पैंतरा बदल कर इस्लामी पाकिस्तानी राष्ट्रीयता के स्थान पर धर्म निरपेक्ष पाकिस्तानी राष्ट्रीयता की हिमायत करने लगे थे। किन्तु यह कड़वी दवा उनके धर्मोन्मादग्रस्त राजनीतिक अनुयायियों के गले के नीचे नहीं उतरी; क्योंकि इससे द्विराष्ट्र सिद्धान्त का अस्तित्व ही समाप्त हो जाता। वे पाकिस्तान को इस्लामी राज्य घोषित कर बहुसंख्यक साधारण मुस्लिम जनता को भ्रम में डाले रखना चाहते थे कि "हिन्दू राज्य हिन्दुस्तान' के मुकाबले में 'मुस्लिम राज्य पाकिस्तान' को सदा युद्ध के लिए तैयार रहना चाहिए। स्वयं श्री जिन्ना ने पूर्वी बंगाल के भाषा-आन्दोलन को दबाने के लिए इसी तर्क का प्रयोग किया था। उन्होंने २१ मार्च १९४८ को ढाका में बंगला भाषा के आन्दोलन को कम्युनिष्टों और विदेशी दलालों का कार्य बताते हुए घोषित किया था कि 'पूर्व बंगाल को भारत के अन्तर्भुक्त करने की चेष्टा उन्होंने...कम्युनिष्टों ने और विदेशी दलालों ने नहीं छोड़ी है और अभी तक वही उनका लक्ष्य है।...किन्तु मैं आप लोगों से पूछना चाहता हूँ : चौदह सौ वर्ष पहले हम लोगों को जो शिक्षा दी गयी थी हम लोग क्या उसे भूल गये हैं? मेरी तरह आप सब भी यहाँ बाहर से आये हुए हैं। बंगाल के आदि-निवासी कौन हैं? जो आज यहाँ बसे हुए हैं, वे नहीं। अतएव 'हम लोग बंगाली या सिन्धी या पठान या पंजाबी हैं, 'यह कहने का क्या प्रयोजन है? नहीं, असल में हम सब हैं मुसलमान।'[2]

१. पूर्व बांगलार संस्कृतिक संकट, पृ० १९४ में उद्धृत।

२. बदरुद्दीन उमर कृत 'पूर्व बांगलार भाषा आन्दोलन ओ तत्कालीन राजनीति के पृ० १०८ पर उद्धृत।

श्री जिन्ना का मन्तव्य था कि बंगाल में वसे सभी मुसलमान मूलत; बंगाली नहीं हैं, बाहर से आये हुए हैं अतः उन्हें यहाँ की भाषा और संस्कृति का सवाल न उठा कर चौदह सौ वर्ष पहले अरब में जिस संस्कृति का उपदेश दिया गया था उसका पालन करना चाहिए और मुसलमानी भाषा उर्दू को अपनी भाषा के रूप में अपना लेना चाहिए। श्री जिन्ना के व्यक्तिगत प्रभाव, पूर्व बंगाल के दुर्बल मुस्लिम लीगी नेतृत्व एवं उस समय तक पाकिस्तानी चेतना के बचे हुए सम्मोहन के कारण बंगला भाषा को पाकिस्तान की राष्ट्र-भाषा बनाने का आन्दोलन सामयिक रूप से दब गया। किन्तु उनकी बात इतनी अयथार्थ और जन-विरोधी थी कि भीतर-भीतर असन्तोष उवलता रहा।

बंगाली मुसलमान कैसे मान लेते कि वे सब के सब बाहर से आये हैं। वे बखूबी जानते थे कि बाहर से आने वाले मुट्ठी भर मुसलमानों में से कुछ तो बंगाल की नवाबी के पतन के साथ ही बंगाल छोड़कर चले गये थे और जो थोड़े से बचे थे वे अशरफ अतरफ, शरीफजादा आदि उपाधि धारण कर अपने को उच्चवर्ग का घोषित करते नहीं थकते थे। ९९ प्रतिशत बंगाली मुसलमान यहीं के पूर्व निवासियों के वंशज थे और न अरवी-फारसी वोल सकते थे, न उर्दू ही। उन्हें एक ही भाषा आती थी बंगला, वे उसे कैसे छोड़ देते, क्यों छोड़ देते? फिर उनका खान-पान, रीति-रिवाज, पोशाक-पहरावा, आचार-विचार भी पश्चिमी पाकिस्तानियों से बहुत कुछ भिन्न था। आजाद होने का मतलब यह तो नहीं हो सकता कि अपनापन······बंगालीपन छोड़कर पश्चिमी पाकिस्तानियों के नकलची वन जायें। क्या बंगाली होना पाप है, इस्लाम से च्युत होना है? ऐसा वे कैसे मान सकते थे, जबकि स्वयं हजरत मुहम्मद ने कहा है, "अपने देश को प्यार करना ईमान का आधा हिस्सा है।"

पूर्वी वंगाल के सबसे वड़े विद्वान डॉ० मुहम्मद शहीदुल्ला ने ३१ दिसम्बर १९४८ को पूर्व पाकिस्तान साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष पद से भाषण देते हुए पाकिस्तान के प्रति निष्ठा व्यक्त करने के बाद बंगला भाषा के गौरव की रक्षा और वृद्धि करने के लिए पूर्व वंगाल की सरकार और जनता का आवाहन करते हुए यह भी कहा था कि हम लोग हिन्दू या मुसलमान हैं, यह जैसे सत्य है, उससे कहीं अधिक सत्य यह है कि हम लोग वंगाली हैं। यह किसी आदर्श की बात नहीं है, यह एक यथार्थ बात है। माँ प्रकृति ने अपने हाथों से हम लोगों के चेहरों और भाषा में 'वंगालीपन' की ऐसी छाप लगा दी

है कि उसे माला-तिलक-चोटी या टोपी-लुङ्गी-दाढ़ी के द्वारा ढाँकने का कोई उपाय नहीं है।"[1]

कट्टर मुस्लिम लीगियों ने डॉ० शहीदुल्ला के इस वक्तव्य की कठोर भर्त्सना की थी। किन्तु यह साधारण बंगाली जनता के मन की बात थी और नयी पीढ़ी के नेताओं में 'बंगालीपन' के सम्मान की रक्षा का भाव उत्तरोत्तर विकसित होता गया।

बंगाली नौजवानों ने यह भी देखा कि इस्लाम की बात-बात में दुहाई देने के बावजूद पाकिस्तान में उसको विकसित करने का और उसमें निर्दिष्ट समानता के आधार पर देश को गठित करने का कोई प्रयास ही नहीं हुआ। साधारण बंगाली मुसलमान के लिए पाकिस्तान का अर्थ था अंग्रेज शासकों, उद्योगपतियों, हिन्दू जमीन्दारों, व्यापारियों के अत्याचारों से मुक्त, उन्नत एवं समृद्ध राज्य। किन्तु पाकिस्तान बनने के बाद भी साधारण बंगाली मुसलमान की स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ। वास्तविक राजसत्ता नवाबों, नवाबजादों, जमीन्दारों, फौजी अधिकारियों, नौकरशाहों और इन्हीं वर्गों से (या इनका आशीर्वाद पाकर) पनपने वाले पूँजीपतियों ने हथिया ली। साधारण जनता गूँगी गुलामी कर, दमन की चक्की में पिसती रही। पाकिस्तानी प्रभुवर्ग में पूर्व पाकिस्तान का प्रतिनिधित्व नहीं के बराबर था। जो थोड़े से बंगाली मुसलमान उस वर्ग में पहुँच पाये थे, वे व्यक्तिगत स्वार्थ के संरक्षण के लिए बंगालियों के हित के विपरीत आचरण कर उस वर्ग में बने रहना चाहते थे। ऐसे नेताओं के प्रति बंगाली मुसलमानों में घृणा बढ़ती गयी।

पाकिस्तानी शासकों ने पूर्व बंगाल की संस्कृति की अवहेलना कर ज्यों-ज्यों बलपूर्वक उसका इस्लामीकरण (अर्थात् पश्चिमी पाकिस्तानीकरण) करना चाहा त्यों-त्यों बंगाली मुसलमान अधिकाधिक बंगाली होते गये। उर्दू ही पाकिस्तान की एकमात्र राष्ट्रभाषा होगी, बंगला को अरबी लिपि में लिखना होगा, बंगला में प्रयुक्त हिन्दू भावापन्न मुहावरों (यथा—मैं जन्म-जन्मान्तर तक तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगा) तथा संस्कृत शब्दों को हटाकर मुस्लिम भावापन्न नये मुहावरों (यथा—मैं कयामत के दिन तक तुम्हारा इन्तजार करूँगा) तथा अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग करना होगा, बंगला पाठ्यक्रम से मध्ययुगीन एवं आधुनिक हिन्दू साहित्यकारों की रचनाओं को हटाना होगा, रेडियो पर रवीन्द्र संगीत नहीं होगा, बंगाली मुस्लिम महिलाओं को बिन्दी, चूड़ी, साड़ी से परहेज करना होगा आदि-आदि बातों पर पश्चिमी

१. पूर्व बांगलार भाषा आन्दोलन ओ तत्कालीन राजनीति, पृ० १८७।

पाकिस्तानी शासक जितना बल देते गये, पूर्व बंगाल की मुस्लिम जनता उतना ही उन्हें अमान्य करती गयी।

२१ फरवरी १९६२ को बंगला को पाकिस्तान की राष्ट्रभाषा बनाने का आन्दोलन करने वाले छात्रों पर पुलिस ने गोली चलायी जिसके कारण २६ व्यक्ति मरे और ४०० से ऊपर घायल हुए। अन्त में पाकिस्तानी सरकार को झुकना पड़ा। भले नाम के लिए सही बंगला भी पाकिस्तान की राष्ट्रभाषा मान ली गयी। इसके बाद पूर्व बंगाल की राजनीति में बंगालीपन की भावना का क्रमिक प्रसार होता गया। इस सन्दर्भ में बंगालीपन का अर्थ था इस्लामी राजनीतिक चेतना के मुकाबले में असाम्प्रदायिक राजनीतिक चेतना का अवलम्बन तथा पश्चिमी पाकिस्तानी उच्च वर्ग के निहित स्वार्थों के संरक्षण के मुकाबले में बंगाली निम्न मध्यवर्ग एवं किसान मजदूरों के हितों का संरक्षण।

स्वभावतः न केवल सांस्कृतिक स्तर पर बल्कि आर्थिक राजनीतिक स्तर पर भी बंगाली जनता इस्लामी मुखौटा लगाये पश्चिमी पाकिस्तानी सामन्ती-पूँजीवादी राजसत्ता से बार-बार टकराती रही।

यों तो पाकिस्तानी शासन-यंत्र आरंभ से ही पूर्वी बंगला का शोषण करता रहा। किन्तु अयूब के दस वर्ष के सैनिक तानाशाही शासन में तो उसकी कोई सीमा ही न रही। पाकिस्तान की सृष्टि के समय आर्थिक दृष्टि से पूर्वी और पश्चिमी पाकिस्तान करीब-करीब एक ही सी स्थिति में थे। बल्कि पूर्वी पाकिस्तानी खाद्यान्य की दृष्टि से अधिमात्र (सरप्लस) तथा विदेशी मुद्रा के उपार्जन की दृष्टि से पाट और चाय के कारण कहीं अधिक समर्थ था। किन्तु लगातार शोषण के कारण पूर्वी पाकिस्तान श्मशान बनता चला गया और देश का करीब-करीब सारा धन पश्चिमी पाकिस्तान के २२ परिवारों की मुट्ठियों में आ गया। पश्चिमी पाकिस्तानी शासकों की दृष्टि में बंगाली मुसलमान कभी समानता के हकदार भाई नहीं रहे। संख्या में अधिक और पाकिस्तानी अर्थ-नीति के सबसे बड़े सम्बल पाट और चाय के उत्पादक होते हुए भी बंगाली मुसलमान उनकी दृष्टि में ठिगने, मरियल, काले, बदसूरत, झगड़ालू और नीची जाति के हिन्दुओं की औलाद से ज्यादा कुछ नहीं थे। पूर्वी पाकिस्तान को उपनिवेश से ज्यादा ऊँचा दर्जा व्यवहार में पश्चिमी पाकिस्तानियों ने कभी नहीं दिया। आखिर इस भेदभाव को बंगाली मुसलमानों की नयी प्रबुद्ध पीढ़ी कब तक सहती ?

और फिर बंगाली मुसलमानों के नेता अब नवाब अब्दुल लतीफ जैसे हीनता ग्रन्थि युक्त व्यक्ति नहीं, शेख मुजीब, ताजुद्दीन अहमद, मुहम्मद तोहा और मौलाना मसानी जैसे तेजस्वी एवं कर्मठ व्यक्ति थे। स्वतंत्रता और समानता के इच्छुक, विद्वत्ता और बुद्धिमत्ता में पश्चिमी पाकिस्तानियों से किसी प्रकार कम नहीं, राजनीतिक चेतना में उनसे कहीं ज्यादा अग्रसर बंगाली मुसलमानों की स्वाभिमानी नयी पीढ़ी ने सोचना शुरू किया कि उन्हें इस हीन स्थिति में क्यों आना पड़ा। ऐसा क्यों है कि पश्चिमी पाकिस्तानी कभी उनकी भाषा का गला घोंटने की चेष्टा करते हैं, कभी उनके इतिहास को अस्वीकारते हैं, कभी उनकी पूरी जाति की अवमानना कर उसे गुलाम होने योग्य ही ठहराते हैं ? इसके राजनीतिक, आर्थिक, सैनिक बहुत से कारण हो सकते हैं किन्तु उन्हें लगा कि सबसे बड़ा कारण अपनी अस्मिता (आइडेंटिटी) के प्रति किया गया उनका अपना अविवेकी अत्याचार है। आखिर उन्होंने ही तो अपना प्रथम परिचय मुसलमान माना था, उन्होंने ही तो बंगाली जाति और संस्कृति के उत्तराधिकार को हिन्दू कह कर ठुकरा दिया था। सामयिक आर्थिक कारणों से हो या अंग्रेजों की कूटनीति के फलस्वरूप हो या विश्व इस्लाम के मोहक सपने के कारण हो, उन्होंने ही तो इतिहास, भूगोल, अर्थनीति नृतत्व आदि को झुठला कर केवल मजहब के आधार पर राष्ट्रनिर्माण के सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया था। उन्हें लगा कि मुख्य अपराधी वे खुद हैं और मुक्ति का मार्ग पहले अपनी गलती को सुधार कर अपने सही परिचय को स्वीकारना ही है।

बंगाली मुसलमानों के लिए हिन्दुओं की आर्थिक प्रधानता का भय समाप्त हो चुका था। ब्रिटिश कूटनीति की स्थानापन्न विश्व कूटनीति (जिसमें अमेरिका, चीन, ब्रिटेन आदि शामिल थे) खुल्लमखुल्ला पश्चिमी पाकिस्तान की स्थापित सत्ता के साथ थी अतः वह भी बंगालियों को बरगलाने की स्थिति में नहीं थी। अरब राष्ट्रों की आपसी फूट, तुर्की की संदिग्ध तटस्थता, ईरान की पश्चिमावलम्बिता, पाक-अफगान तथा [illegible] के द्वन्द्व की भँवर में विश्व इस्लाम का स्वप्न डूब चुका था। अलग-अलग जातियों और संस्कृतियों को एक सूत्रता में बँटने में समर्थ होने की बात तो दूर रही, एक ही अरब जाति के विभिन्न राज्यों में इजराइल जैसे शत्रु के रहते हुए भी इस्लाम एकता स्थापित नहीं कर सकता था। नये बंगाली मुस्लिम मस्तिष्क ने सोचना शुरू किया कि मुसलमान होना ही यदि पहला और वास्तविक परिचय होता तो ये सभी मुसलमान राष्ट्र आपस में इस कदर क्यों लड़ते रहते और स्वयं उनके मामले में पश्चिमी पाकिस्तानी उनका इस प्रकार अपमान

और शोषण क्यों करते ? उन्हें लगा कि मजहबी फितूर में मुब्तिला होकर उनकी पिछली पीढ़ी ने जिस पाकिस्तान का सपना देखा था, उसकी नींव भहरा कर गिर पड़ी है। पूर्वी पाकिस्तान और पश्चिमी पाकिस्तान को जोड़ने वाला तत्त्व केवल इस्लाम था जो पश्चिमी पाकिस्तानी हुक्मरानों के द्वारा तिरस्कृत और विश्व के राजनीतिक यथार्थ के समक्ष अप्रभावी था। अतः पूर्वी पाकिस्तान की नयी पीढ़ी ने तै किया कि उनका वास्तविक परिचय बंगाली है, इस्लाम के आने के पहले भी वे बंगाली थे और इस्लाम के आने के बाद भी वे बंगाली हैं। इस्लाम ने उनकी संस्कृति में कुछ जोड़ा है, उसे बदला नहीं है। उनकी देशज संस्कृति में इस्लाम पूर्व के जो श्रेष्ठ तत्व हैं, वे उन्हें स्वीकार है, चाहे उनका स्रोत वेदों, उपनिषदों में हो, चाहे त्रिपिटकों, चर्यागीतों में, चाहे शाक्त या वैष्णव साधना में। इस्लाम को स्वीकार कर लेने मात्र से वे इस धरोहर से वंचित नहीं हो जाते, वे बंगाली पहले हैं और मुसलमान बाद में। बदरुद्दीन उमर ने इस मनोभाव को 'मुसलमानों का स्वदेश लौटना' कहा है। देश और देशभाइयों से कट कर काल्पनिक पाकिस्तानी मोह से ग्रस्त होकर जो दूरवर्त्ती धर्मभाइयों से जुड़ने गये थे, वे उनसे उत्पीड़ित और निराश होकर पुनः अपने देश और देशवासियों से जुड़ गये हैं। अर्थात् उनकी मानसिकता अब मुसलमान बंगाली की है, बंगाली मुसलमान की नहीं। अब उनके लिए बंगाली विशेष्य है, मुसलमान विशेषण मात्र।

बंगाली होने के कारण उन्हें अपनी भाषा, अपनी संस्कृति, अपनी परम्परा प्यारी है, भले ही उसकी सर्जना में हिन्दुओं का भरपूर योग रहा हो। नजरुल उनके जितने अपने हैं उतने ही बल्कि उनसे भी ज्यादा उनके अपने हैं रवीन्द्रनाथ। इस मूलतत्व को समझ लेने के बाद ही उस विकास को समझा जा सकता है जिसमें 'जय बांगला' उनका राष्ट्रीय नारा और रवीन्द्रनाथ का अमर गीत ! 'आमार सोनार बांगला आमि तोमाय भालो बासी' (ओ मेरे सोने के बंगाल। मैं तुम्हें प्यार करता हूँ।) उनका राष्ट्रगीत बना। इसी मानसिकता के कारण आग की लपटों और रक्त की नदियों को पार कर [illegible] मुक्ति युद्ध में विजयी होकर पूर्वी पाकिस्तान आज बांगला देश बना है।

स्पष्ट है कि इस्लामी मुखौटा लगी उच्चवर्गीय सैनिक तानाशाही द्वारा शासित पाकिस्तान से सर्वथा भिन्न राष्ट्रीयता, धर्म-निरपेक्षता, लोकतंत्र एवं समाजवाद का विश्वासी स्वतंत्र बांगला देश सुनियोजित सांस्कृतिक क्रान्ति की उपज है, महज विस्फोट की नहीं।

२. बांगला देश की संग्रामी कविता

बांगला देश की संग्रामी कविता से मेरा तात्पर्य उस कविता से है, जो अपने सही रूप को पहचानने और उसे प्रतिष्ठित करने के बांगला देश के भीतरी और बाहरी संघर्ष की प्रेरिका, सहचरी और सृष्टि रही है। पाकिस्तानी कुहासे को चीर कर अपनी सही अस्मिता (आइडेंटिटी) की तलाश पूर्व बंगाल के हिन्दू-मुस्लिम निवासियों के लिए न सहज थी, न पूर्व नियोजित। साम्प्रदायिकता के मरुकान्तार में भटक गयी और अपने देश से कट कर धर्म के नाम पर भिन्न देशी संस्कृति को ओढ़ने की प्राणपण से चेष्टा करने वाली जाति अपने मोह भंग के बाद ही दूसरों की सिखायी बोली और दिखायी राह को छोड़ कर अपनी चरितार्थता के लिए प्रयासशील हो सकती थी। पाकिस्तानी शासकों द्वारा बार-बार प्रवंचित एवं विकृत होते जाने से इन्कार कर पूर्व बंगाल की जनता—विशेषतः मुस्लिम जनता ने जैसे-जैसे अपने सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक संकटों का समाधान अपनी परम्परा, आवश्यकता एवं अभीप्सा के आधार पर करना चाहा वैसे-वैसे पाकिस्तानी निहित स्वार्थों से उसका द्वन्द्व गहरा होता गया; जिसके फलस्वरूप मूलभूत परिवर्तन की कामना थोड़े से प्रबुद्ध जनों तक ही सीमित न रह कर सारी जाति में व्याप्त हो गयी। परिवर्तन की ललक और उसकी प्रक्रिया भाव, विचार और कर्म तीनों स्तरों पर घटित होती है। सूक्ष्म भावात्मक उद्वेलन विचार के द्वारा स्पष्ट तथा कर्म के द्वारा मूर्त होता है, साथ ही पुष्ट एवं सार्थक भी। बांगला देश की कविता में वर्त्तमान के औचित्य के प्रति भीतरी संशय, ऊहापोह, परिवर्त्तन की कामना, जन-आन्दोलन से युक्त होने का उत्तरदायित्त्व बोध केवल मुखरित ही नहीं हुआ है बल्कि उससे जनता को अपना लक्ष्य स्थिर करने में सहायता भी मिली है। जब सारा देश किसी एक आदर्श को अपना जीवन-लक्ष्य बना लेता है तब कविता केवल शब्दों का खेल न रहकर मूर्त्तिमती प्रेरणा बन जाती है। पाकिस्तानी शासकों के अत्याचारों के आगे झुकने के स्थान पर जब बांगला देश की जनता मुक्ति युद्ध की घोषणा कर दी तब उसकी कविता में पीड़ा और यंत्रणा के संत्रास के बावजूद दृढ़ संकल्प और संघर्ष का वह अपराजेय स्वर

गूँजा, जो पूरी जाति के अन्तरतम से आया था। मुक्ति युद्ध ने बांगला देश की कविता को और सशक्त-उदात्त बना दिया अर्थात् कविता ने क्रान्ति को और क्रान्ति ने कविता को जीवन दिया बीजांकुर न्याय की तरह।

जिन सामाजिक-राजनीतिक-आर्थिक कारणों ने पूर्व बंगाल को पाकिस्तान का अंश बना दिया था, उन्होंने उसकी कविता में भी कम दिग्भ्रान्ति और धुन्ध पैदा नहीं की थी। आधुनिक बँगला साहित्य के कृति साहित्यकार अधिकांशतः हिन्दू थे। मुसलमान बंगाली समाज का इस साहित्य के प्रति द्वैधीभाव था। एक तरफ उनके उच्चवर्गीय नेता उर्दू-फारसी-परम्परा से उन्हें जोड़ना चाहते थे, दूसरी तरफ बंगाली होने के कारण अपनी भाषा के साहित्य के प्रति उनका सहज अनुराग था। उन्नीसवीं शताब्दी से ही उनके साम्प्रदायिक नेता उन्हें बताते चले आ रहे थे कि यह बंगला साहित्य हिन्दू साहित्य है, यह बंगला भाषा हिन्दू भाषा है; अतः यदि वे मुसलमानी भाषा उर्दू में सीधे न लिख पायें तो भी अपनी बँगला में अरबी, फारसी शब्दों का प्रचुर प्रयोग कर मुस्लिम-इतिहास से प्रेरणा लेकर मुस्लिम-बंगला-साहित्य की रचना करें। कुछ मुस्लिम बंगाली लेखकों और कवियों ने इस प्रतिक्रियावादी दृष्टि से कुछ साहित्य रचा भी किन्तु वह प्राणवान् नहीं हो सका। तभी १९२२ ई० में 'अग्नि वीणा' के कवि के रूप में बँगला साहित्य में धूमकेतु की तरह प्रकट हुए विद्रोही नजरुल इस्लाम। उनके तेजस्वी काव्य ने हिन्दू-मुसलमान की सीमाओं में अपने को बँधने नहीं दिया। अपनी साँझ विरासत को उन्होंने मुक्त मन से स्वीकारा और भारतीय राष्ट्रीयता का प्रबल समर्थन किया। नजरुल की निर्विवाद, व्यापक प्रतिष्ठा ने मुस्लिम बंगाली कवियों एवं लेखकों में प्रचुर आत्मविश्वास की सृष्टि की और अब वे बंगला में अधिक आश्वस्त होकर साधिकार लिखने लगे।

पाकिस्तान के निर्माण के समय जो मुस्लिम बंगाली कवि थे, उन्हें प्रमुखतः दो भागों में बाँटा जा सकता है—(१) सामान्य बंगला काव्य परम्परा से सम्पृक्त कवि और (२) पाकिस्तानी राष्ट्रीयता एवं इस्लामी पुनरुत्थान के समर्थक कवि। पहली धारा के कवियों पर एक ओर रवीन्द्रनाथ का दूसरी ओर बंगाल के लोकगीतों और लोक-जीवन का गहरा प्रभाव था। जसीमुद्दीन (१९०२ ई०) इस धारा के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। उन्होंने रवीन्द्रनाथ और लोककाव्य चेतना को आत्मसात् कर जिस सहज, स्निग्ध कवित्व का परिचय दिया है, उसका समादर दोनों बंगालों में हुआ है। अन्य कवियों में गुलाम मुस्तफा, शहादत हुसेन, अब्दुल कादिर, बेगम सूफिया कमाल (१९११ ई०) आदि पर रवीन्द्रनाथ

का तथा वन्दे अलीमियां, अब्दुल हई मशरिकी आदि पर लोक-जीवन एवं लोक साहित्य का गहरा प्रभाव था। पाकिस्तान बन जाने के बाद भी ये कवि उसके संकीर्ण साम्प्रदायिक दर्शन से यथासंभव मुक्त रह कर ही काव्य-रचना करते रहे। बंगाली संस्कृति और बंगला भाषा की प्रतिष्ठा को जब-जब पाकिस्तानी शासकों ने आघात पहुँचाना चाहा, नयी पीढ़ी के कवियों के स्वर में स्वर मिलाकर इन कवियों ने भी उसका प्रतिवाद किया।

दूसरी धारा के प्रमुख कवि हैं फर्रूख अहमद। इन्होंने पाकिस्तानी आन्दोलन का पूरा समर्थन किया था। बंगला कविता में मुस्लिम राष्ट्रीयता की भावना का प्रसार इन्होंने ही किया। पाकिस्तानी राष्ट्रीयता और इस्लाम की सांस्कृतिक परम्परा को काव्य-विषय के रूप में अपनाने के प्रयास में ये बांगला देश के यथार्थ से कटते चले गये। सद्यः स्वाधीन पाकिस्तान में अपने सपने को (मुसलमानों में सुख, समृद्धि, प्रचुरता की कल्पना को) साकार देखने की इच्छा इनके काव्य का प्रधान गुण है। इस्लामी इतिहास के गौरव को बंगाली मुसलमानों तक काव्य के माध्यम से पहुँचाने के इनके इन आह्वान ने तालीम हुसेन, मुफख्खरुल इस्लाम, बेनजीर अहमद जैसे कवियों को आकृष्ट किया; जिन्होंने अरब, ईराक, ईरान आदि देशों के कथानकों, चरित्रों, प्रतीकों के आधार पर काव्य-रचना की। श्री सेवाव्रत चौधरी ने ठीक ही कहा है कि इस धारा का मूल लक्षण 'स्वप्नचारिता' है[1] अपने देश के मनुष्य, अपने देश की प्रकृति, अपने देश की परम्पराओं के प्रति सहज ममत्व होने के स्थान पर एक काल्पनिक आदर्श के चित्रण की चेष्टा ने अपने देश की वास्तविक समस्याओं को समझने और उनके वास्तविक समाधान खोजने के स्थान पर स्वप्नलोक के कल्पित समाधानों की ओर इन कवियों को भरमा दिया। अप्रचलित अरबी, फारसी शब्दों की भरमार कर मुसलमानी बंगला भाषा गढ़ने के जोश ने उनकी भाषा को दुर्बोध्य एवं अकाव्योचित बना दिया। ज्यों-ज्यों पाकिस्तानी राष्ट्रीयता छलावा बनती गयी पाकिस्तानी शासन की शोषक प्रकृति उघड़ती गयी, त्यों-त्यों बांगला देश की कविता इन कवियों के दिखाये हुए मार्ग से विमुख होती गयी। इस परिवर्तन को समझने के लिए पूर्व बंगाल की मूलभूत इच्छाओं तथा पश्चिमी पाकिस्तानी स्वार्थों की टकराहटों की पृष्ठभूमि को समझना होगा।

पाकिस्तानी स्वप्नचारिता और पूर्व बंगाल के यथार्थ में पहली टकराहट भाषा के प्रश्न को लेकर हुई। २५ फरवरी, १९४८ को पाकिस्तान संविधान

---

१. शक्ति चट्टोपाध्याय द्वारा सम्पादित पूर्व बांगलार श्रेष्ठ कविता, पृ० ६

परिषद् में श्री धीरेन्द्रनाथ दत्त ने प्रस्ताव किया था कि बँगला को भी पाकिस्तान की एक राष्ट्र-भाषा माना जाये तथा संविधान परिषद् में उसके व्यवहार का अधिकार मिले। श्री जिन्ना प्रभृति मुस्लिम लीगी नेताओं ने इसे 'हिन्दुओं का षड्यंत्र' कहकर अस्वीकृत कर दिया। पूर्व बंगाल के एक भी मुस्लिम प्रतिनिधि ने केन्द्रीय नेतृत्व के क्षुब्ध हो जाने के भय से बंगला के समर्थन में एक भी शब्द नहीं कहा। किन्तु ढाका विश्वविद्यालय के छात्रों ने कई बार हड़तालें कर इसका तीव्र प्रतिवाद किया और बंगला भाषा के समर्थन में एक महीने तक आन्दोलन चलाया। उस समय श्री जिन्ना के व्यक्तिगत प्रभाव एवं विरोधी दलों की दुर्बलता के कारण यह आन्दोलन दब गया किन्तु भीतर-भीतर बँगला को भी पाकिस्तानी राष्ट्रभाषा बनाने की माँग उसके बाद के वर्षों में जोर पकड़ती गयी। पूर्व बंगाल की इस लोकतांत्रिक माँग की अवहेलना कर पाकिस्तान की बेसिक प्रिंसिपल्स कमेटी द्वारा यह घोषित किये जाने पर कि 'उर्दू ही पाकिस्तान की एकमात्र राष्ट्रभाषा होगी' पूर्व बंगाल के छात्रों के नेतृत्व में बंगाली जनता ने २१ फरवरी, १९५२ को ढाका में बँगला भाषा को भी राष्ट्र-भाषा बनाने के लिए शक्तिशाली प्रदर्शन किया। अत्याचारी सरकार ने गोली चलाकर उसे कुचलना चाहा, २६ व्यक्ति शहीद हुए और ४०० व्यक्ति घायल हुए। उन्हीं शहीदों की लाशों पर उसी दिन स्वतंत्र बांगला देश की नींव पड़ी। बँगला भाषा की रक्षा का आन्दोलन धीरे-धीरे बांगला देश की मुक्ति का आन्दोलन बन गया। बाद में पश्चिमी पाकिस्तान नेतृत्व को पूर्व बंगाल की एकता के सामने झुकना पड़ा। १९ अप्रैल, १९५४ को पाकिस्तान की संविधान परिषद् ने उर्दू के साथ नाम के लिए बंगला को भी पाकिस्तान की राष्ट्रभाषा मान लिया—किन्तु तब तक पाकिस्तानी कल्पना में विच्छेद की गहरी दरार पड़ चुकी थी।

दूसरी टकराहट हुई राजनीतिक आर्थिक मोर्चे पर। मुस्लिम लीग का नेतृत्व नवाबों, नवाबजादों और बड़े पूँजीपतियों के हाथों में था। पूर्व बंगाल में इनकी संख्या बहुत कम थी। हिन्दू जमीन्दारों और व्यापारियों का स्थान भी पश्चिमी पाकिस्तानी उद्योगपतियों और व्यापारियों ने ले लिया था। पूर्व बंगाल के अधिकतर राजनीतिक कार्यकर्त्ता निम्न मध्यवर्ग के थे। वे जब भी साधारण जनता की स्थिति में वास्तविक सुधार लाने की कोई माँग करते, उच्च नेतृत्व उसे इस्लाम-विरोधी घोषित कर देता। २४ जून, १९४९ को पूर्व बंगाल के कार्यकर्त्ताओं ने मुस्लिम लीगी भ्रष्टाचारी नेतृत्व को तिलांजलि देकर 'अवामी मुस्लिम लीग' का गठन किया। सितम्बर, १९५३ में इसे अवामी लीग की असाम्प्रदायिक संज्ञा दी गयी। पूर्व बंगाल की जनता में बढ़ती हुई जन-

वादी, असाम्प्रदायिक, राजनीतिक चेतना का ही यह परिणाम था कि मार्च, १९५४ के चुनाव में मुस्लिम लीग का पूर्व बंगाल से सफाया हो गया। अवामी लीग, कृषक श्रमिक पार्टी आदि के यूनाइटेट फ्रंट की अल्प-स्थायी सरकार के कारण और कुछ हुआ हो या न हुआ हो, पश्चिमी पाकिस्तानी नेतृत्व को बंगाली जनता ने सदा-सदा के लिए निश्चित रूप से नकार दिया। बंगाली अस्मिता को प्रतिष्ठित करने में इसका बहुत बड़ा योगदान है।

१९५४ से १९५८ तक पश्चिमी पाकिस्तानी—मुख्यतः पंजाबी नेतृत्व ने ख्वाजा नाजिमुद्दीन, फजलुलहक, सुहरावर्दी, मो० मसानी का एक दूसरे के विरुद्ध उपयोग कर बंगाली बहुमत को विभक्त कर किसी तरह अपना मतलब सिद्ध किया। किन्तु क्रमशः यह स्पष्ट होता गया कि लोकतांत्रिक पद्धति में पश्चिमी पाकिस्तान को (मुख्यतः पाक पंजाब को) पूर्व बंगाल के प्रतिनिधियों का नेतृत्व स्वीकार करना होगा, जिसके लिए पश्चिमी पाकिस्तानी नेता कत्तई तैयार नहीं थे। बात यह थी कि पाकिस्तान में तब तक वास्तविक शक्ति राजनीतिज्ञों के हाथों से निकल कर सेना, सिविल सर्विस एवं पूँजीपतियों के हाथों में चली गयी थी जिन पर पंजाबियों का करीब-करीब एकाधिकार था। बंगाली राजनीति में ही प्रभावशाली थे, कुछ हद तक न्यायपालिका में भी उनका जोर था। इसीलिए वास्तविक शक्तिसम्पन्न वर्गों ने मिलकर लोकतंत्र का खात्मा कर दिया एवं अपने वर्ग के सैनिक तानाशाह अयूब के हाथों में २७ अक्टूबर, १९५८ को सारी शक्ति सौंप दी। नये सैनिक शासन में पूर्वी बंगाल की स्थिति पश्चिमी पाकिस्तान के उपनिवेश-जैसी रह गयी, क्योंकि पाकिस्तान के शक्ति केन्द्र में उसकी आवाज नहीं के बराबर थी। पूर्वी बंगाल का आर्थिक शोषण खुली वैधानिक लूट के स्तर तक पहुँच गया। पूर्वी बंगाल के लिए १९५८ तक से १९६२ तक के चार वर्ष सैनिक-शासन का पहला झटका झेलने और उससे संघर्ष करने के लिए आन्तरिक शक्ति-संग्रह के वर्ष थे। अपनी आरंभिक सफलता से उत्साहित होकर अयूब ने पूर्वी बंगाल के व्यक्तित्व को कुचलने की जितनी चेष्टा की, शेख मुजीब के नेतृत्व में वह उतना ही निखरता चला गया। १९६२ के बाद का इतिहास पश्चिमी पाकिस्तानी शासन एवं शोषण के विरुद्ध मुक्त होने तक पूर्व बंगाली जनता का सतत् संग्राम है। राजनीतिक मतवाद की दृष्टि से अवामी लीग कृषक श्रमिक पार्टी, नेशनल अवामी पार्टी, पाकिस्तान नेशनल कांग्रेस कम्युनिस्ट पार्टी तथा अन्य छोटे-बड़े वामपंथी दल अपनी अलग-अलग बातें भले कहते रहे; किन्तु पहले पूर्व बंगाल की स्वायत्तता और बाद में स्वतंत्रता के प्रश्न पर उनमें निश्चित रूप से सहमति थी।

पूर्व बंगाल की कविता को इसी पृष्ठभूमि पर अपने स्वतंत्र विकास के लिए निरन्तर भीतरी एवं बाहरी संघर्ष करना पड़ा। भीतरी कशमकश के मूल में कुछ तीखे प्रश्न थे। पूर्व बंगाल की कविता किस परम्परा से जुड़े ? उसकी शब्दावली कैसी हो ? उसमें प्रयुक्त मिथक, प्रतीक, बिम्ब कहाँ के हों ? उसकी सामाजिक भूमिका क्या हो ?

पाकिस्तानी शासन द्वारा सम्पोषित एवं मुस्लिम लीगी विचारधारा से प्रभावित कवियों, बुद्धिजीवियों के लिए इनके उत्तर आसान थे। अरबी, फारसी, उर्दू काव्य-परम्परा से ही उन्हें जुड़ना चाहिए, उनके आदर्श कवि अल्लामा इकबाल ही हो सकते हैं—नजरुल इस्लाम को केवल आंशिक रूप से ही स्वीकारा जा सकता है, उनकी भाषा में अरबी, फारसी शब्दावली एवं इस्लामी मिथक, प्रतीक सन्दर्भ की ही प्रचुरता होनी चाहिए; पाकिस्तानी राष्ट्रीयता को दृढ़ करना ही उसका लक्ष्य होना चाहिए।

किन्तु ये उत्तर व्यवहार में खोटे साबित हुए। फर्रूख अहमद और उनके अनुयायियों की रचनाएँ पूर्व बंगाल के मुस्लिम मानस को स्पन्दित नहीं कर सकीं; क्योंकि अपने देश और अपने समय के प्रति उनकी अवज्ञा ने तथा अप्रचलित दुरूह अरबी, फारसी शब्दावली मिथक, प्रतीक, चरित्र आदि के प्रचुर प्रयोग ने उनकी काव्य सृष्टि को कृत्रिम एवं निष्प्राण बना दिया था। दूषित राजनीति से प्रभावित इस संकीर्ण एवं भ्रान्त साहित्यिक विचारधारा का प्रतिवाद बंगला भाषा और साहित्य के पुराने मनीषी विद्वान डॉ० मुहम्मद शहीदुल्ला ने १९४८ में ही किया था। किन्तु तब उनकी बात अनसुनी कर दी गयी थी। १९५४ तक आते-आते परिस्थिति बहुत कुछ साफ हो चली थी। अप्रैल, १९५४ में ढाका में अनुष्ठित पूर्व पाकिस्तान साहित्य सम्मेलन के अपने उद्घाटन-भाषण में डॉ० शहीदुल्ला ने दो टूक शब्दों में कहा था—'१४ अगस्त १९४७' को बहुत दिनों की गुलामी के बाद जब आजादी का सुप्रभात हुआ, तब प्राणों में आशा जगी थी कि अब स्वाधीनता की मुक्त वायु में बँगला-साहित्य अपनी समृद्धि का पथ खोज सकेगा। दिसम्बर, १९४८ में ढाका में साहित्य सम्मिलनी का जो अधिवेशन हुआ था, उसके हृदय में बहुत आशा सँजो कर ही मैंने अभिभाषण दिया था। किन्तु उसके बाद जो प्रतिक्रिया हुई, उससे भलीभाँति समझ में आया कि स्वाधीनता के नये नशे ने हम लोगों की बुद्धि को चौपट कर दिया है। अरबी हरफों में बंगला को लिखना बंगला भाषा में अरबी, फारसी शब्दों का अबाध आयात करना, प्रचलित बंगला भाषा को गंगा तीर की भाषा बता कर उसके बदले पद्मातीर की भाषा के प्रचलन की झोंक आदि-आदि पागलपन हम लोगों के साहित्यिकों के एक दल

पर सवार हो गया। वे इस पागलपन से इतने मतवाले हो गये कि जिस प्रकृत साहित्य-सेवा से देश और समाज का मंगल हो सकता था, उसके पथ पर कूड़े का ढेर लगा कर साहित्य की उन्नति के पथ को केवल रुद्ध कर ही खुशी से फूल नहीं उठे वलिक शुद्ध साहित्य-सेवियों को अनेक प्रकार से अपमानित एवं विपद्‌ग्रस्त करने के लिए कसम खा कमर बाँध कर जुट गये। उनको इसके लिए उकसाने में कुछ उच्च पदस्थ सरकारी कर्मचारियों ने कसर नहीं रहने दी। फलस्वरूप बंगला भाषा और साहित्य का अनुशीलन, रवीन्द्रनाथ, शरच्चन्द्र एवं अन्यान्य पश्चिम बंग के कवियों और साहित्यिकों के ग्रन्थों की आलोचना यहाँ तक कि बंगाली नाम तक कुछ लोगों को पाकिस्तान के विरुद्ध षड्‌यंत्र जैसा लगने लगा। इसके चलते कोई-कोई सम्मिलित बंगाल के भूत के भय से आतंकग्रस्त होकर आयँ-बायँ वकने लगे और जोरों से हाथ-पाँव पटकने लगे। कराची की तावेदार विगत लीग सरकार ने बंगला भाषा और साहित्य की उन्नति के लिए कुछ करना तो दूर रहा, बंगाली बच्चों के कोमल माथों पर उर्दू का बोझ लाद दिया और केन्द्रीय सरकार की अरबी लिपि में बंगला भाषा को लिखने की तथा उर्दू को एकमात्र राष्ट्रभाषा बनाने की अपचेष्टा में सहयोग दिया।[1]

इस लम्बे उद्धरण से स्पष्ट है कि ६-७ वर्षों की दिग्भ्रान्ति से पूर्व बंगाल के मनीषी और प्रकृत साहित्य सेवी कितनी गंभीरता से जूझते रहे थे और संयुक्त मोर्चे की सरकार के गठित होते ही उन्होंने उसे नकारने और अपनी प्रकृत परम्परा से जुड़ने की घोषणा करने में विलम्ब नहीं किया। नयी पीढ़ी के कवि, लेखक, विचारक तो बँगला भाषा की रक्षा के लिए प्रदत्त २१ फरवरी, १९५२ के बलिदान के बाद अपने 'बंगालीपन' और विशिष्ट अस्तित्व की सगर्व घोषणा करने लगे थे। उन्होंने भाषा के हिन्दू-मुसलमान होने के सिद्धान्त को अस्वीकार कर दिया। एक ओर उर्दू मुस्लिम भाषा है और संस्कृतनिष्ठ बंगला भाषा हिन्दू भाषा है, यह मत उनके लिए अग्राह्य हो गया। उनकी दृष्टि में उर्दू पाकिस्तान की ३ प्रतिशत जनता द्वारा बोली जानेवाली, पूर्व बंगाल पर जबरन थोपी जानेवाली और इस संदर्भ में उच्च वर्ग का स्वार्थ सिद्ध करने वाली 'विदेशी भाषा' थी जब कि बंगला बंगाली हिन्दू-मुसलमानों की साँझी विरासत से पुष्ट जनभाषा थी, मुसलमानियत के नाम पर जिसका रूप विकृत करना उन्हें असह्य था। स्वाभाविक रूप से प्रचलित और स्वीकृत

बदरुद्दीन उमर कृत 'पूर्व बांगलार भाषा आन्दोलन ओ तत्कालीन राजनीति' के पृ० १९१–१९२ में उद्‌धृत।

अरबी, फारसी शब्द, चरित्र, प्रतीक आदि तो उन्हें स्वीकार थे; किन्तु उनकी टकसाल कायम करना उनके लिए अपनी भाषा से द्रोह करना था। इकबाल की श्रेष्ठता से इन्कार न करते हुए भी उनके आदर्श तो अपनी सम्पूर्णता में नजरुल इस्लाम और रवीन्द्रनाथ ही हो सकते थे। १९४७ के पहले का रचा सारा बंगला साहित्य (अर्थात् आवहमान काल से चले आनेवाले बंगाल का सांस्कृतिक उत्तराधिकार) उनका अपना साहित्य था और १९४७ के बाद भी पश्चिम बंगाल के बंगला साहित्य के प्रति उनका सहज ममत्व था। उनकी कविता में अरब की मरुभूमि या ईरान के गुलाब प्रसंगवश आ जायें तो आ जायें किन्तु उनका यशोगान या उनके वीरों, प्रेमियों की कथा ही उनके लिए चरम वर्ण्य कैसे हो सकती थी ? शस्य श्यामला बंगभूमि, उसकी सांस्कृतिक परम्पराएँ, लोककथाएँ, उसके ऐतिहासिक महापुरुष, उसका आक्रान्त वर्तमान, उसके उज्ज्वल भविष्य के निर्माण का स्वप्न ही उनके लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विषय थे। फिर उनका निश्चय था कि उन्हें संघर्षशील विश्व मानवता की व्यापक नियति से जुड़ना है, प्रतिक्रियावादी, साम्राज्यवादी, पूँजीवादी शक्तियों के हाथों की कठपुतलियाँ नहीं बनना है, चाहे उनकी डोरें कितने ही मोहक साम्प्रदायिक सूत्रों से क्यों न बटी गयी हों ? इस गहरे आन्तरिक संघर्ष से उबर कर अपनी प्रकृत परम्परा से पूर्व बंगाल की कविता को जोड़नेवाले कवियों में प्रमुख हैं अहसान हबीब, सैयद अली अहसान, सिकन्दर अबू जफर, मजहरुल इस्लाम, शमसुर रहमान, अलाउद्दीन अल आजाद, अल महमूद, शहीद कादरी, फजल शहाबुद्दीन, नरुलजुल्ला, हसन हफीजुर्रहमान आदि-आदि। चिन्तन के स्तर पर बंगाली मुसलमानों के मस्तिष्क पर छाये साम्प्रदायिकता के कुहासे को दूर करने में बदरुद्दीन उमर का योगदान सचमुच अद्वितीय है। उन्होंने 'संस्कृतिर संकट' साम्प्रदायिकता, 'सांस्कृतिक साम्प्रदायिकता' जैसी तेजस्वी पुस्तकें लिखकर प्रमाणित किया कि विद्यासागर, बंकिमचन्द्र, शरच्चन्द्र, मधुसूदन, रवीन्द्रनाथ आदि को अपने सांस्कृतिक उत्तराधिकार से वाद देने की कुछ बंगाली मुस्लिम बुद्धिजीवियों की चेष्टा वस्तुतः आत्मघाती है। उनका निष्कर्ष था, 'हम पूर्व पाकिस्तान के बंगाली इस सत्य को जिस दिन तक यथार्थ रूप से उपलब्ध नहीं कर लेंगे कि जिस दिन तक हम लोग चंडीदास, विद्यासागर, बंकिमचन्द्र, माइकेल, मधुसूदन, रवीन्द्रनाथ, शरच्चन्द्र, अतुल प्रसाद, अवनीन्द्रनाथ इत्यादि को अपने साहित्य एवं संस्कृति के ऐतिह्य के धारक एवं वाहक के रूप में गिनना एवं मानना नहीं सीखेंगे, उस दिन तक अपनी संस्कृति के मध्य सृष्टि की गति का संचार करने में हम लोग समर्थ नहीं होंगे।'[1]

---

१. पूर्व बांगलार संस्कृतिर संकट, पृ० ९१।

१९५४ के बाद यह धुन्ध छँटती चली गयी और पूर्व बंगाल की कविता नकली बैसाखियों को छोड़ कर अपने देश की ऐतिहासिक परम्परा से पुष्ट अपने पाँवों पर न केवल खड़ी हो गयी बल्कि तीव्र गति से दौड़ने लगी एवं विश्व की प्रगतिशील एवं आधुनिक विचारधाराओं से भी भावात्मक-कलात्मक सम्पर्क स्थापित करने में समर्थ हुई। अपने देश का होकर ही कोई विश्व का हो सकता है, यह पाठ उसने अपने अनुभव से पढ़ा। इसीलिए बांगला देश, बँगला भाषा और बंगाली संस्कृति के प्रति उसका अवरुद्ध प्रेम तीव्र वेग से उमड़ पड़ा।

पूर्व बंगाल की नयी कविता में निश्चय ही बहुत से आयाम हैं। उसमें जहाँ प्रेम, करुणा, आशा, निराशा आदि विविध मानवीय भावनाओं की कुशल अभिव्यंजना है, वहीं प्रकृति के सौन्दर्य का चित्रण भी है और अकेलेपन की यंत्रणा का आधुनिक बोध भी। किन्तु चूँकि सारे देशवासियों में पश्चिमी पाकिस्तान के दम घोंट शिकंजे से मुक्ति पाने की अदम्य आकांक्षा १९६२ के बाद दिनों दिन उग्र होती गयी और चूँकि उसकी पूर्ति के लिए देश को बार-बार आन्दोलनों एवं संघर्षों के पथ पर चलना पड़ा, जिसकी चरम परिणति 'मुक्ति युद्ध' के रूप में हुई। अतः उसका सबसे प्रखर, सबसे प्राणवन्त रूप उसकी संग्रामी कविताओं में ही उभरा है, इस लेख में उसी की विवेचना अभीष्ट है।

बांगला देश की संग्रामी कविता को मुक्तियुद्ध के पूर्व, मुक्तियुद्ध की अवधि में एवं मुक्तियुद्ध के बाद इन तीन प्रमुख दौरों से गुजरना पड़ा है। पहले दौर में पाकिस्तानी देशभक्ति के स्थान पर क्रमशः बंगाली देशभक्ति का स्वर प्रमुख होता गया है। १९५२ के भाषा-आन्दोलन ने इस चेतना को बहुत बल दिया। २१ फरवरी को पूर्व बंगाल में शहीद दिवस के रूप में मनाने की परम्परा ने तरुण कवियों को पश्चिमी पाकिस्तान से अपने पार्थक्य का बोध बार-बार कराया। २५ मार्च, १९७१ के पहले की कविताओं में पूर्व बंगाल और बंगला भाषा के प्रति गहरा प्रेम, सामान्य पीड़ित, शोषित जन गण के अधिकारों की रक्षा के लिए अत्याचारी शासकों को ललकारने का स्वर, अत्याचार और शोषण के प्रति तीव्र आक्रोश तथा चरम बलिदान देकर भी मुक्त होने का वज्र संकल्प ध्वनित हुआ है।

फजल शहाबुद्दीन की 'आमार बांगला' शीर्षक कविता की कुछ पंक्तियाँ हैं :—

पृथिवी अजाना आर बांगला देश रक्ते ध्वनिमय,
जेखानेई जाइ देखि एइ देश चले संगे-संगे

अचेना समुद्रे काँपे बंगभूमि तरंगे-तरंगे
तृष्णार्त्त स्वदेश तुमि केन डाको सकल समय ।[1]

कवि को लगता है कि मेरे लिए पृथ्वी अनजानी है, जब कि बांगला देश मेरे रक्त में ध्वनित होता रहता है । जहाँ जाता हूँ, देखता हूँ कि यह साथ-साथ चलता है, अनचिह्ने समुद्र की तरंग-तरंग में बंगभूमि ही कँपती रहती है और वह पूछ बैठता है, ओ मेरे तृष्णार्त्त स्वदेश, तुम सब समय मुझे क्यों पुकारते रहते हो ? यहाँ कथित तो है, 'पृथ्वी अजाना' किन्तु उसकी एक व्यंजना 'पाकिस्तान अजाना' भी है । स्वदेश के रूप में कवि केवल बांगला देश को ही पुकारता है, पाकिस्तान को नहीं । अपने प्यासे स्वदेश की पुकार कवि ही नहीं कोई भी बंगाली कैसे अनुसुनी कर सकता है, भले ही उस प्यास को बुझाने के लिए उसे अपना रक्त ही देना पड़े ।

पलाश प्रसन्न साँझ के मैदान में बांगला माँ का मुख और हरे-भरे गाँव के मध्य पौष की भोर को उसकी तरुण देह का लावण्य कवि अहसान हबीब को दिखता है । राजा का मणि-माणिक्य उसके घर में न सही किन्तु कवि को लगता है कि उसकी छाती में भरा अपार स्नेह उदार अनुकूलतापूर्वक कवि के अस्तित्व को घेर कर झर रहा है, अविराम झरता ही चला जा रहा है । अपने हृदय के दर्पण में अपनी माँ की स्निग्ध उज्ज्वल प्रतिमा के रूप में कवि अपने स्वदेश को प्रतिष्ठित पाता है और कह उठता है :—

आमार स्वदेश तुमि : सम्पन्न बागान तुमि नओ :
आमि एइ जन स्रोते एइ कर्म प्रवाहे निजे के
मिसिये आमार सारा अस्तित्व, नदीर
एकान्त स्रोतेर मत बये जाबो,
तोमार देहेर
लालने निःशेष करे ए जीवन
आमार रक्तेर
प्रवाहे अक्षय करे रेखे जाबो अमर्त्य स्वाक्षर ।[2]

देशभक्ति का भावुक उद्गार मात्र न होकर यह शपथ है, अपने सारे अस्तित्व को कर्म-प्रवाह में मिला कर देश के संवर्धन के लिए अपने जीवन को

---

१. विष्णुकान्त शास्त्री द्वारा सम्पादित संकल्प, संत्रास, संकल्प पृ० ८ ।

२. बांगला एकाडेमी, ढाका द्वारा प्रकाशित 'हे स्वदेश', पृ० ३ ।

निःशेष करने की, अपने रक्त के प्रवाह में अपने अमर्त्य हस्ताक्षर को अक्षय कर जाने की।

मातृभूमि की ही तरह प्यारी मातृभाषा बंगला भी पददलित होकर गुहार लगा रही है—साम्प्रदायिक राजनीति की छलना से आत्म विस्मृत बंगाली उसे क्या भूल गये हैं ? मुहम्मद महफ़ूजुल्ला ने उसे भरोसा देते हुए मानों सारी बंगाली जनता के प्रतिनिधि के रूप में ही 'बांगला भाषार प्रति' कविता लिखी थी :—

तोमार प्रतिटि शब्द-छन्द-ध्वनि-लय
आमार चैतन्ये आछे, आछे मनोमय,
अस्तित्वेर उच्चारित प्रति प्रहरे
आमार आकांक्षा दीप्त तोमार अक्षरे।
प्रेमेर संलाप आर मृत्युञ्जयी गाने
संघबद्ध आन्दोलने, मिछिले, श्लोगाने,
तोमार प्रतिटि शब्द देखि राजपथे
अनिर्वाण हये ज्वले उज्ज्वल शपथे।[1]

यदि एक ओर इस कविता में बंगला भाषा को बंगाली जीवन में ओतप्रोत बताकर दोनों के अविच्छेद्य सम्बन्ध की घोषणा की गयी है तो दूसरी ओर केवल कोमल प्रेमालाप में ही नहीं क्रान्ति के मृत्युञ्जयी गान में, आन्दोलन, जुलूस, नारे, मैदान में गूँजनेवाली बंगला भाषा को अपनी जनता द्वारा स्वाभिमानपूर्ण जीवनधारण के लिए छेड़े गये संग्राम की प्रेरणा के रूप में भी चित्रित किया गया है। इसका युयुत्सु स्वर कितना भिन्न है ! बंगला भाषा की महिमा में गाये गये अतुल प्रसाद सेन के पुराने गीत के मृदुल स्वर से जिसकी आरंभिक पंक्तियाँ हैं—'आ मरि बांगला' भाषा। ओ मा, तोमार कोले, तोमार वोले कतइ शान्ति भालोवासा'। परिवर्त्तित स्थिति में एक ही भावना की वर्णाच्छटाएँ कितनी भिन्न हो जाती हैं ?

बंगला भाषा के सम्मान की रक्षा के लिए रक्तदान की प्रतिज्ञा नये कवियों ने ही नहीं, बाँगला देश के सबसे प्रौढ़ कवि जसीमुद्दीन ने भी की थी। 'आमार एमन मधुर बांगला भाषा' की सुन्दरता और प्रतिष्ठा को अक्षुण्ण रखने के लिए उसके वस्त्र को अपने हृदय के ताजे खून से रंगने एवं चार

१. संकल्प संत्रास संकल्प पृ० १०।

करोड़ भाइयों के बलि हो जाने की तत्परता की घोषणा करते हुए उन्होंने लिखा था :—

> वसने एर रंग मेखेछि, ताजा बूकेर खुने,
> बुलेटेरि धूम्रजाले, ओड़ना बिहार बुने
> ए भाषाटि मान राखिते
> हय यदि वा जीवन दिते
> चार कोटि भाइ रक्त दिये
> पूराबे एर मनेर आशा ।[1]

यह संग्राम केवल भाषा का ही नहीं था, पूरे बांगला देश की मर्यादा और समृद्धि का था । इसीलिए 'एकुशेर फब्रुआरी' (इक्कीस फरवरी) बांगला देश का 'शहीद दिवस' बन गया । शहीदों की 'स्मृति मीनार' को तोड़कर पाकिस्तानी शासक समझते थे कि वे इस भावना को कुचल दे सकेंगे । अला-उद्दीन अल आजाद ने देशवासियों की तरफ से शहीदों की आत्माओं को आश्वस्त करते हुए लिखा कि जिस स्मृति मीनार की नींव चार करोड़ भाइयों के जगे हुए परिवार के मन में पड़ी हो, धान बोनेवाले किसान, गुन खींचने वाले मल्लाह, हथियार उठाने वाले सिपाही, भाथी चलाने वाले लुहार जिसे बनाने वाले हों, उसे कोई राजा कभी तोड़ नहीं सकता । उसके हीरों जड़े मुकुट, नीले परवाने, खुली तलवारें उसी सरल नायक जनगण के चरणों तले धूल में मिलने के लिए बाध्य हैं । 'एकुशे फेब्रुआरी' शीर्षक इस दृढ़ आत्म-विश्वास भरी कविता की आरंभिक पंक्तियाँ हैं :—

> स्मृति मिनार भेंगेछे तोमार ? भयकि वन्धु आमरा एखनो चार
> कोटि परिवार
> खाड़ा रयेछि तो । जे भित करवनो कोनो राजन्य पारेनि भांगते
> हीरार मुकुट, नील परोआना, खोला तलो आर
> खुरेर झटिका, धुलाय चूर्ण जे पद प्रान्ते,
> जारा बुनिधान
> गुन टानि, आर तुलि हातियार, हायर चालाइ
> सरल नायक आमरा जनता सेइ अनन्य ।[2]

१. हे स्वदेश, पृ० २५ ।
२. संकल्प संत्रास संकल्प, पृ० १६

तो यह युद्ध पश्चिमी पाकिस्तानी उच्च वर्गीय शासक मंडली के साथ बांगला देश की साधारण सरल जनता का था। कवि की भविष्यवाणी सत्य ही हुई, वस्तुतः उस मदोन्मत्त शक्ति को १६७१ ई० में साधारण जनता के चरणों में झुक जाना पड़ा। किन्तु वह समय अभी दूर था—अभी तो चारों ओर 'पूर्व बंगाल जागो और क्रान्ति की आग धधकाओ' का नारा गूँजना बाकी था—अभी तो मुक्ति कई वर्ष दूर थी।

किन्तु उसे क्षण-क्षण पास ला रही थी इन्हीं शहीदों की अमर क़ुर्बानी और बंगालियों के मन में सदा जागती रहने वाली उनकी अमिट याद। अनीसुज्जमान ने कृतज्ञ जाति के मन की ही बात कही है कि जिन यौवन दृप्त, कर्म चंचल तरुणों ने जीवन को प्यार करने के कारण ही मृत्यु की स्तब्धता का आलिंगन किया था, जिन्होंने एक प्राण के बदले अगणित प्राणों की मुक्ति चाही थी, वे हम लोगों के साथ-ही-साथ रहते हैं—और फाल्गुन में (२१ फरवरी) तो वे विशेष रूप से छा जाते हैं सब पर, सब कुछ पर—

> 'प्रति फाल्गुने तारा आसे। तारा जागे, तारा
> जागाय। तारा भाषा देय, तारा भाषा चाय।[1]

वे केवल जागते ही नहीं, जगाते भी हैं, बलिदान की भाषा—मुक्ति की भाषा सिखाते ही नहीं, सुनना भी चाहते हैं। इतिहास साक्षी है कि कृतज्ञ जाति ने उन्हें निराश नहीं किया।

१६६२ के बाद मार्शल लॉ के खिलाफ पूर्व बंगाल में आन्दोलन तीव्रतर हो उठा। जनता की चेतना को दबाने के लिए फौजी तानाशाही ने जहाँ एक ओर कठोर दमन की नीति अपनायी, वहीं उसे बरगलाने के लिए हिन्दू-मुस्लिम-विद्वेष की आग भड़कानी चाही। जनवरी, १६६४ में पूर्व पाकिस्तान में सरकार की घृणित योजना के अनुसार मुस्लिम दंगे हुए किन्तु पूर्व बंग की जाग्रत जनता न दबी, न बहकी। आन्दोलन—दमन-आन्दोलन जीवन का क्रम बन गया। अपनी भीतरी समस्याओं से जनता का ध्यान हटाने के लिये अयूब खाँ ने सितम्बर, १६६५ में काश्मीर के प्रश्न पर भारत से युद्ध छेड़ दिया। इस युद्ध के समय पूर्वी बंगाल की जनता को अपनी अरक्षित स्थिति का तीखा अहसास हुआ। युद्ध के बाद शेख मुजीब ने अपने विख्यात छह सूत्रों की घोषणा की जिनमें यह माँग की गयी थी कि पाकिस्तान की केन्द्रीय सरकार के पास केवल विदेश नीति एवं

१. मिहिर आचार्य द्वारा सम्पादित 'पूर्व बांगलार कविता' पृ० ६८।

प्रतिरक्षा के ही विभाग रहें और सब दृष्टियों से पाकिस्तान की दोनों इकाइयों—पश्चिमी पाकिस्तान एवं पूर्वी पाकिस्तान को पूर्ण स्वायत्तता प्राप्त हो। भला इस माँग को तानाशाह अयूब खाँ साहब कैसे स्वीकार कर सकते थे? वे बंगालियों को मच्छर समझते थे, उनकी इस ढिठाई का मजा चखाने के लिए उन्हें मसल देने के लिए उन्होंने और सख्ती बरतनी शुरू की। किन्तु बंगाली मच्छर नहीं, गरुड़ साबित हुए—पाकिस्तानी नागपाश से जकड़े बांगला देश को मुक्त करके ही रहे। न उन्हें अयूब की धमकी विचलित कर सकी, न याहिया खाँ की प्रवंचना ही।

बांगला देश की विस्फोटक स्थिति इस समय की कविता में जीवन्त रूप में प्रतिफलित हुई है। जनता की उत्तेजना, पीड़ा, यंत्रणा, हताशा, युयुत्सा, उद्दीपना, मुक्ति कामना को वाणी देते समय कवि मानो माध्यम मात्र रह गये। ये कविताएँ दस-बीस कवियों ने नहीं सारी जाति ने मिल कर लिखी हैं; केवल शब्दों के द्वारा नहीं, संघबद्ध आचरण के द्वारा, तेजस्वी बलिदानों के द्वारा, इसीलिए ये इतनी प्राणवन्त हैं। इनमें कहीं अदम्य साहस है, कहीं लेलिहान अग्निशिखा की तरह ज्वलन्त क्रोध, कहीं अश्रुसिक्त करुणा, कहीं घृणा के विष से दग्ध प्रखर व्यंग्य, किन्तु सर्वत्र ध्वनित हुआ है, मुक्ति का अपराजेय कठोर संकल्प।

इस समय की मनःस्थिति को मूर्त्त करते हुए अल महमूद ने लिखा है :—

असह्य समय काटे, पाये-पाये उड़े जाय धूलो
क्लान्त पाखिर मतो क्लिष्ट हय आमादेर मनः
जीविकार नीलछाया माखा दुइ चोखेर कोटर
हय भस्माधार, आर
निर्जन पिपासार परिणाम पाक खेये ओठे
दुपुरेर उपशिरा छिन्न करे अतिष्ठ बांगलार।[1]

जब पैरों से केवल धूल उड़ रही हो, थके पक्षियों की तरह मन क्लेशयुक्त हो गया हो, जीविका की दुश्चिन्ता की नीली छाया से ग्रस्त दोनों आँखों के कोटर भस्माधार के सदृश लग रहे हों, दुपहरिया की निर्जन पिपासा के परिणाम की तरह अस्थिर बांगला देश की शिराएँ उपशिराएँ चकराकर छिन्न हो रही हों—तब समय सचमुच असह्य हो उठता है—किन्तु तब क्या कवि

१. संकल्प, संत्रास, संकल्प पृ० ३०।

हार मान कर, टूट कर घुटने टेक देता है ! नहीं-नहीं, कवि की प्रतिक्रिया इससे बिलकुल उलटी है :—

> आमि ओ अन्तरंग हये जाइ हठात् तखन
> जनतार समुद्रेर साथे
> बाघेर हातेर मत सनख शपथ
> सोहागेर गाढ़ इच्छा निये
> नेमे आसे मनेर ओपर ।

'मैं भी अचानक मिल जाता हूँ, तब जनता के समुद्र के साथ बाघ के पंजे की तरह नखीली शपथ, सौभाग्य की गाढ़ी इच्छा ले उतर आती है मन के ऊपर ।' और यह प्रतिक्रिया केवल एक कवि की नहीं बांगला देश की सारी तरुणायी की थी ।

पूर्वी बंगाल की धरती पर बहने वाला शहीदों का खून किस प्रकार दस गुने नये खून को शहादत के लिए अपनी ओर खींचता है, इसका बड़ा मार्मिक चित्रण करते हुए हुमायूँ आजाद ने अपनी 'ब्लड बैंक' शीर्षक कविता में कहा है :—

> बांगलार माटीर मतो ब्लड बैंक आर नेइ
> एक बिन्दु लाल रक्त
> दश बिन्दु हये जाय सेइ बेंके राखार साथे इ
> ताइ आर जायना केउ ब्लड बेंके हासपाताले
> बांगलार सब रक्त तीव्र भावे माटी अभिमुखी ।[1]

अद्‌भुत ब्लडबैंक बन गयी है बंगाल की धरती, जहाँ शहीदों का एक बूंद खून, दस बूँद बन जाता है, भविष्य की आशा इसी रक्त पर ही तो टिकी है, इसीलिए 'बंगाल का सब खून बह रहा है तेजी से धरती की ओर ।'

यह नहीं कि केवल नया खून ही जोश से भर उठा था । इस अपमानित, कलंकित जीवन को बदल देने की कठिन प्रतिज्ञा पूरी जनता की थी । दुलार से भरी छाती को कठोर बनाकर अपनी आशंकाओं से जूझते हुए बांगला देश की प्रतीक्षा रत माताएँ प्रभु से जो दुआ माँगती थीं, उसे बेगम सूफिया कमाल के शब्दों में सुनिए :—

---

१. संकल्प, संत्रास, संकल्प पृ० २० ।

…तबु मायेर मन

दिन रात्रिर सीमाना छाड़ाये पथ चेये थाके अनुक्षण।

यदि ना—इ फिरे। नाहि वा फिरुक, तबु येन तारा माने ना हार

जेइ हात तुले एइ दोग्रा माँगे, सेइ हाते मोछे अश्रुधार।

दराज गलाय मा बले जे डाका, कंठभरा जे सुरेर गान

गाइबे ना आर। तार चेये भालो हारानो प्राण।[1]

रात-दिन की सीमा को भूलकर आन्दोलन रत पुत्रों की बाट जोहती माँ के मन में शंका कोंधती है कि यदि वे न फिरें—अपने दुर्बल मन को सबल बनाने का प्रयास करते हुए हाथ उठाकर वह यही दुआ माँगती हैं कि न फिरें तो न फिरें, किन्तु वे हार न मानें—और फिर उन्हीं हाथों से आँसू पोंछने लगती हैं। यह बात उसके मन में भी घर कर गयी है कि 'खुले गले से माँ पुकारना, मुक्त कंठ से गाना अगर असंभव हो तो अच्छा है जीने से मर जाना।'

यहाँ इतना और जोड़ दूँ कि यह दूसरों को उपदेश देने के लिए लिखी गयी खोखली शब्दावली नहीं है। मुक्ति-युद्ध के समय लड़ाई के मैदान के पास ही मुक्तिवाहिनी के अस्पताल में घायल जवानों की सेवा में रत बेगम सूफिया कमाल की दोनों जवान लड़कियों को मैं खुद देख आया हूँ।

पाकिस्तानी राज के प्रति कैसी विषैली घृणा बंगाली जनता के मन में भर उठी थी, इसकी कुछ झलकियाँ इस समय लिखी गयी व्यंग्य वक्र कविताओं में मिलती हैं। शमसुर रहमान की 'राजकाहिनी' नामक कविता में बताया गया है कि प्रवल प्रतापी राजा के राज में सभी कुछ तो है, सारे देश में उसकी सेना है, घाट-बाट में भेड़ों का झुण्ड है, किसान-मल्लाह के गाय-बैल, लोटा-थाली, गमछा-हंडी भी हैं, राजा का सतखंडा महल है, हाथी-घोड़ा भी है किन्तु नहीं है तो केवल जले मुँह में डालने के लिए दो मुट्ठी अन्न ही नहीं है। जगह-जगह संतरी खड़े कर राजा ने डुगडुगी पिटवा दी है कि :—

'शोन सबाइ हुकुम नामा,

धरते हबे राजार धामा

बाँ दिके भाइ चलते माना

साजते हबे बोबा-काना

१. संकल्प, संत्रास, संकल्प पृ० ५६।

मस्त राजा हेले दुले
जखन तखन जड़ान शूले
मुखटि खोलार जन्य ।
धन्य राजा धन्य ॥[1]

अर्थात् तुम सब राजा का हुक्मनामा सुनो सब को राजा का खुशामदी ताबेदार बनना पड़ेगा, बाईं ओर चलना (वामपंथी होना) मना है, सबको गूँगे-अन्धे बनकर रहना होगा क्योंकि मुँह खोलने के अपराध में महाराज ने कइयों को जब तब शूली पर चढ़ा दिया है । इसी तरह अबुल हुसेन की कविता 'मानपत्र' में तथा सुकुमार बहुआ की 'चिंचिग फाँक' में पाकिस्तानी शासन के पाखंड और अत्याचार पर गहरा व्यंग्य किया गया है ।

इसी क्रोध, घृणा और मुक्ति के संकल्प के आलोड़न से उभरा सिकन्दर अबूजफर का युद्ध गीत 'संग्राम चलबेइ' जो आग की लपट की तरह पूर्व बंगाल के कोने-कोने में पहुँच गया । बाद में मुक्ति-योद्धाओं के अनेकानेक शिविरों में, सभाओं में जलसों में भी यह गूँजता रहा । दुर्धर्ष आत्म विश्वास और बलिदान से भरी इसकी कुछ पंक्तियां हैं :—

दियेछि तो शान्ति, आरो देबो स्वस्ति,
दियेछि तो संभ्रम, आरो देबो अस्थि
प्रयोजन हले देबो एक नदी रक्त
होक ना पथेर बाधा प्रस्तर शक्त
अविराम यात्रार चिर संघर्ष
एक दिन से पाहाड़ टलबेइ ।
चलबेइ, चलबेइ ।
आमादेर संग्राम चलबेइ ।
जनतार संग्राम चलबेइ ॥[2]

शान्ति और संभ्रम तो पूर्व बंगाल के जनगण दे ही चुके, अब वे अपनी स्वस्ति और अस्थि भी देंगे, प्रयोजन हुआ तो देंगे नदी भर रक्त । हो लें पथ

१. पूर्व बांगलार श्रेष्ठ कविता पृ० ६० ।
२. संकल्प, संत्रास, संकल्प पृ० १२ ।

बाधा के पत्थर और सख्त। अविराम यात्रा के चिर संघर्ष से पराधीनता के उस पहाड़ को ढकेल फेंकने का जनता का संग्राम सफल होकर रहेगा। कवि की यह वाणी जनता के अटूट मनोबल और सतत संघर्ष को शक्ति देती रही।

२५ मार्च, १९७१ को यहिया खां ने पूर्व बंगाल को उसका न्यायोचित अधिकार देने के स्थान पर धोखा, आगजनी और कत्लेआम का दोजखी तोहफा दिया। लाखों निरपराध, निहत्थी जनता का खून कर, स्त्रियों और बच्चों पर अकथनीय अत्याचार कर, बर्बरता में चंगेज खां और तैमूर लंग को भी लजा कर पाकिस्तानी फौजी शासकों ने सोचा था कि वे स्वाधीनता की भड़की आग को बुझा देंगे किन्तु वह आग उन्हें ही लील गयी। मुक्तिवाहिनी और बाद में भारतीय मित्रवाहिनी के सम्मिलित युद्ध-प्रयास से नौ महीनों के भीतर ही १६ दिसम्बर, १९७१ को बांगला देश स्वतंत्र हो गया।

इस पूरे संग्राम में जनता के साहस और धैर्य पर, मुक्तियोद्धाओं के बलि-दान और शौर्य पर गहराते अँधेरे में विद्रोही किरणों की तरह सान चढ़ाती रही बांगला देश की कविताएँ। उनमें अत्याचारित, पीड़ित जनता का भया-वह संत्रास भी मुखरित हुआ और स्वाधीनता का अदम्य विश्वास भी। वस्तुतः इस काल में लिखित बांगला देश की कविताएँ वे ऐतिहासिक दस्तावेज हैं जिनमें चरम यंत्रणा के क्षणों की करुणतम अभिव्यक्ति भी है और अस्तित्व की रक्षा के लिए चल रहे परम संग्राम में अंश ग्रहण करने की उग्रतम संसक्ति भी। विशेष रूप से लक्षितव्य यह है कि उत्पीड़न की व्यथा से कराहती कवि-ताओं में भी विघटन और पराजय की भावना नहीं झलकी है। अत्याचारों को झेल कर अन्तिम युद्ध में अत्याचारियों को परास्त करने और स्वतंत्र होने का अडिग निष्ठा ही इन कविताओं में वार-बार ध्वनित हुई है।

शमसुर रहमान की उद्वास्तु, प्रतिटि अक्षरे, ना आमि जावो ना जैसी कविताओं में यदि सामान्य जनता की आतंकित, शंकित, संत्रस्त मनःस्थिति उजागर हुई है तो जसीमुद्दीन की 'गीतारा कोथाय गेलो, गीतारा कोथाय जावे' जैसी कविताओं में विशेष रूप से हिन्दू हत्या की घृणित योजना की पाशविकता का करुण प्रतिवाद व्यक्त हुआ है। जिस भयानक संत्रास में अपने घरों में ही निर्वासित के सदृश जीने के लिए पूर्व बंगाल की सारी जनता अभिशप्त थी उसकी एक झलक भयावह शवागार बने ढाका के दमघोंट वाता-वरण को अंकित करने वाली 'उद्घास्तु' कविता की इन पंक्तियों में देखी जा सकती है :—

…… …… …… घर छेड़े पथे

पा बाड़ाते भयपाइ। जे दिकेइ जाइ

डाइने अथवा वायें, विषण्ण स्वदेशे विदेशीरा

घोरे राजवेशे। रेंस्तोराय, पार्क, अलिते गलि ते

शहरतली ते शुधु भिन देशी भाषा जाच्छे शोना।

वस्तुत विषण्ण ए शहरे हत्यामय ए शहरे

स्वदेशीर चेये विदेशीर संख्या बेशी। नागरिक—

अधिकारहीन पथ हटि, घाड़ निचु, घाड़े माथा

आछे कि वा नेइ बोझा दाय। एइ माथार ओपर

आततायी शासक सबार

आछे पाका पोक्त अधिकार, केवल आमार इ नेइ।[1]

जिस राज्य में अपने घर से निकल कर रास्ते पर पाँव बढ़ाने में भय लगता हो, जिसमें धड़ पर सिर है भी कि नहीं समझना मुश्किल हो, जिसमें सिर पर आततायी शासकों का पूरा पक्का अधिकार हो, सिर वाले का नहीं, उसे स्वराज्य···धर्म पर आश्रित एवं मनोवांछित 'पाकिस्तान' मानना असंभव था···और जो ऐसा अत्याचार ढा रहे हों बंगालियों की मातृभूमि और मातृ-भाषा का गला घोंट रहे हों उन्हें देशवासी···पाकिस्तानी भाई कहना जले पर नमक छिड़कना था···वे हत्यारे विदेशी हैं···पूरी बंगाली जनता के शत्रु। वे भले ही पूरे बांगला देश को बन्दी शिविर बना दें, भले ही मुँह की भाषा और बांगला देश की स्वाधीनता की हार्दिक भावना सदा के लिए कुचल देना चाहते हों किन्तु··

"अथच जाने ना ओरा केउ

गाछेर पाताय, फुटपाते

पाखिर पाल के किंवा नारीर दू चोखे

पथेर धुलाय

बस्तिर दुरन्त छेलेटार

हातेर मुठोय

१. संकल्प, संत्रास, संकल्प पृ० ६८–७०।

सर्वदाइ देखि ज्वले स्वाधीनता नामक शब्दटि ।[1]

(शमसुर रहमान कृत बन्दी शिविर थेके का शेषांश)

किन्तु वे नहीं जानते कि स्वाधीनता नामक शब्द आजकल पेड़ों के पत्तों पर फुटपाथों पर, चिड़ियों के पंखों पर नारी के नयनों पर, रास्ते की धूल पर बस्ती के उद्दण्ड लड़कों के हाथों की मुट्ठियों पर सर्वत्र दहकता रहता है। उसे कोई भी पशु शक्ति नहीं बुझा सकती।

आँसू और खून से सनी आवाज में पूर्व बंग की जनता कवि की वाणी में बोली 'एक ही स्वर में, अब युद्ध ही है उद्धार।' यह मुक्ति युद्ध सच्चा जन युद्ध था, हर एक पूर्व बंगाली का अपना युद्ध था क्योंकि हसन हफीजुर्रहमान के शब्दों में उसे लगता था :—

एखन युद्ध आमार
आजन्म सेधे फेरा जीवनेर भोर
हानादार बुकेर पेरेक थेके
माटि मार व्यथित बुक खुले नेया।
एखन युद्ध आमार
निरन्तर पलायन थेके चिरकालेर घरे फेरा।[2]

अब यह युद्ध···हमलावरों की ठोंकी हुई कीलों से धरती माता की दुखती छाती को मुक्त करने का युद्ध, निरन्तर पलायन से मुँह मोड़ कर अपने चिरकाल के घर लौटने का युद्ध···मेरा है, हममें से प्रत्येक का है।

न केवल जनता ही बल्कि बंगाल की प्रकृति भी विदेशी पाकिस्तानी शासन को अमान्य करने के लिए किस प्रकार तुल गयी थी इसे चित्रित किया है शहीद कादरी ने अपनी "ब्लैक आउटेर पूर्णिमाय" कविता में :—

आवाल्य तोमार जे निसर्ग छिलो निदारुण निर्विकार
सुरक्षित दुर्गेर मतोन आमादेर प्रतिरोधे, से हल सहाय,
ब्लैक आउट अमान्य करे तुमि दिगन्ते ज्वेले दिले
विद्रोही पूर्णिमा। आमि से पूर्णिमार आलोय देखेछि

१. संकल्प, संत्रास, संकल्प पृ० ८१

स्वाधीनतार विमान बहर आर ए देशेर सकल प्रान्तेर जुड़े
तरुण सैनिकेर मुक्तिपागल पदचारणा एवं एक शोकार्त्त
विधुर रक्तावत किन्तु उज्ज्वल अपरूप उद्धत पताका
जार प्रच्छाये आमरा फिरछि आवार निजस्व उठोन पार हये
निजेदेर घरे ।[1]

पाकिस्तानी शासकों की ब्लैक आउट की आज्ञा का उल्लंघन कर बांगला देश की प्रकृति ने जिस विद्रोही पूर्णिमा को दिग्दिगन्त तक छिटका दिया है, उसी के प्रकाश में मुक्ति पागल तरुण सैनिक संचलन कर रहे हैं, स्वाधीनता के विमान मँडरा रहे हैं, शोकार्त्त, रक्तात्त किन्तु फिर भी एक उज्ज्वल चन्द्राकार ध्वज लहरा रहा है जिसकी छाया में ही अपने घर लौट चलना संभव होगा ।

वांगला देश की आशा की प्रतीक वन गयीं मुक्तिवाहिनी का अभिनन्दन करते हुए हुमायूँ आजाद ने लिखा :—

तोमार राइफेल थेके बेरिये आसछे जीवन
तुमि दाओ थरोथरो दीप्त प्राण बेयनेटे निहित लाश के
तोमार आगमने प्राण पाय मरा वृक्ष पोड़ा प्रजाप्रीति
तोमार पायेर शब्दे वांगला देशे धनाय फाल्गुन आर
छुआन्न हाजार वर्ग माइलेर एड विध्वस्त बागाने
एक सुरे गान गेये ओठे सात कोटि विपन्न कोकिल ।[2]

देश की स्वतंत्रता के लिए लड़ने वाली राइफलों से सचमुच जीवन ही निकलता है, संगीन बिंधी लाशें, मरे वृक्ष, जली तितलियाँ मुक्तिवाहिनी की पदचाप सुनते ही जी उठती हैं, उजड़े बांगला देश में फागुन छा जाता है और सात करोड़ घायल कोकिल एक स्वर में गा उठते हैं । युद्धरत देश की कवि-वाणी सीधे स्वाधीनता से ही पूछ बैठती है :—

तोमाके पावार जन्ये, स्वाधीनता,
तोमाके पावार जन्ये

१. संकल्प, संत्रास, संकल्प पृ० १०४ ।
२. ,, ,, ,, १३८ ।

आर कत बार भासते हबे रक्त गंगाय ?

आर कत बार देखते हबे खांडव दाहन ?

देश की साधारण जनता द्वारा रक्त गंगा में तैरने और खांडव दाह में झुलसने का करुण किन्तु तेजोमय विवरण देने के पश्चात् शमसुर रहमान ने इस कविता के अन्त में दृढ़ विश्वास व्यक्त किया है कि पृथ्वी के एक कोने से दूसरे कोने तक ज्वलन्त घोषणा की ध्वनि-प्रतिध्वनि गुँजाते, नया झंडा उड़ाते, दिशा दिशा में दमामा बजाते इस बांगला देश में तुम्हें आना ही पड़ेगा हे स्वाधीनता।

पृथिवीर एक प्रान्त थेके अन्य प्रान्ते ज्वलन्त
घोषणार ध्वनि, प्रतिध्वनि तुले,
नूतन निशान उड़िये, दामामा बाजिये दिग्विदिक्
एइ बांगलाय
तोमा के आसतेइ हबे, हे स्वाधीनता।[1]

और स्वाधीनता आकर रही। सांस्कृतिक प्रेरणा ने जिस एशियाई क्रान्ति को जन्म दिया था वह सफल हुई।

स्वाधीनता के बाद बांगला देश में लिखित कविताओं का बहुत बड़ा हिस्सा स्वाधीनता के अभिनन्दन का, उल्लास-आह्लाद की अभिव्यंजना का है, शहीदों की पुण्य स्मृति का है। किन्तु एक छोटा हिस्सा ऐसा भी है जो मुक्ति संग्राम को नया आयाम देना चाहता है, जिसकी दृष्टि में देश के पुन-र्निर्माण के लिए विचारों और भावों के स्तर पर ही नहीं व्यवहार के स्तर पर भी बदले हुए स्वरूप में सही संग्राम जारी रहना चाहिए। यह संग्राम विदेशी शत्रुओं से नहीं होगा अपने ही देश के अज्ञान, स्वार्थ और दारिद्र्य से होगा···ताकि स्वाधीनता सुरक्षित रहे ताकि उसका सुफल जनता के हर तब के तक, हर एक देशवासी तक पहुँच सके। इस संग्रामी चेतना के वरण का आह्वान करते हुए मजहरुल इस्लाम ने लिखा :—

संग्राम यदि अग्नि
तबे हे अग्नि, तुमि प्रोज्ज्वल थेको
आवार पथे-पथे जमबे जंजालेर स्तूप

---

१. संकल्प, संत्रास, संकल्प पृ० ८८।

स्वार्थपरतार, हीनमन्यतार उदग्र लालसार
ताके पुड़िये गुड़िये भस्म करेदिते हबे
दिके दिके ज्वालते हबे लाल मशाल।[1]

बांगला देश के राह घाट पर देशवासियों के मनों में स्वार्थपरता, धर्मान्धता, शोषण, पीड़न आदि हीन मनोभावों के कूड़े के ढेर लगे तो उन्हें धार खार कर देने के लिए फिर से दिशा-दिशा में लाल मशाल जलानी होगी···अतः हे संग्राम की अग्नि तुम प्रज्ज्वलित रहना। राजनीतिक मुक्ति तो अधूरी मुक्ति है सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक मुक्ति की भूमिका मात्र है। अतः संग्रामी अभियात्रा जारी रहे···पूर्ण मुक्ति की प्राप्ति तक।

मुक्ति युद्ध की कठोर अग्नि परीक्षा में तप कर कुन्दन बन जाने वाली बांगला देश की संग्रामी कविता कलावादी आलोचकों को कैसी लगेगी, यह तो वे ही जानें। हो सकता है कि उन्हें ये सपाट और वक्तव्य सरीखी लगे, नितान्त सामयिक अतः साधारण जँचे किन्तु मेरी मान्यता है कि इनमें वह गहरी और सच्ची संवेदना है जो कलारहित कविता को भी महत्ता दे जाती है। ऐसे अवसर किसी भी जाति के जीवन में बहुत कम आते हैं जब पूरी जाति की मनः स्थिति के साथ कवि-मानस का तादात्म्य हो जाये···और जब ऐसे अवसर आते हैं तब सचमुच बड़े साहित्य की रचना होती है क्योंकि उसका सृजन सारी जाति मिलकर करती है। स्वभावतः उसमें न केवल कथ्य की उदात्तता आ जाती है बल्कि शिल्प की समृद्ध विविधता भी परिलक्षित होती है। बांगला देश की संग्रामी कविता के लिए भी यह सत्य है। अपढ़ किसान से लेकर विदग्धतम कवि तक की सम्मिलित सृष्टि है यह संग्रामी कविता···इसीलिए इसमें भावगत दृष्टि से एकोन्मुखता होते हुए भी शिल्पगत दृष्टि से लोक गीतों की सहजता भी है। रवीन्द्र प्रभावित चित्रधर्मिता भी और आधुनिक बुद्धिदीप्त जटिलता भी। फिर भी यह सच है कि इसमें कारीगरी प्रधान नहीं है। कलावादी इससे खिन्न हों, तो हों, मैं तो मानता हूँ कि मानव मुक्ति के व्यापक अभियान के एक महत्त्वपूर्ण अंश को सशक्त अभिव्यंजना देकर यह कविता वस्तुतः महत् हो गई है। बांगला देश के तरुण कवि मुहम्मद नूरुलमज्जमान के आत्मगौरवस्फीत इस दावे में पर्याप्त सत्यांश है कि नहीं देख पाता कहीं और इससे अधिक प्राणमय महत् कविता। इसी महान्

[1] संकल्प, संत्रास, संकल्प पृ० १५४

काव्य के कानन में शब्दभोगी, पद्य व्यवसायी भीरु बंगज पुंगव नवीन विस्मय खोज रहे हैं :—

> ...प्राणमय महत् कविता
> आर कोथा ओ देखि ना एर चेये ।
> शब्दभुक् पद्यव्यवसायी भीरु वंगज पुंगव सब
> एइ महाकाव्येर कानने खोंजे
> नतुन विस्मय ।... ... ...[1]

---

१. संकल्प, संत्रास, संकल्प पृ० १३६।

३.

बांगला देश की क्रान्ति और भारत की एकात्मता

भारत की एकात्मता मूलतः भारतीय जनता की सद्भावना और सद्बुद्धि पर निर्भर है। भारत की विविधतामयी सांस्कृतिक एकता की दीर्घकालीन परंपरा उसकी आधार शिला है। अतीत में राजनीतिक दृष्टि से छोटे-बड़े कई स्वतंत्र राज्यों में विभक्त रहने पर भी धर्म, साधना, दर्शन, साहित्य, संगीत, नृत्य, स्थापत्य, ज्ञान-विज्ञान आदि की दृष्टि से क्षेत्रीय विशेषताओं के बावजूद ओसेतु हिमाचल समग्र भारत की जनता आन्तरिक आत्मीयता का अनुभव करती रही है। यूरोपीय राजनीतिक राष्ट्रीयता की तुलना में भारतीय सांस्कृतिक राष्ट्रीयता अधिक मूलगामी, अधिक सहिष्णु, अधिक समन्वयशील और इसीलिए अधिक स्थायी है। आज उसे एक ही केन्द्रीय राजनीतिक शासन और अर्थव्यवस्था भी प्राप्त है। इसके फलस्वरूप निश्चय ही उसकी शक्ति और एकता की भावना बढ़ी है। इसी के साथ-साथ यह भी सच है कि इस विशाल देश में कई भाषाएँ, कई धर्म, नृतात्त्रिक दृष्टि से कई जातियाँ, आर्थिक दृष्टि से विविध क्षेत्रों के विकास में विषमता, दुर्भाग्यपूर्ण ऐतिहासिक उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त कुछ प्रदेशों एवं सम्प्रदायों में विरोधमूलक आशंकाएँ भी विद्यमान हैं। अतः भारत की एकात्मता को दृढ़ करने वाले तत्त्वों को विकसित करने की एवं दुर्बल करने वाली प्रवृत्तियों के प्रति सावधान रहकर उन्हें दूर करने की सतत जागरूकता हमारा राष्ट्रीय कर्त्तव्य है।

पृथ्वी आज इतनी छोटी हो गई है कि उसके किसी भी कोने में होनेवाली घटना दूरदराज के देशों को भी प्रभावित करती है। फिर सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक दृष्टियों से ही नहीं सैनिक दृष्टि से भी जिस सीमावर्ती देश की क्रान्ति से अपना देश सम्बद्ध हो, उसका गहरा प्रभाव अपने देश के सभी पहलुओं पर—एक हद तक एकात्मता पर भी पड़े, यह स्वाभाविक ही है। इसलिये बांगला देश की कान्ति से भारत की एकात्मता पर पड़ने वाले संभावित शुभ-अशुभ प्रभावों पर वस्तुगत दृष्टि से विचार करना और उसके निष्कर्षों का राष्ट्रीयहित कीं दृष्टि से प्रयोग करना अपनी जागरूकता का

प्रमाण देना ही है। पहले संभावित अशुभ प्रभावों की ही विवेचना करना संगत प्रतीत होता है क्योंकि हानि से बचने की सतर्कता बरतना बुद्धिमता का पहला तकाजा है।

बांगला देश की स्वतंत्रता के आन्दोलन का समर्थन करने पर भारत के प्रदेशों में भी विच्छेदवादी प्रवृत्ति पनप सकती है और वे भी कालान्तर में स्वतन्त्रता की माँग कर सकते हैं, यह प्रचार पाकिस्तान की ओर से बराबर किया जाता रहा है। कुछ भारतीय विचारक भी इस आशंका से ग्रस्त रहे हैं। अब बांगला देश को स्वतंत्र हुए एक वर्ष से भी अधिक हो चुका है किन्तु ऐसे विच्छेद की काली छाया भारत के किसी भी प्रदेश पर नहीं पड़ी। यह वस्तुस्थिति अपने में इस आशंका को निस्सार सिद्ध कर देती है। इसका थोड़ा विश्लेषण करने पर इसकी निस्सारता के कारण भी स्पष्ट हो जायेंगे।

पाकिस्तान इतिहास की विकासशील प्रक्रिया की स्वाभाविक सृष्टि न होकर राजनीतिक धाँधली और सौदेबाजी की जोड़-तोड़ से बना देश था। इसके निर्माण के इतिहास पर एक दृष्टि डालने से यह बात साफ हो जायेगी। सर्वप्रथम महाकवि इकबाल ने १९३० में यह सुझाव दिया था कि भारतीय संघ के अन्तर्गत ही पंजाब, सिन्ध, पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त तथा बलूचिस्तान को मिला कर भारतीय मुसलमानों के लिए एक पृथक् राज्य बनाया जाना चाहिए। तीसरे गोलमेज सम्मेलन के अवसर पर जनवरी, १९३३ में एक बंगाली मुस्लिम छात्र चौधरी रहमत अली के नेतृत्व में केम्ब्रिज विश्वविद्यालय के कुछ मुस्लिम विद्यार्थियों ने पंजाब, अफगानिस्तान (पश्चिमोत्तर सीमा-प्रान्त) कश्मीर, सिन्ध और बलूचिस्तान को मिलाकर भारतीय संघ से अलग स्वतंत्र पाकिस्तान के निर्माण की माँग की थी। उस समय उक्त सम्मेलन में भाग लेने वाले जिम्मेदार भारतीय मुस्लिम नेताओं ने इसे कुछ विद्यार्थियों की असंगत एवं अव्यावहारिक कल्पनामात्र कहा था।[1] नाजी आन्दोलन से प्रभावित रहमत अली ने ही पहले-पहल भारतीय मुसलमानों को पृथक् राष्ट्र बताया था। स्वयं बंगाली होते हुए भी तब तक उसकी पाकिस्तानी कल्पना में बंगाल का स्थान नहीं था। १९३७ ई० में उसने बंगाल और आसाम को मिलाकर 'बंग-ए-इस्लाम' की तथा हैदराबाद (दकन) को उस्मानिस्तान की संज्ञा देकर दो और पृथक् स्वतंत्र मुस्लिम राज्य बनाने की योजना पेश की थी। कभी हिन्दू-मुस्लिम एकता के राजदूत माने जाने वाले श्री मुहम्मद अली

१. देखिये, श्री डी० एन० बनर्जी कृत ईस्ट पाकिस्तान—ए केस स्टडी इन मुस्लिम पालिटिक्स पृ० २६।

जिन्ना ने १९४० ई० में पाकिस्तान की स्थापना को मुस्लिम लीग के लक्ष्य के रूप में स्वीकार किया। उन्होंने अपने विश्वासभाजनों से निजी बातचीत में उस समय यह स्वीकार किया था कि यह माँग राजनीतिक रणनीति की कुशल चाल मात्र है।[1] यह भी उल्लेखनीय है कि मार्च, १९४० में मुस्लिम लीग के लाहौर अधिवेशन में पाकिस्तान सम्बन्धी जो प्रस्ताव स्वीकृत हुआ था उसमें भारत के पश्चिमोत्तरी एवं पूर्वी क्षेत्रों के मुस्लिम बहुल अंचलों को स्वतंत्र राज्यों के रूप में गठित करने की माँग की गई थी जिनकी 'संघटक इकाइयाँ स्वायत्त एवं प्रभु सत्ता सम्पन्न होंगी।[2] इस प्रस्ताव की उलझी हुई भाषा से ही उस समय के मुस्लिम नेताओं की दिमागी उलझन जाहिर हो जाती है। उन्हें न इस बात का विश्वास था कि अंग्रेज सरकार तथा भारत के राष्ट्रीयतावादी दल 'पाकिस्तान' कबूल कर लेंगे, न इसी बात का भरोसा था कि विविध मुस्लिम बहुल क्षेत्रों के मुसलमान ही मिलकर एक राज्य बनाने के लिए राजी हो जाएँगे। उन्होंने तो मुसलमानों के लिए अधिक राजनीतिक अधिकार प्राप्त करने के उद्देश्य से अंग्रेज सरकार एवं राष्ट्रीयतावादी दलों के सामने पाकिस्तान का हौवा खड़ा किया था। विभिन्न प्रदेशों के भारतीय मुस्लिम नेता अपने-अपने स्वार्थों की रक्षा करते हुए इस माँग का समर्थन करने के लिये तैयार हो जायें इसीलिए उन्होंने 'स्वतंत्र राज्यों' की माँग की थी, एक राज्य की नहीं और उनकी संघटक इकाइयों को भी पूरी भीतरी आजादी देने का प्रलोभन दिया था। जो हो, ब्रिटिश कूटनीति, 'इस्लाम खतरे में है' के नारे द्वारा श्री जिन्ना के धर्मोन्मादी मुस्लिम नेतृत्व तथा हिन्दू-मुस्लिम दंगों के समक्ष राष्ट्रीयतावादी नेता दुर्बल पड़ गये। इतिहास और भूगोल को नकार कर पाकिस्तान बना। श्री जिन्ना के करिश्मे से मुग्ध मुस्लिम जनता ने दो राज्यों की पूर्ववर्ती मांग के स्थान पर सर्व शक्ति सम्पन्न केन्द्रीय सरकार वाले एक ही पाकिस्तान को मान लिया। पाकिस्तान की अदूरदर्शी, सत्ता-लोलुप केन्द्रीय सरकार ने संघटक इकाइयों को स्वायत्तता देने के स्थान पर डंडे के जोर से उनकी स्वाभाविक माँगों को भी कुचलना शुरू किया। इसका फल जो होना था, वही हुआ। सच तो यह है कि आश्चर्य इस बात पर नहीं किया जाना चाहिए कि बांगला देश २४ वर्षों के बाद ही पाकिस्तान से

१. वही पृ० ३३।

२. पूर्व बांगलार संस्कृतिर संकट के पृष्ठ १९२ पर उद्धृत प्रस्ताव का अंश

अलग क्यों हो गया, बल्कि इस बात पर किया जाना चाहिये कि वह २४ वर्षों तक पाकिस्तान के भीतर रहा क्यों कर ?

राजनीतिक दाँव-पेंच रूपी बालू की भीत पर बने मजहबी मुखौटा लगाये पाकिस्तान के साथ सांस्कृतिक, ऐतिहासिक एवं भौगोलिक एकता पर आधारित भारत को एक ही तराजू पर कैसे तौला जा सकता है ? सर्व भारतीय चेतना का विकास सहस्राब्दियों में स्वाभाविक ऐतिहासिक प्रक्रिया से हुआ है, तात्कालिक राजनीति के द्वारा नहीं, अतः वह कहीं अधिक मूलगामी एवं स्थायी है, राजनीतिक सुविधावादी समझौतों की तरह क्षणभंगुर नहीं। सांस्कृतिक, धार्मिक तथा राजनीतिक दृष्टि से भी भारत ने अधिक प्रौढ़ता और सूझ-बूझ का परिचय दिया है। इस बात को स्वीकार कर लिया गया है कि भारतीय राष्ट्र के प्रति वृहत्तर निष्ठा के अन्तर्गत अपने क्षेत्र, धर्म, भाषा और स्थानीय वैशिष्ट्य के प्रति निष्ठा पोषित करना स्वाभाविक-मानवीय प्रवृत्ति है। यह मनोभूमिका भी हमें अपनी उदार परम्परा से मिली है। उदाहरणार्थ-बिना किसी अन्तर्विरोध के भय से बंकिम, रवीन्द्र, द्विजेन्द्रलाल राय, नजरुल इस्लाम आदि ने एक ही साथ बंग जननी और भारत जननी की महिमा का गान किया है। इसी तरह कश्मीर पंजाब, महाराष्ट्र, गुजरात, ब्रज, अवध, बिहार, उड़ीसा, तमिलनाड, आन्ध्र, कर्णाटक, केरल आदि के कवियों ने भी अपने-अपने क्षेत्र तथा भारत के प्रति अपना प्रेम साथ-साथ व्यक्त किया है। लोकतांत्रिक समाज की युगपत् बहुनिष्ठा के सिद्धान्त का व्यावहारिक अनुसरण करते हुए भारतीय नेताओं ने 'एकता' के नाम पर 'एकरूपता' को आरोपित करने का प्रयास कभी नहीं किया क्योंकि हमारा विश्वास है कि विभिन्न भाषाई एवं धार्मिक समूहों की अपनी-अपनी विशेषताएँ भारतीय संस्कृति के समग्र रूप को समृद्ध एवं बहुवर्णी बनाती हैं। श्रीमती महादेवी वर्मा ने ठीक ही कहा है कि भारतीय संस्कृति इन्द्रधनुष के समान है, जिसके विविध रंग मिलकर उसे समग्र रूप देते हैं। भारत में प्रचलित सभी धर्मों के प्रति समान आदर व्यक्त करना तथा समस्त प्रमुख भारतीय भाषाओं को भारत की राष्ट्रीय भाषाएँ घोषित कर अपने-अपने अंचलों में प्रशासन, शिक्षा आदि सभी क्षेत्रों में प्रयुक्त करने के उनके अधिकार को स्वीकार करना इसी परम्परा का अंग है। इसी तरह केन्द्रीय सरकार का विरोध करने वाले राजनीतिक दलों को भी बहुमत प्राप्त करने पर राज्य-सरकारों के सचालन का मुक्त अवसर देना तथा केन्द्रीय एवं राज्य-सरकारों के अधिकारों के निर्णय के लिए संवाद की स्थिति बनाये रखना भारत की दूरदर्शी, लचीली, लोकतांत्रिक राजनीतिक चेतना का सुफल है। कश्मीर के जो विरोधी नेता भारत में कश्मीर के विलय

पर प्रश्नचिह्न लगाया करते थे, वे भी बांगला देश में पाकिस्तान के आचरण और भारत की नीति की विजय को देखकर अब नये सिरे से जनमत गणना की बात नहीं उठा रहे, केवल केन्द्र और राज्य के अधिकारों पर चर्चा कर रहे हैं।

विविध भारतीय प्रदेशों के आर्थिक विकास की विषमता को दूर करने की चेष्टा भी चल रही है, पर यह दुःखद सत्य है कि इस दिशा में हमें अभीष्ट सफलता नहीं मिली है। भारत में जो कभी-कभी उग्र प्रादेशिकता का विष-वमन कुछ सिर फिरे कुंठित राजनीतिज्ञ करते रहते हैं, उसका सीधा सम्बन्ध हमारे मन्द आर्थिक विकास और मध्यवर्गीय शिक्षित बेकारों की बढ़ती हुई संख्या से है। इसीलिए कभी-कभी किसी-किसी प्रदेश में अन्य प्रदेशों के व्यापारियों के प्रति विक्षोभ प्रदर्शन या अपनी भूमि के पुत्रों (संस आफ द स्वायल) को ही प्रादेशिक सेवाओं में लिये जाने के दावे किये जाते हैं। किन्तु ये नेता भी भली-भाँति समझते हैं कि भारत के अन्तर्गत रहकर ही अपने अंचलों का त्वरित विकास करना संभव है, बाहर जाकर नहीं। अतः बांगला देश के उद्भव के कारण भारतीय प्रदेशों में विच्छेदवादी प्रवृत्ति पनप सकती है, यह भय भित्तिहीन है।

कभी-कभी कुछ क्षेत्रों द्वारा यह आशंका भी प्रकट की गयी है कि एक ही भाषा बोलने वाले बांगला देश और पश्चिम बंग मिलकर भारत से पृथक् स्वतंत्र राज्य बनाने का प्रयास कर सकते हैं। बांगला देश के मौलाना भसानी ने तो 'मुक्त बंगाल' का नारा लगाना शुरू भी कर दिया है। किन्तु आज की परिस्थितियों में क्या यह संभव है? यह सच है कि खंडित भारत की तरह ही खंडित बंगाल भावुकों को पीड़ित करता रहेगा किन्तु यह भी सच है कि दुनियावी कामकाज केवल भावुकता से नहीं चलते। भाषा एक होने पर ही यदि एकता स्वतः सिद्ध होती तो आन्ध्र और तेलंगाना आज विभाजन के लिए उग्र आन्दोलन नहीं करते। पश्चिम बंग भारत के प्रबुद्धतम राज्यों में एक है। आधुनिक भारतीय नव जागरण का पुरोधा बंगाल ही था। बीसवीं शताब्दी के द्वितीय दशक तक तो भारतीय एकता और स्वतंत्रता का आन्दोलन मुख्यतः बंगाली मनीषियों द्वारा ही परिचालित होता रहा। उसके बाद भी भारत के भविष्य के निर्माताओं में बंगालियों का स्थान बहुत ऊँचा रहा है। वन्दे मातरम्, भारत भाग्य विधाता और जय हिन्द की भावना जिस बंगाल में ओत-प्रोत रही है, वह अपना बृहत्तर सांस्कृतिक उत्तराधिकार क्यों छोड़ेगा? व्यापकतर क्षेत्र में कर्म-प्रसार एवं द्रुततर आर्थिक विकास की संभावना का

परित्याग क्यों करेगा ? इस कठोर यथार्थ को भुला देना बुद्धिमान भारतीय बंगाली के लिए संभव नहीं है कि युद्ध विध्वस्त, औद्योगिक दृष्टि से अनुन्नत कृषिनिर्भर बांगला देश अपनी साढ़े सात करोड़ आवादी के भरण-पोषण के लिए ही बहुत वर्षों तक परमुखापेक्षी रहेगा। अतः बांगला देश से संयुक्त होने पर पश्चिम वंग को भौतिक दृष्टि से सरासर नुकसान ही होगा, लाभ नहीं। फिर वर्तमान स्थिति में भाषा एवं संस्कृति की समानता का आकर्षण साम्प्रदायिक विकर्षण से प्रवल नहीं हो सकता। यह ठीक है कि बांगला देश के वर्तमान कर्णधार असाम्प्रदायिक आधार पर अपने देश का निर्माण करने पर जुटे हुए हैं और यह बहुत ही स्वागत योग्य विकास है किन्तु यह भी ठीक है कि १९४६ से बराबर होने वाले नृशंस हिन्दू-मुस्लिम दंगों के कारण हिन्दू-बंगाली बहुल पश्चिम बंग मुस्लिम बहुल अविभक्त बंगाल में सम्मिलित होना स्वीकार नहीं करेगा। मेरा विश्वास है कि यदि ऐसा प्रस्ताव उठा भी तो इसका सबसे प्रचंड विरोध पूर्व बंगाल से आने वाले शरणार्थी हिन्दू बंगाली ही करेंगे। इस मनःस्थिति को भले ही कुछ तथाकथित प्रगतिशील विचारक साम्प्रदायिक कह लें किन्तु यह है और इसे अस्वाभाविक भी नहीं कहा जा सकता। कहावत प्रसिद्ध है, दूध का जला छाछ को भी फूंक-फूंक कर पीता है। पश्चिम वंग और बांगला देश में पारस्परिक सद्भावना और सांस्कृतिक आदान-प्रदान की स्निग्धता निश्चय ही बढ़ती जायेगी किन्तु उनके राजनीतिक एकीकरण की कोई संभावना मुझे नहीं लगती।

कुछ विचारकों ने इस बात पर भी आशंका प्रकट की है कि बांगला देश की गरीबी और युद्धोत्तर विशृङ्खला का लाभ उठाकर चीन वहाँ अपना प्रभाव विस्तृत कर सकता है और कालान्तर में भारत के लिए संकट उत्पन्न कर सकता है। इसी तरह कुछ महानुभावों को यह भी लगा है कि अब भारत की दोनों सीमाओं पर दो मुस्लिम देश हो गये हैं जो हमारे लिए खतरनाक हो सकते हैं। ये अतिरिक्त भयभीत व्यक्तियों के तर्क हैं। ये लोग यह भूल जाते हैं कि पाकिस्तान का अंश रहने पर तो पूर्व बंग और आसानी से चीन का अड्डा बन सकता था क्योंकि केन्द्रीय पाकिस्तानी सरकार बांगला देश की स्वायत्तता को कुचलने और भारत के विरुद्ध इस भूखंड का प्रयोग करने के लिए इसमें चीन समर्थक दलों को और स्वयं चीन सरकार को विशेष छूट दे सकती थी। दो मुस्लिम देशों की बात उठाने वालों के मन में शायद बहमनी साम्राज्य के टुकड़ों तथा विजयनगर साम्राज्य के युद्ध की पुरानी नजीर भी है। पर पाकिस्तान जैसे शत्रु राष्ट्र के एक अंश का बांगला देश जैसे मित्र

राष्ट्र के रूप में अभ्युदय भी जिनको आश्वस्त नहीं कर पाता, वे लाइलाज मुस्लिन-फोबिया से ग्रस्त हैं। सही बात यह है कि मौजूदा स्थिति में इन दोनों खतरों से हम एक बड़ी हद तक मुक्त हुए हैं। भविष्य तो हमारी अपनी शक्ति तथा दूरदर्शिता पर निर्भर करता हैं, अतः उसके लिए आशंकित न हो कर साहस और धैर्य के साथ समुचित आचरण करना चाहिए। मेरी समझ से बांगला देश के निर्माण से भारत की एकात्मता किसी भी रूप में क्षतिग्रस्त नहीं हो सकती।

इसी के साथ-साथ मेरा सुचिन्तित मत है कि बांगला देश के कारण विविध अन्तर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय दृष्टियों से भारत का गौरव तो बड़ा ही है, एकात्मता की दृष्टि से भी भारत पहले से अधिक सुदृढ़ हुआ है। निश्चय ही इस उपलब्धि के फलस्वरूप अपने सामूहिक कर्तृत्व एवं बल पर भारतीय जनता का भरोसा बढ़ा है, विविध धर्मावलम्बी एवं भाषा-भाषीजनों को साँझी प्रतिष्ठा का आस्वाद मिला है। इससे एकात्मता की भावना बढ़ेगी। सामान्य परिवेश के अधिक अनुकूल होने के साथ ही जिन विशेष समस्याओं से हमारी एकात्मता में दरारें पैदा हो सकती हैं, उन्हें भी इस शुभ परिवर्तन से स्वस्थ दिशा मिलेगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

बांगला देश की क्रान्ति का सर्व प्रधान सांस्कृतिक परिणाम इस तथ्य की उपलब्धि है कि केवल धर्म राष्ट्रीयता का आधार नहीं हो सकता। श्री जिन्ना का द्विराष्ट्र सिद्धान्त न केवल गलत था बल्कि उसने सबसे अधिक हानि मुसलमानों को ही पहुँचाई, अब यह सिद्ध हो चुका है। धर्म बदल जाने से ही संस्कृति नहीं बदल जाती, धर्मान्तरित समुदाय भी अपनी पारम्परिक संस्कृति से वंचित नहीं होता, क्योंकि संस्कृत धर्म से व्यापक और सूक्ष्म होती है। चौबीस वर्षों के कटु अनुभवों ने मुसलमान पूर्व बंगाली को सिखा दिया कि समान संस्कृत के कारण हिन्दू पूर्व बंगाली उसके समान धर्म वाले पाकिस्तानी मुसलमान की तुलना में उसका कहीं अधिक आत्मीय है। इसी शिक्षा के कारण बांगला देश अपना पूर्ववर्ती साम्प्रदायिक आधार त्याग कर धर्म-निरपेक्षता को अपने आधारभूत मूल्य के रूप में स्वीकार कर चुका है।

इससे भारत की धर्म-निरपेक्षता की मान्यता को बल मिलेगा। इतिहास की विकृति के रूप में जो साम्प्रदायिक मनोवृत्ति अब भी कुछ हिन्दू-मुसलमानों में चली आ रही है, वह और दुर्बल होगी। बांगला देश के एक कवि हुमायूँ आजाद ने अपनी कविता 'गृहनिर्माण' में कहा है कि १९७१ ई० ने १९४७ ई० की भूल को सुधार दिया है। इस सत्य का समर्थन भारतीय जनता

भी मुक्त हृदय से करेगी। १९४७ ने धर्म की भिन्नता पर अतिरिक्त बल देकर साँझी सांस्कृतिक परम्परा को नकार दिया था। १९७१ ने पूर्व बंगालियों—विशेषतः प्रबुद्ध मुसलमान पूर्व बंगालियों का आदर्श प्रस्तुत किया जिन्होंने धार्मिक बिच्छेद की संकीर्णता से उबर कर हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, बंगाली की साँझी सृष्टि—बंगाली संस्कृति की रक्षा के लिए प्राणों की बाजी लगायी। भारत के जो हिन्दू-मुसलमान अब भी साम्प्रदायिकता के शिकार हैं, उन्हें यह उदाहरण उससे मुक्त होने की शक्ति देगा। मैं सचमुच यह आशा करता हूँ कि हिन्दुओं के एक वर्ग में अब भी प्रचलित यह गलत धारणा दूर होगी कि हिन्दू-धर्म और भारत एक ही हैं। वे इस प्रौढ़तर मान्यता को स्वीकार करेंगे कि अन्य धर्मावलम्बी भी भारत के समान रूप से निष्ठावान् राष्ट्रीय हो सकते हैं, अतः किसी के साथ केवल इसीलिए विषम व्यवहार नहीं करना चाहिए कि उसका धर्म हिन्दू धर्म से भिन्न है। भारतीय होने के लिए हिन्दू धर्मानुयायी होना कतई आवश्यक नहीं है। जिस प्रकार देश-भक्त हिन्दू और अहिन्दू दोनों हो सकते हैं, उसी प्रकार देशद्रोही भी हिन्दू, अहिन्दू दोनों हो सकते हैं। अतः देश भक्ति या देश द्रोह की कसौटी आचरण ही है, धर्म नहीं। 'सर्वधर्म सम-भाव' को हृदय से अपना कर ही हम अपनी एकात्मता को दृढ़ कर सकते हैं, यह सभी भारतीयों को—विशेषतः बहुसंख्यक हिन्दुओं को कुंठा रहित होकर स्वीकार कर लेना चाहिए।

बांगला देश के उदाहरण से भारतीय मुसलमानों का दृष्टि-कोण भी स्वस्थ-तर होना चाहिए। उन्होंने देखा है कि इस्लामी धर्मान्धता और सांस्कृतिक राष्ट्रीयता की सीधी टक्कर में बांगला देश में सांस्कृतिक राष्ट्रीयता की विजय हुई है। वहाँ के मुस्लिम बंगालियों ने यह सिद्ध कर दिया है कि वे बंगाली पहले हैं और मुसलमान बाद में। भारतीय मुस्लिम चेतना पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा ? इसका उत्तर देने के पहले भारतीय मुसलमानों की मनोवृत्ति के ऐतिहासिक विकास पर कुछ विचार करना आवश्यक जान पड़ता है।

यह दुर्भाग्यपूर्ण तथ्य है कि किसी भी कारण से क्यों न हो, भारत के उच्चवर्गीय मुसलमानों का एक बड़ा अंश अपने को ईरानियों, तुर्कों अथवा अरबों का वंशज घोषित करने में पारस्परिक रूप से गौरव का अनुभव करता रहा है। इस मान्यता में यह धारणा निहित है कि हम इस देश के विजेता हैं, इस देश के वासी नहीं। अधिकांश क्षेत्रों में यह दावा महज ढोंग है किन्तु यह मनोवृत्ति मुस्लिम समाज के उच्चवर्ग में प्रवेश पाने के इच्छुक नये शिक्षित या नये धनी मध्यवर्ग में भी संक्रमित होती रही। असल में मुगल साम्राज्य के

पतन के बाद धनी मुस्लिम नवाब, ताल्लुकेदार, जमीन्दार वगैरह और बाद में अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त मध्यवर्गीय मुसलमान भी बहुसंख्यक हिन्दुओं द्वारा ग्रश लिये जा सकने के मिथ्या भय से आतंकित हो अपने को मूल राष्ट्रीय जीवन-धारा से विच्छिन्न रखने में ही अपना कल्याण मानने लगे थे। अंग्रेजों ने अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए इस विलगाववादी प्रवृत्ति को और बढ़ावा दिया ताकि हिन्दू-मुसलमान एक होकर उनका विरोध न करें। अंग्रेजों के प्रोत्साहन तथा अरक्षा और भावात्मक विच्छिन्नता के बोध ने ही भारतीय मुसलमानों को भारत-विभाजन की मांग करने के लिए प्रेरित किया था। महाकवि अकबर इलाहाबादी ने नवशिक्षित मध्यवर्गीय भारतीय मुसलमानों की भावात्मक विच्छिन्नता को अपने इस व्यंग्यात्मक शेर में रेखांकित किया है :—

पेट मसरूफ है कलर्की में
दिल है ईरान और टर्की में।

भावात्मक विच्छिन्नता की यह प्रवृत्ति उर्दू साहित्य में 'मतरूकात' की नीति के रूप में प्रतिफलित हुई थी। सन् १७५५ ई० में हातिम ने उर्दू कविता से चुन-चुन कर संस्कृत के तत्सम, तद्भव शब्द निकाल कर अरबी-फारसी के शब्दों को दाखिल करने की पद्धति चलायी थी सौदा, नासिख आदि के समर्थन के कारण जिसका व्यापक अनुसरण हुआ। उर्दू के सर्वश्रेष्ठ कवि मीर तकी मीर ने अरबी फारसी शब्दों के अंधाधुंध इस्तेमाल पर व्यंग्य करते हुए लिखा था :—

क्या जानूं लोग कहते हैं किसको सुरूरे कल्ब
आया नहीं है लफ्ज ये हिन्दी जबाँ के बीच।

किन्तु मीर की इस भावना की उपेक्षा कर उर्दू के अधिकांश कवियों और लेखकों ने न केवल अरबी, फारसी के शब्दों की प्रचुरता द्वारा बल्कि अरब और फारस की पौराणिक कथाओं, चरित्रों, साहित्यिक रूढ़ियों के सचेत प्रयोग द्वारा भी उसे अरबी और फारसी के साँचे में ढालकर अपनी पृथकता का प्रदर्शन करना ही उचित समझा। नजीर अकबराबादी जैसे कुछ ही कवि इसके अपवाद कहे जा सकते हैं। आधुनिक युग में राष्ट्रीयता के प्रभाव से उर्दू कविता में भारतीय विषयों का समावेश भी हुआ किन्तु उर्दू की मुख्य धारा पर वे ही लोग छाये रहे जो उसे 'इस्लामी भाषा' के रूप में विकसित करना चाहते थे। इसका अर्थ यही था कि अपनी भ्रान्त धारणाओं के कारण बहुतेरे भारतीय मुसलमान अपने देश से कट से गये थे। इसी मनोभाव के कारण

श्री जिन्ना ने भारत के मुसलमानों को पृथक् राष्ट्र घोषित कर उनकी वास भूमि के रूप में स्वतंत्र पाकिस्तान की माँग की थी।

पाकिस्तान इस मनोभाव को कायम रखने की बल्कि और मजबूत करने की भरसक कोशिश करता रहा है, कर रहा है और करता रहेगा। उसके अस्तित्व का सैद्धान्तिक औचित्य इसी मनोभाव पर निर्भर है। भारतीय मुसलमानों के सिरधरू के रूप में वह दुनिया भर में अपना प्रचार करता रहा है और उनके वास्तविक तथा कल्पित दुःख कष्टों को अतिरंजित रूप में उछालता रहा है। यद्यपि बांगला देश के निर्माण के बाद अब उसका यह मुँह नहीं रह गया है कि वह अपने को 'मुस्लिम रक्षक' देश के रूप में पेश करे क्योंकि उसने मुसलमान बंगालियों पर जो बर्बर अत्याचार किये हैं, वे जगजाहिर हैं तथापि वह मुसलमान भारतीयों को बरगलाने से बाज नहीं आया है, नहीं आयेगा। हमें इस सच्चाई को भी स्वीकार कर लेना चाहिए कि पाकिस्तान के बन जाने के बाद भी भारत में हिन्दू-मुस्लिम समस्या विद्यमान है। भारत की एकात्मता को जितना खतरा उग्र प्रान्तीयता से है उतना ही बल्कि उससे भी ज्यादा खतरा संकीर्ण साम्प्रदायिकता से है, जिसकी सबसे दुखती रग हिन्दुओं और मुसलमानों के मध्य गहरे अविश्वास की है, पुराने बम्बई प्रदेश को महाराष्ट्र गुजरात में बाँट देने के बाद जिस प्रकार मराठों और गुजरातियों के मध्य विवाद शान्त हो गया उस तरह अविभक्त भारत के दो टुकड़े कर देने से हिन्दू-मुस्लिम समस्या हल नहीं हो सकी, यह समय-समय पर भारत और पाकिस्तान में होते रहने वाले हिन्दू-मुस्लिम दंगों से स्पष्ट है। इससे यही सिद्ध होता है कि हिन्दू-मुस्लिम समस्या का समाधान करने के लिए धर्म के आधार पर भारत का विभाजन करना गलत था। इस विभाजन के कारण भारतीय हिन्दुओं के मन में आक्रोश की और भारत में रह गये मुसलमानों के मन में आतंक और हीनताग्रन्थि की ही सृष्टि हुई। उदार भारतीय सांस्कृतिक परम्परा और महात्मा गांधी के बलिदान ने इस विष को फैलने तो नहीं दिया किन्तु वह निर्मूल हो गया है, ऐसा कहना सत्य से कोसों दूर है। बांगला देश के माध्यम से १९७१ ई० ने १९४७ की भूल को सुधारने का सन्देश दिया है। मुसलमान बंगाली ने अपने धर्म की मर्यादा का पालन करते हुए भी इस्लाम पूर्व के अपने इतिहास को, अपनी भाषा के निजी रूप को, हिन्दू-मुस्लिम, ईसाई द्वारा रचित अपने समग्र साहित्य, दार्शनिक तथा राजनीतिक चिन्तन को अपने गौरवपूर्ण उत्तराधिकार के रूप में स्वीकार कर लिया है। और इस तरह अपने देश और देशवासियों से सांस्कृतिक विच्छेद के

मनोभाव को दूर कर दिया है। सवाल है इस नयी चेतना का मुस्लिम भारतीयों पर क्या प्रभाव पड़ेगा ?

मैं यह स्वीकार कर लेता हूँ कि हमारे राष्ट्रीयतावादी मुस्लिम नेता इस दिशा की ओर अग्रसर होने के लिए भारतीय मुस्लिम समाज को प्रेरित करते रहे हैं और बड़ी हद तक वे सफल भी हुए हैं। किन्तु इसे भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि अब भी मुस्लिम-मानस का एक बड़ा अंश विभाजन पूर्व ही साम्प्रदायिक खुमारी से ग्रस्त हैं। अब भी बहुतेरे साम्प्रदायिकतावादी मुस्लिम नेता मुसलमानों को अपनी पृथक्ता ज्यों-की-त्यों बनाये रखने की सलाह देते रहते हैं। उन पर बांगला देश की घटनाओं का क्या प्रभाव पड़ेगा? कहना मुश्किल है।

एक बात प्रत्यक्ष है। बांगला देश को बने एक साल से ऊपर हो गया किन्तु भारत के साम्प्रदायिकतावादी मुस्लिम नेताओं या दलों के स्वर में कोई विशेष परिवर्तन परिलक्षित नहीं हुआ हैं। इसका एक कारण तो साफ है। बांगला देश में मुसलमानों का प्रचंड बहुमत है, वे अपने को वहाँ अरक्षित अनुभव नहीं करते। इसीलिए पाकिस्तानी शोषण का विरोध करने के लिए अपनी बंगाली अस्मिता पर वे बल दे सके तथा सांस्कृतिक क्षेत्र में साहसपूर्ण प्रयोग कर सके। भारत में मुस्लिम अल्प संख्यक हैं और उनके मन से यह पुराना भय अभी तक दूर नहीं हुआ है कि बहुसंख्यक हिन्दुओं से बहुत अधिक सांस्कृतिक तालमेल बढ़ाने पर हिन्दू उनको क्रमशः आत्मसात् कर ले सकते है। अतः कट्टरपंथी मुल्ला-मौलवियों का दल उन्हें बराबर इस्लाम पूर्व भारतीय संस्कृति को नकारने एवं अपना पृथक् सांस्कृतिक अस्तित्व बनाये रखने की प्रेरणा देता रहता है। इन मुल्ला-मौलवियों पर मध्य-कालीन इस्लामी चेतना भी हावी है जिसके अनुसार धर्म और राज्य अभिन्न भाव से सम्बद्ध है, जिसका निर्देश है कि जिस किसी देश में मुसलमान अल्पमत में हों, वहाँ उन्हें बहुमत में होने की और राज्य पर कब्जा करने की सतत चेष्टा करनी चाहिए। पाकिस्तान के आन्दोलन के पीछे जो चरम साम्प्रदायिक कल्पना थी उसमें कहीं यह लालसा भी निहित थी कि एक बार स्वतंत्र पाकिस्तान बन जाने के बाद शेष भारत को बलपूर्वक जीत कर इस्लामी राज्य में परिणत किया जा सकेगा। इसीलिए कट्टर साम्प्रदायिक मुस्लिम तत्त्वों की गोपन सहानुभूति बराबर पाकिस्तान के प्रति रही और बाँगला देश के निर्माण को पाकिस्तान के विभाजन के रूप में देखने के कारण उन्हें गहरी हताशा और पीड़ा हुई। इस कट्टरपंथी मुस्लिम तपके को यह भी लगा कि

इस्लाम से बंगाली संस्कृति को बडा मानना बंगाली मुसलमानों का बड़ा भारी अपराध है। यह प्रतिक्रिया केवल कट्टरपंथी भारतीय मुसलमानों तक ही सीमित नहीं है। इसी मध्यकालीन प्रवृत्ति से ही प्रेरित होकर कुछ अरब मुस्लिम धर्म-गुरुओं ने यह फतवा दिया था कि अपनी धर्म निरपेक्ष भावना के कारण पूर्व बंगाल के मुसलमान, मुसलमान ही नहीं रहे, काफिर हो गये यह बात और है कि आधुनिक युग की राजनीति में ऐसे फतवों का विशेष महत्त्व नहीं रहा। इंडोनेशिया, मलएशिया आदि कई मुस्लिम देशों ने बांगला देश को मान्यता दी है और अनतिदूर भविष्य में अरब राष्ट्र तथा अन्य मुस्लिम देश भी बांगला देश को मान्यता देने ही वाले हैं।

जो हो, बांगला देश के आविर्भाव से मध्यकालीन मुस्लिम चेतना को गहरी ठेस लगी है, यह सच है। यदि एक ओर यह ठेस कट्टर साम्प्रदायिक तत्त्वों को और साम्प्रदायिक बना सकती है तो दूसरी ओर उन्हें आधुनिक बनने की राह भी दिखा सकती है। तर्क के लिए मान लिया जाये कि इसकी प्रतिक्रिया में भीतर-भीतर मुस्लिम साम्प्रदायिकता और घनीभूत होगी। यदि ऐसा हुआ तो इससे भारतीय मुसलमानों को और गहरी हानि उठानी पड़ेगी। १९४७ में जो संभावनाएँ उनके सामने थीं, वे आज नहीं हैं। उस समय ब्रिटिश कूटनीति भारत के विभाजन के पक्ष में थी, भारत में दो बड़े मुस्लिम बहुल अंचल थे, जिन्हें अलग करने की वैधानिक माँग की जा सकती थी। आज तो ऐसी स्थिति नहीं है! आज तो भारत के किसी हिस्से को मुस्लिम देश बनाने की माँग नहीं की जा सकती, न खंडित एवं गृहकलह से ग्रस्त पाकिस्तान पर ही बहुत भरोसा किया जा सकता है। फिर विभाजन से समस्याएँ हल नहीं होतीं, बढ़ जाती हैं। भारत-पाकिस्तान के इतिहास ने इसे प्रमाणित कर दिया है। अतः भारत से बाहर जाकर हिन्दुओं से छुटकारा पाने का कोई रास्ता भारतीय मुसलमानों के सामने आज नहीं है।

आधुनिक भारत में मध्यकालीन मनोवृत्ति से चिपटे रह कर नये विचारों एवं परिवर्त्तनों के लिए अपने द्वार बन्द कर, अपने देश की प्रमुख धारा से अपने को विच्छिन्न रख कर क्या भारतीय मुसलमान समृद्ध हो सकेंगे? मुख्य राष्ट्रीय धारा से अलगाव किसी भी सम्प्रदाय के लिए अन्त में हानिकर ही सिद्ध होगा। इस सन्दर्भ में बांगला देश के बिहारी मुसलमानों का उदाहरण विशेष रूप से विचारणीय है। वे स्थानीय बंगाली संस्कृति से अलग नहीं रहे, निश्चित हिन्दू संस्कृति कह कर उसे हीन दृष्टि से भी देखते रहे। पश्चिमी पाकिस्तानी नेताओं के उसकाने पर उन्होंने बंगाली मुसलमानों पर अपनी संस्कृति और

भाषा थोपनी भी चाही। किन्तु ऐसा करके उन्होंने न तो इस्लाम की, न उर्दू की ही सेवा की। बांगला देश के मुसलमानों के मध्य वे अपने को स्वीकार्य भी नहीं बना पाये। यदि मुस्लिम-बहुल देश में एक मुस्लिम वर्ग की अलगाववादी नीति उसके अपने हित के विपरीत जा सकती है, तो उस नीति से भारत के मुसलमानों का भला कैसे हो सकता है ?

मेरा विश्वास है कि भारतीय मुसलमानों के बुद्धिमान साम्प्रदायिक नेता भी देर-सबेर स्वयं इस बात को समझेंगे कि उनका अपना हित कुण्ठारहित भाव से भारत की साँझी सांस्कृतिक विरासत को स्वीकार कर मुख्य राष्ट्रीय धारा में सम्मिलित होने में ही है। बांगला देश का उदाहरण उन्हें मध्ययुगीन साम्प्रदायिकता एवं धर्मान्धता से ऊपर उठने की प्रेरणा देगा। अवश्य ही इसके लिये हिन्दुओं को भी अधिक उदार, अधिक समन्वयी होना होगा, बिना किसी झिझक के इस्लाम को भारतीय धर्म के रूप में स्वीकार कर लेना होगा। भारत की जनता जिन-जिन धर्मों को मानती है, वे सब धर्म अन्तर्राष्ट्रीय होने के साथ-साथ भारतीय भी हैं और सभी भारतीयों के लिए श्रद्धेय हैं। भारतीय धर्म के रूप में उनका विकास एवं अनुगमन साँझी भारतीय संस्कृति एवं अन्य भारतीय धर्मों से ताल-मेल रख कर ही किया जाना चाहिए। बात इस्लाम की चल रही थी अतः मैं यह संकेत करना चाहता हूँ कि मौलाना दाऊद, कुतबन, मंझन, मलिक मुहम्मद जायसी आदि सूफी महाकवियों ने इस्लाम के तत्त्वों को स्थानीय कथा, चरित्र, लोकभाषा आदि के माध्यम से प्रस्तुत कर एवं उन्हें भारतीय संस्कृति से समन्वित कर इस्लाम को भारतीयों के हृदय के निकट लाने का सुन्दर प्रयास किया था। आधुनिक परिवेश के अनुकूल उस स्वस्थ प्रवृत्ति का अनुगमन करना भारतीय मुसलमानों के लिए निश्चित रूप से हितकर होगा। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं है कि साम्प्रदायिकता के मोर्चे पर भारत की एकात्मता को दृढ़ करने में बांगला देश की क्रान्ति बहुत सहायक सिद्ध होगी।

बांगला देश ने भाषा की साम्प्रदायिकता को भी नकार देने का साहस दिखाया है। भाषा अपने क्षेत्र के सभी धर्मावलम्बियों की सांझी सम्पत्ति है, उसे किसी एक ही धर्म के साथ जोड़ कर देखना गलत है। पाकिस्तानियों ने भरपूर चेष्टा की कि मुसलमान बंगाली उर्दू को इस्लामी भाषा के रूप में स्वीकार कर लें और बांगला को हिन्दू भाषा मान कर छोड़ दें किन्तु वे विफल रहे। बंगला में बलपूर्वक अरबी-फारसी शब्दों का भरने की तथा अरबी लिपि में उसे लिखने की उनकी चेष्टा भी विफल रहीं क्योंकि बंगला पूर्ण विकसित

भाषा थी और उसका स्वरूप उसके बोलने और लिखने वाले तै कर चुके थे। भले ही हिन्दू साहित्यकारों का उसकी समृद्धि में अधिक योगदान था किन्तु इसी के चलते मुसलमान बंगाली उसके पारम्परिक रूप को बिगाड़ कर उसे बनावटी भाषा बनाने के षड्यंत्र को इस्लाम के नाम पर स्वीकार कर लें यह उन्हें गवारा न था।

यह दृष्टि भारत की जटिल भाषा समस्या का आंशिक समाधान करने के लिए उपयोगी है। भारत में भी ऐसे विचारकों की कमी नहीं है जो भाषाओं को भी धर्म के साथ जोड़ने की भूल करते रहे हैं। अट्ठारहवीं शती में हातिम और उनके सहयोगी सौदा, नासिख आदि ने बोलचाल की उर्दू में प्रचलित संस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्दों का बहिष्कार कर किस प्रकार अरबी-फारसी के शब्द भरे, इसका उल्लेख किया जा चुका है। उर्दू को इस्लामी भाषा के रूप में विकसित करने का यह संगठित प्रयास उन्नीसवीं-बीसवीं शताब्दी तक चलता रहा। इसकी प्रतिक्रिया के फल स्वरूप कुछ विचारकों ने हिन्दी को हिन्दुओं की भाषा के रूप में विकसित करना चाहा। इस झगड़े में अंग्रेजों ने फिर टाँग अड़ायी और भेदभाव को बढ़ाने के लिए अतिवादी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहित किया। हिन्दी-उर्दू के झगड़े में शब्दों से भी अधिक अन्तराय लिपि ने उपस्थित किया। कहीं अधिक वैज्ञानिक और देशज लिपि नागरी को छोड़कर फारसी लिपि अपनाने के कारण उर्दू-हिन्दी से पृथक् हो गयी यद्यपि दोनों का मूलाधार खड़ी बोली ही है। जो हो, आज इस सत्य पर पुनः बल दिया जाना चाहिए कि हिन्दी और उर्दू हिन्दुओं या मुसलमानों की ही भाषाएँ न होकर साँझी भारतीय भाषाएँ हैं जिन पर हिन्दुओं और मुसलमानों का समान अधिकार है।

जिन ऐतिहासिक शक्तियों ने अपनी दृष्टिगत संकीर्णता के कारण उर्दू को इस्लामी भाषा के रूप में विकसित और घोषित किया उन्होंने ही उसे पाकिस्तान की एक मात्र राष्ट्रभाषा भी बनाया। उर्दू प्रेमियों को लगा कि इससे उनकी भाषा की बहुत उन्नति होगी और वे फूले न समाये। कुछ प्रख्यात उर्दू साहित्यकार अपनी समृद्धि की आशा सँजोये पाकिस्तान चले गये किन्तु शीघ्र ही उन्हें पता चल गया कि वे छलना के शिकार हो गये हैं। अधिक घिसने पर जिस तरह मुलम्मा उतर जाता है, उसी तरह धीरे-धीरे यह सच्चाई प्रकट होने लगी कि उर्दू पाकिस्तानी भाषा नहीं है। मैं इस बात पर बल देना चाहता हूँ कि उर्दू भारतीय भाषा है और उसका भविष्य भारत में ही सुरक्षित है, पाकिस्तान में नहीं। बांगला देश ने (जो हाल ही तक पूर्वी

पाकिस्तान था) उर्दू का परित्याग कर दिया है। पश्चिमी पाकिस्तान में भी उर्दू-विरोधी आन्दोलन होने लगे हैं। सिन्धियों ने तो सिन्ध को ही सिन्ध प्रदेश की राजभाषा घोषित कर दिया है, बलूचिस्तान और पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त में भी देर-सबेर बलूच और पश्तो राजभाषा बनकर रहेगी। पाक-पंजाब में भी जो पाकिस्तान में उर्दू का गढ़ माना जाता है—पंजाबी बुद्धिजीवी पंजाबी को राजभाषा बनाने की माँग करने लगे हैं। एक समाचार के अनुसार कुछ काल पूर्व सुप्रसिद्ध उर्दू कवि फैज अहमद फैज और हफीज जलन्धरी तक पंजाबी समर्थक जलूस में शामिल हुए थे। साफ बात यह है कि उर्दू पाकिस्तान के किसी भी क्षेत्र के स्थानीय निवासियों की मातृभाषा नहीं है अतः वहाँ उसकी कोई आधार भूमि नहीं है। पाकिस्तान में भारत से गये हुए मुस्लिम परिवारों में ही उर्दू मातृभाषा के रूप में बोली जाती है। पाकिस्तान की सामान्य जनता बाहर की इस आरोपित भाषा को कब तक सहन करेगी, कहा नहीं जा सकता। इसीलिए जौश मलीहाबादी ने खेद प्रकट करते हुए यह वक्तव्य दिया था कि पाकिस्तान आकर मैंने गलती की है क्योंकि भावी पाकिस्तान में उर्दू का महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं रह सकेगा।

इसके विपरीत भारत में उर्दू निश्चित रूप से फले, फूलेगी किन्तु विशुद्ध इस्लामी भाषा के रूप में नहीं, भारतीय जनभाषा के रूप में भारतीय मुसलमान अपनी क्षेत्रीय भाषाओं के प्रति निष्ठावान् न रह कर उर्दू के प्रति रहें, यह आग्रह ठीक नहीं है। ऐतिहासिक कारणों से उर्दू में इस्लाम धर्म दर्शन, साधना के बारे में जितना प्रचुर साहित्य संगृहीत हो गया है, उतना संभवतः अन्य भारतीय भाषाओं में नहीं आ पाया है, इसलिए अरबी-फारसी से अनभिज्ञ भारतीय मुसलमान उर्दू के माध्यम से अपनी धर्म जिज्ञासा तृप्त करें, इसमें कोई आपत्ति नहीं है किन्तु इसका अर्थ यह नहीं होना चाहिए कि अन्य प्रादेशिक भाषाओं को हिन्दू भाषा मान कर मुसमान उनसे मुँह मोड़ लें और उर्दू को इस्लामी भाषा का दर्जा देने के कारण उसमें अरबी-फारसी की भरमार कर दें। भारतीय भाषा के रूप में उर्दू का विकास होने पर स्वभावतः उसमें प्रचलित भारतीय शब्दावली का प्रयोग बढ़ेगा, उसकी पृष्ठभूमि भारतीय होगी अरबी या ईरानी नहीं, उसमें भारतीय पौराणिक, ऐतिहासिक चरित्रों, कथाओं, प्रतीकों से परहेज नहीं किया जायेगा। बिहार के सुप्रसिद्ध उर्दू कवि जमील मजहरी की इस भावना का मैं पूर्ण समर्थन करता हूँ।

कीजे न जमील उर्दू का सिंगार अब ईरानी तल्मीहों से
पहिनेगी विदेशी गहने क्यों यह बेटी भारत माता की ?

इसका अर्थ यह भी नहीं है कि मैं जन साधारण में प्रचलित अरबी, फारसी शब्दावली, प्रतीकों या चरित्रों आदि के बहिष्कार की बात कर रहा हूँ। नहीं, उनका प्रयोग मुक्त रूप से होना चाहिए। उनसे भारतीय भाषाएँ समृद्धतर हुई हैं। मैं सिर्फ अप्रचलित क्लिष्ट अरबी-फारसी शब्दों के अकारण व्यवहार का विरोधी हूँ, उनके स्थान पर प्रचलित भारतीय शब्दावली उर्दू को अपनानी चाहिए। उर्दू एक खूबसूरत भाषा है और उसका साहित्य विशेषत: काव्य बहुत ही समृद्ध है। यह कहना या प्रचारित करना कि उर्दू इस्लामी भाषा है न केवल गलत है बल्कि उर्दू के हित के विपरीत भी है। उर्दू भारतीय भाषा है और उसके लेखक, पाठक, व्यवहारकर्ता हिन्दू-मुसलमान दोनों रहे हैं। अपनी भारतीयता के प्रति गौरव, बोध एवं अन्य भारतीय भाषाओं के साथ सहयोग के द्वारा भारत में उर्दू के विकास की असीम संभावनाएँ हैं।

बांगला देश द्वारा भाषाओं के हिन्दू-मुसलमान होने के सिद्धान्त को नकारने के कारण यहाँ भी ऐसी गलतफहमी को दूर करना सुगम हुआ है और इस तरह भाषिक स्तर पर हमारी एकात्मता को बल मिला है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि बांगला देश की क्रान्ति के कारण भारत की एकात्मता में दरारें पड़ने की आशंका निरा अल्पप्रचार है, वास्तविकता यह है कि वह और सुदृढ़ हुई है। मेरा विश्वास है कि ऐसे अपप्रचारों की अवहेलना कर समान जीवन मूल्यों पर विश्वास करने के कारण बांगला देश और भारत में पारस्परिक सहयोग, सद्भाव, उत्तरोत्तर और बढ़ता जायेगा, जो दोनों देशों के मंगल का विधान करेगा।

४.

साहित्यकार की प्रतिक्रिया

यहिया खां ने अपने खूनी दरिंदों को बंगला देश की स्वतन्त्रता प्रेमी जनता का शिकार करने की खुली छूट दे दी है। जाहिर है कि सुसंगठित फौज के आधुनिकतम अमेरिकी, रूसी और चीनी शस्त्रास्त्रों के सामने मुक्ति योद्धाओं की मुट्ठी भर जंगी टुकड़ी द्वितीय विश्वयुद्ध की राइफलों का सहारा लेकर अधिक देर तक टिक नहीं सकती थी। एक-एक कर बंगला देश के बड़े-बड़े शहर आग की लपटों से झुलसते जा रहे हैं, पाकिस्तानी फौज के बूटों तले रौंद दिये जा रहे हैं। यही क्रम चलता रहा (जिसकी आशंका है) तो अगले कुछ सप्ताहों तक बड़े शहरों पर पाकिस्तानी फौज का अधिकार हो जाएगा।

किन्तु यह फौजी जीत बहुत बड़ी नैतिक हार है। यहिया खां की जनतन्त्री सदाशयता की नकाब उतर गयी और घिनौनी तानाशाही सूरत दौड़े आ गयी। संगीनों के बल पर किसी देश को दीर्घकाल तक पराधीन नहीं रक्खा जा सकता। अब कोई बंगाली अपने को पाकिस्तानी नहीं मान सकता, क्योंकि उसने देखा है कि पाकिस्तान के अन्तर्गत रहते हुए स्वायत्त शासन की माँग करने वाली बहुसंख्यक जनता की एकताबद्ध आवाज का गला घोंट दिया गया है। उसने देखा है कि अपने को पाकिस्तानी कहने वालों में ढाका, राजशाही आदि विश्वविद्यालयों को घारखार कर दिया है। बंगला देश के विद्वान प्राध्यापकों, कवियों, लेखकों, डॉक्टरों, इन्जीनियरों, नेताओं को मौत के घाट उतार दिया है, छात्रों को गोलियों से भून दिया है। औरतों को सरेआम बेइज्जत किया है, नन्हें-मुन्नों तक की नृशंस हत्या की है। इस्लामी राष्ट्र के नाम पर अपने देश को गुलामों और वेश्याओं का उपनिवेश बनाने के लिए पाकिस्तानियों का शोषज और दमन झेलने के लिए कोई बंगाली कैसे राजी हो सकता है। जिन्ना द्वारा कल्पित पाकिस्तान मर चुका है। संगीनों से उसकी लाश को कोंचा जा सकता है, जिलाया नहीं जा सकता। इस नरमेध का पहला दौर ही आखिरी दौर नहीं है, नहीं हो सकता। लड़ाई खत्म नहीं

हुई है, उसका रूप बदल गया है। अब वह गोरिल्ला युद्ध के रूप में चलेगी और तब तक चलती रहेगी जब तक पूरा बांगला देश पाकिस्तानी दानवी फौज के घृणित आधिपत्य से मुक्त नहीं हो जाता।

मेरी पूरी सहानुभूति (केवल शाब्दिक ही नहीं) बांगला देश के मुक्ति-योद्धाओं के साथ है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि इस युद्ध में पाकिस्तानी साम्राज्यवादी धर्मव्यवसायी कुचक्र को कुचल कर अन्तिम विजय जनता की होगी ही।

१५. ४. १९७१.

५०

मैं सुख-दुःख में अपने देश की जनता के साथ हूँ :

कलकत्ता २० अप्रैल, पिछले दो दिनों से कलकत्ते के प्रबुद्ध वर्ग में जिस नाम की सर्वाधिक चर्चा हो रही है, वह है स्वतंत्र बांगला देश के प्रथम राजनयिक श्री हुसेन अली का। धर्मयुग के इस विशेषांक के लिए उनका संदेश प्राप्त करने एवं उनका इंटरव्यू लेने के लिए जब मैं बांगला देश मिशन पहुँचा, तब वे बहुत व्यस्त थे, फिर भी बड़े स्नेह से उन्होंने मेरा स्वागत किया।

श्री हुसेन अली सौम्य दर्शन, प्रतिभावान, मितभाषी, युवा दीखने वाले मध्यवयसी सज्जन हैं। मिलते ही नमस्कार करने के साथ-साथ मैंने कहा कि आपने जो निर्भीक, देशभक्तिपूर्ण कदम उठाया है, उसके लिए मैं आपका अभिनंदन करता हूँ। वे विनम्रतापूर्वक बोले, इसमें अभिनंदन की क्या बात है, नौकरी देश से बड़ी तो नहीं हो सकती। मैं सुख-दुख में अपने देश की जनता के साथ हूँ।

हम लोगों की बातचीत बंगला में हो रही थी। तेइस वर्ष के मँजे हुए राजनयिक संस्कार के कारण वे सधे हुए लहजे और संयत भाषा में बोल रहे थे। जो प्रश्न उन्हें विवादास्पद लगते, उनका उत्तर देने में वे अपनी असहमति प्रकट कर देते।

विश्व के राष्ट्रों ने अभी तक बांगला देश को मान्यता नहीं दी है। इस सम्बंध में आपके क्या विचार हैं?

"विश्व के राष्ट्रों ने सरकारी तौर पर हमें मान्यता नहीं दी है, यह ठीक है। किन्तु विश्व का जनमत हमारे साथ है यह दुनिया के सभी अखबारों से स्पष्ट है। विदेशी कूटनीतिक संवाददाताओं ने अपनी आँखों से देखा है कि बांगला देश की न्यायोचित जनतांत्रिक माँग की अवहेलना करते हुए पाकिस्तानी फौज ने हमारी निरस्त्र जनता पर कितना पाशविक अत्याचार किया है। उन्होंने न केवल लिख कर, बल्कि फिल्म और टेलीविजन के द्वारा भी इस बर्बर अत्याचार का पर्दाफाश कर दिया है। हमारा विश्वास है कि हमारे

मुक्ति संग्राम को जो व्यापक जन-समर्थन मिला है, उससे बड़े देशों की सरकारें भी प्रभावित होंगी और आज नहीं तो कल सभी देश सरकारी तौर पर हमें मान्यता देंगे।"

क्या से क्या हो गया ?

यदि पाकिस्तान को एक राष्ट्र माना जाय तो क्या इस संघर्ष को विच्छेद-वादी (सेसेशनिस्ट) आन्दोलन और पाकिस्तान का आन्तरिक मामला ही नहीं माना जायेगा।

"यह दुर्भाग्यपूर्ण तथ्य है कि हमने इस्लाम के आधार पर पाकिस्तान को एक राष्ट्र माना था। हमने पश्चिम पाकिस्तानियों को अपना भाई माना, उनसे पूरा सहयोग किया। पश्चिम पाकिस्तानियों को हमने बहुत कुछ दिया—जूट, चाय, कागज, और भी बहुत कुछ। किन्तु उन्होंने हमें कभी अपना भाई नहीं माना, कभी हमारा न्यायोचित प्राप्य हमें नहीं दिया। अतः वह एक राष्ट्र नहीं हो सका। इसके लिये दोषी पश्चिम पाकिस्तान ही है।

राष्ट्र के रूप में पाकिस्तान का जब जन्म हुआ था, तब पश्चिम पाकिस्तान और पूर्व पाकिस्तान की आर्थिक स्थिति करीब-करीब एक जैसी थी। बल्कि पूर्व पाकिस्तान में खाद्य-प्राचुर्य था। इन तेइस वर्षों में दोनों अंचलों में कितना अंतर आ गया है, इसे बिना देखे आप नहीं समझ सकते। पश्चिम पाकिस्तान आर्थिक दृष्टि से बहुत समृद्ध हो गया है, उसके शहर दुनिया के आधुनिकतम शहरों की तरह खूबसूरत और सुविधासम्पन्न हो गये हैं। वे बड़े आदमी हो गये हैं और इधर पूर्व पाकिस्तान तिल-तिल कर रसातल में जा रहा है। मैं खुद गाँव का रहने वाला हूँ, अपने गाँव की गरीबी जानता हूँ। मैंने अपनी आँखों देखा है चौदह-चौदह साल के लड़कों को नंगे फिरते, क्योंकि उनके पास पहिनने को कुछ नहीं है। हमारी औरतें गीली धोतियाँ पहने रहती हैं, क्योंकि उनके पास बदलने को कुछ नहीं है। बीसियों जगह से फट जाने पर भी वे उसे सीते रहने की चेष्टा करती हैं। किन्तु जब कपड़ा ही गल जाये, तो सिलाई कहाँ तक काम दे ? इसी गरीबी से यह विद्रोह तथा सम्मानपूर्वक जीने के लिए संघर्ष का भाव पैदा हुआ है।"

अर्थात् आपके विचारों से यह लड़ाई न तो देश विभाजन की है, न यह पाकिस्तान का भीतरी मामला ही है।

"जी हाँ, आप ठीक समझे। वैसे पाकिस्तान में जनसंख्या की दृष्टि से हम ही बहुमत में थे। जनतंत्र के आधार पर शासन का अधिकार हमें ही

मिलना चाहिए था, किन्तु मिलता रहा है दमन, शोषण और घृणामूलक अपमान। अब हमने तै कर लिया है कि हम स्वतंत्र देश की तरह जियेंगे। हमारी अंतर्राष्ट्रीय सीमाएँ बिल्कुल अलग हैं, हमारी संस्कृति अलग है, भाषा अलग है, जाति अलग है, हम हिंदू-मुसलमान का भेद नहीं मानते। हमारा यह संघर्ष स्वतंत्र देश के स्वाभिमानपूर्ण समृद्ध जीवन के लिए है, औपनिवेशिक दासता और शोषण के विरुद्ध है, बर्बरता और अत्याचार के विरुद्ध है। अब हम गुलाम पाकिस्तान के नहीं, स्वतंत्र बांगला देश के निवासी हैं। हमारी यह लड़ाई किसी भी तरह पाकिस्तान का भीतरी मामला नहीं है। यह मानवता की प्रतिष्ठा की लड़ाई है।

आपने बार-बार कहा है कि पाकिस्तानी फौजें बांगला देश पर अकथ्य, बर्बर अत्याचार कर रही हैं। क्या आप इसकी कुछ व्याख्या करेंगे ?

"बांगला देश में इस समय पाकिस्तानी फौजें जो कर रही हैं, उसे जन-हत्या या जेनोसाइड ही कहा जा सकता है। ढाका, राजशाही, चटगाँव, जैसोर, खुलना आदि शहरों की घनी बस्तियों पर हवाई जहाजों से निर्ममता-पूर्ण बमवर्षा कर निहत्थी जनता पर टैंकों, आर्मर्डकारों से गोलियाँ बरसा कर, गाँवों में आग लगा कर वे लोग एक ओर साधारण जनता की निर्विचार हत्या कर रहे हैं, तो दूसरी ओर चुन-चुन कर देश के बुद्धिजीवियों, कवियों, लेखकों, पत्रकारों, राजनीतिक नेताओं, वकीलों, डॉक्टरों, प्राध्यापकों और छात्रों का सफाया करते चले जा रहे हैं, ताकि देश नेतृत्वविहीन होकर पंगु हो जाये। औरतों की बेइज्जती, बच्चों और बूढ़ों की हत्या, पाकिस्तानी फौजियों के लिए मनोविनोद के साधन हैं। सीमाओं के पाँच-छह मील के भीतर बम-वर्षा कर उसे जनशून्य बनाने और उजाड़ देने की चेष्टा चल रही है, ताकि शरणार्थी भारत न आ सकें। प्रत्यक्षदर्शियों ने मुझे बताया है कि जगह-जगह लाशों के ढेर लग गये हैं। गिद्ध, कुत्ते और कौए उन्हें नोंच-नोंच कर खा रहे हैं। सामूहिक कब्रों में इतनी संख्या में लाशें भर दी गयी हैं कि उनके फूल जाने के कारण बहुतों के हाथ-पाँव बाहर निकल आये हैं। लाखों व्यक्तियों की हत्या कर पाकिस्तानियों ने बांगला देश को विशाल कब्रगाह बना दिया है।"

'अंतिम विजय हमारी होगी'

क्या इस हत्याकांड और अत्याचार का मुकाबला करने में बांगला देश समर्थ है ?

"यह तो स्पष्ट ही है कि इतने भीषण अत्याचारों के बावजूद, शस्त्रास्त्रों की

बहुत-बहुत कमी होने के बावजूद बांगला देश लड़ रहा है, क्योंकि यह लड़ाई किसी एक राजनीतिक दल की लड़ाई नहीं है, यह साढ़े सात करोड़ बंगालियों की, अपने स्वाभिमान की रक्षा की, मनुष्य की तरह जीवित रहने की लड़ाई है। इसे शस्त्रबल से दबा देना असंभव है। हम लोग लड़ते रहेंगे और तब तक लड़ेंगे, जब तक हमारी पूर्ण विजय नहीं हो जाती। शेख मुजीबुर्रहमान के नेतृत्व में सारी जाति ऐक्यबद्ध होकर लड़ रही है अतः अंतिम विजय हमारी होगी।"

मैं देख रहा था कि उनके सचिव बार-बार उन्हें अन्य व्यक्तियों के साथ लिये गये समय की याद दिला रहे थे, अतः मैंने आखिरी सवाल पूछा।

इस संघर्ष के प्रति भारत के रवैये के बारे में आपकी क्या राय है? भारत से आपकी अपेक्षाएँ क्या हैं?

"भारतीय हम लोगों के लिए जो कर रहे हैं, उसकी प्रशंसा करने के लिए उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करने योग्य शब्द मेरे पास नहीं हैं। बांगला देश के लिए भारत ने जो किया है, वह इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जायेगा।

संपूर्ण भारत ने हमें नैतिक समर्थन दिया है। भारतीय संसद ने सर्वसम्मति से हमारे मुक्तियुद्ध के समर्थन का प्रस्ताव पारित कर हमें बहुत बड़ा साहस बँधाया है। हमारे लाखों शरणार्थियों को अपने भाइयों की तरह स्वीकार कर प्रेमपूर्वक उनकी देखभाल की है, दवादारू की है, आवश्यक सहायता दी है, दुनिया के अन्य देशों में भी हमारे पक्ष में जनमत तैयार करने में सहायता दी है। कूटनीतिक स्तर पर भी राष्ट्र संघ में वह हम लोगों की समस्या की ओर अन्य देशों का ध्यान आकृष्ट कर रहा है। भारत ने हमारे उद्देश्य का पूरी तरह समर्थन किया है। हमारा विश्वास है कि कुछ राजनीतिक उलझनों के दूर होते ही भारत सरकार हम लोगों को राजनीतिक मान्यता देगी। मैं अपने देशवासियों की ओर से भारतीय जनता के प्रति प्रीति और आंतरिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ और सब प्रकार की सहायता की अपेक्षा करता हूँ।"

उठते-उठते मैंने उनसे पूछा कि यदि आपको आपत्ति न हो, तो मैं आपके परिवार से भी कुछ बातचीत कर लूँ। उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक मेरी बात मान ली।

बेगम हुसेन अली बहुत ही भावुक और स्पष्टवक्ता महिला हैं। परिचय के बाद जब मैंने उन्हें 'धर्मयुग' के 'बांगला देश विशेषांक' के बारे में बताया, तो

वे बहुत भावावेश में बोलीं कि भारतीय जनता और पत्र-पत्रिकाएँ हम लोगों के मुक्ति युद्ध को जिस प्रकार अकुंठ समर्थन दे रही हैं, उससे हम उनके बहुत कृतज्ञ हैं। मेरे हाथ से 'धर्मयुग' के १८ अप्रैल का अंक लेकर उसमें मुद्रित बांगला देश पर पाकिस्तानी अत्याचार के चित्र देखते-देखते वे भाव-विह्वल हो गयीं और बोलीं, "ओह ! इनको मैं नहीं देख सकती। कितना अत्याचार किया है पाकिस्तानियों ने बंगालियों पर। मैं बंगाली हूँ—खांटी (शुद्ध) बंगाली ! मेरा देश बांगला देश है, पाकिस्तान नहीं।"

अब कोई समझौता नहीं हो सकता !

इस लड़ाई के बारे में आपकी क्या राय है ?

"देखिए, मैं माँ हूँ। माँ की तरह ही सोच सकती हूँ। कितने कष्ट से माँ-बाप बच्चों को बड़ा करते हैं। पाकिस्तानी पशुओं की तरह बंगाली बच्चों की हत्या कर रहे हैं···यह सुन-सुन कर मेरा कलेजा काँप उठता है। यहिया खाँ बंगालियों के खून से खेतों को सींचेगा, बंगालियों के हाड़-मांस की खाद देगा और इस तरह जूट और चाय पैदा कर विदेशों में बेचेगा। उस रुपये से गोला बारूद, बंदूक और हवाई जहाज खरीदेगा और उन्हीं शस्त्रों से बंगालियों की हत्या करेगा।"

क्या पाकिस्तानियों के साथ अब भी मिल कर आप लोग रह सकते हैं ?

"कभी नहीं। माँ की गोद से छीन कर बच्चों का खून करने वाले ये पाकिस्तानी क्या मनुष्य हैं ? इनके साथ अब कोई समझौता नहीं हो सकता। हम स्वतंत्र हो कर ही दम लेंगे।"

क्या व्यक्तिगत रूप से आपको भी पाकिस्तानियों के दुर्व्यवहार का शिकार होना पड़ा है ?

"हाँ, कई बार। असल में पाकिस्तानी बंगालियों को अपने बराबर मानते ही नहीं। वे हमेशा उन्हें छोटी जाति का मान कर उनके साथ अपमानपूर्ण व्यवहार करते रहे हैं। मुझे एक घटना याद आ रही है। मैं अपने पति के साथ एक बार कराची में घड़ी का बैंड लेने गयी थीं। मेरी उर्दू सुनकर दूकानदार ने पूछा, 'क्या आप बंगाली हैं ?' मैंने कहा, 'हाँ।' वह बोला, तो आप मिस्कीनों (गरीबों) के मुल्क की हैं।" मैं तो गुस्से से लाल हो गयी। मैंने कहा मेरे देश के जूट और चाय का रुपया खा पी कर ही तुम लोग बड़े आदमी बने हो और हमीं लोगों को गरीब कह कर दुरदुराते हो। मेरे पति ने जब झगड़ा न बढ़ाने के लिए मुझसे कहा, तो मैंने कहा कि यह झगड़ा

व्यक्तिगत झगड़ा नहीं, जाति के अपमान का—जाति के सच्चे परिचय का झगड़ा है। उस समय मेरे पति ने कहा था कि एक दिन आयेगा, जब हम स्वाभिमान के साथ अपना परिचय दे सकेंगे। आज वह दिन आया है, जब मैं दिल खोल कर अपनी बात कह सकती हूँ और इसके लिए मैं प्रसन्न हूँ।"

क्या आप अपने पति के इस साहसपूर्ण कदम का समर्थन करती हैं ?

"ओह ! पूरी तरह से मैं अपने पति के साथ हूँ। सच तो यह है कि अपने पति के इस महत्त्वपूर्ण कार्य से मैं गौरवान्वित हुई हूँ। तेइस वर्षों की नौकरी की लांछना और अपमान सहने के बाद आज मैं आनंदित हूँ कि अब हम किसी पंजाबी के गुलाम नहीं हैं। स्वतंत्रता की वर्षा से मेरा मन-प्राण शीतल हो गया है। मुझे इसमें कोई संदेह नहीं कि इस लड़ाई में जीत बंगालियों की ही होगी।"

बेगम हुसेन अली की बंगला आश्चर्यजनक रूप से संस्कृतनिष्ठ थी। उनकी वेशभूषा, भाषा, बोलचाल और व्यवहार में मुझे बंगाली संस्कृति के उत्कृष्टतम रूप की झलक मिली।

हुसेन अली परिवार की नयी पौध से तो मैं काफी देर तक बातचीत करता रहा। इनमें सबसे बड़ी है जौली, करीब बीस वर्ष की, फिर यास्मिन, लगभग १७ वर्ष की और हसन आठ-नौ वर्ष का। इन भाई-बहिनों के उत्ते-जित, दृढ़प्रतिज्ञ, प्रतिशोधपरायण स्वर से बांगला देश की नयी पीढ़ी के मिजाज का कुछ-कुछ अहसास मुझे हुआ। सबसे ज्यादा बात-चीत की जौली ने, यास्मिन बीच-बीच में आवश्यक टिप्पणी करती जाती थी। नन्हा हसन उत्साह भरे शब्दों में सबको टोक कर अपना क्षोभ प्रकट करता था ! ऑस्ट्रेलिया में काफी समय तक रहने के कारण इनकी बोलचाल पर अंग्रेजी छाप थी, किन्तु बातचीत बंगला में ही हुई।

हम आजाद होंगे !

कराची में रहते समय पाकिस्तानियों का आप लोगों के साथ कैसा व्यव-हार था ?

जौली : पाकिस्तानियों का बंगालियों के प्रति व्यवहार बहुत आपत्तिजनक था। वे बंगालियों को ठिगने, काले, मरियल और बदसूरत कहा करते थे। वे बंगालियों से घृणा करते थे। अतः हम लोग ज्यादातर अपने घर में ही रहते थे या बंगाली परिवारों के साथ ही मेलजोल रखते थे।

यास्मिन : हम लोग चेष्टा करते थे कि हमारा उनसे भाईचारा बढ़े, किन्तु वे हमारी खिल्ली उड़ाते थे। हमें बराबरी का दर्जा नहीं देते थे। पाकिस्तान

कभी एक राष्ट्र नहीं बन सका और अब तो बनने का कोई सवाल ही नहीं उठता। अब हम उनसे बहुत घृणा करते हैं। उन्हें अपना दुश्मन मानते हैं। अपने भाइयों, बहिनों की लाशों पर हम उनसे दोस्ती कैसे कर सकते हैं?

हसन अली : पाकिस्तानी सब मामलों में बंगालियों को पीछे ढकेलते रहे हैं। अब हम उनके नीचे कभी नहीं रहेंगे। हम आजाद होंगे।

भारत के प्रति आप लोगों की क्या धारणा है?

जौली : हमें बचपन से ही स्कूलों में और पत्र-पत्रिकाओं द्वारा यही समझाया जाता था कि भारत हमारा दुश्मन नंबर एक है। आज हमने अनुभव किया कि भारत ही हमारा सबसे बड़ा मित्र है। हमारे संकट के समय हमारी सबसे अधिक सहायता उसी ने की।

यास्मिन : हमारा सबसे बड़ा दुश्मन तो पाकिस्तान है। वह शुरू से हमारे साथ दुश्मनी करता रहा है। पिछले भयंकर तूफान के समय, जिसमें लाखों बंगाली काल के गाल में समा गये, पाकिस्तान ने हमारी कोई ठोस मदद नहीं की। केवल दिखावे के लिए ऊपर-ऊपर से मदद की बातें करता रहा। दुनिया के दूसरे देशों ने जो सहायता की सामग्री भेजी, उसका अधिकांश भाग भी पाकिस्तान वालों ने हथिया लिया।

जौली : यहाँ तक कि हमारी मदद के लिए विदेशों ने उस समय जो हेलिकॉप्टर भेजे थे, उन्हीं से वह हमारे विरुद्ध फौजी कार्रवाई कर रहा है। उसने हमारे विश्वविद्यालयों को नष्ट कर दिया है, हमारे कल-कारखाने नष्ट कर दिये हैं, हमारे नेताओं और नौजवान साथियों को मार डाला है। निश्चय ही हमारा सबसे बड़ा दुश्मन पाकिस्तान है।

इस लड़ाई के फलाफल के बारे में आप लोगों की क्या धारणा है?

जौली : हम लोग जरूर जीतेंगे। अपनी जनता के बल पर, एकता के बल पर, शेख मुजीब के नेतृत्व के बल पर हम जरूर जीतेंगे।

यास्मिन : किन्तु हम चाहते हैं कि बड़े और न्यायप्रिय देश हमारी मदद करें, ताकि नरसंहार कम हो।

'जय बांगला!' के अभिवादन के साथ हम लोगों की बातचीत इस विश्वास के साथ पूरी हुई कि बांगला देश की तरुणाई, लड़ाई जीतने के लिए कृत-संकल्प है।

६.

मुक्ति योद्धाओं के शिविर में

'हाल्ट'।

हमलोगों की पिक अप जीप की हेड लाइट की भरपूर रोशनी में तनी हुई संगीन चमक उठी। झटका खाकर जीप रुक गयी। कैप्टेन रशीद खड़े हुए, उनको देखते ही संतरी ने सलाम ठोंका। दरवाजा खुला और हमलोगों ने मुक्तियोद्धाओं के शिविर में प्रवेश किया।

कलकत्ते से २०० मील दूर उत्तरी बांगला देश के किसी अंचल में अवस्थित उस शिविर के जवानों से मिलने के लिए एक जीप और दो मोटरों में हम लोग १६ मई को सुबह साढ़े नौ बजे कलकत्ते से रवाना हुए थे, हमलोग यानी कलकत्ता विश्वविद्यालय बांगला देश सहायक समिति के मंत्री प्रो० दिलीप चक्रवर्ती, मैं, विश्वभारती के तीन प्राध्यापक, दो अध्यापिकाएँ, दो समाज सेविकाएँ और बांगला देश मिशन के एक विशिष्ट प्रतिनिधि। अपने देश की जनता की आन्तरिक सहानुभूति के प्रतीक के रूप में हम लोग काफी असामरिक सामग्री उन्हें भेंट देने के लिए ले गये थे। जेठ की तपती दुपहरी और लम्बी यात्रा ने तन को थका तो दिया था किन्तु मन उत्साह से भरा था जब हम लोग कुछ अनिवार्य कारणों से रुक-रुक कर साँझ के समय सीमा पर पहुँचे। सीमावर्त्ती भारतीय अधिकारियों के स्नेह-सौजन्य सहयोग को तो हमने स्वीकारा किन्तु चायपान के चक्कर में नहीं पड़े। मार्गदर्शक मिलते ही हमलोग आगे बढ़े।

साढ़े सात के करीब हम लोग बांगला देश की मुक्ति फौज के स्थानीय अधिकारी कैप्टेन रशीद के छोटे से प्रशासनिक शिविर में पहुँचे। कैप्टन ने बड़े प्रेम से हम लोगों का स्वागत किया। पहले वे पाकिस्तान की रेगुलर आर्मी में थे। फिर पूर्वी बंगाल के किसी सैन्य प्रशिक्षण केन्द्र में थे। उत्तरदायित्व का बोध और संघर्ष का संकल्प उनके चेहरे पर स्पष्टतः अंकित था। पाकिस्तानी फौज से हुई कई मुठभेड़ों का नेतृत्व वे कर चुके थे। आधुनिकतम

शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित पाकिस्तानी पाशविक सैन्यबल के सम्मुख उनकी टुकड़ी टिक नहीं पाई किन्तु दुश्मन को उन्होंने करारी चोटें पहुँचायी थीं। उनकी कर्मठता और योग्यता का सबसे बड़ा प्रमाण यही था कि अत्यन्त प्रतिकूल परिस्थितियों में भी उन्होंने अपनी टुकड़ी को बिखर जाने से बचाया था और एक लम्बे युद्ध की आवश्यकताओं के अनुसार अब नये सिरे से उसका पुनर्गठन कर रहे थे। लड़ाई की कठोरता ने उनके चेहरे को सख्त बना दिया था किन्तु अब भी वे हँस सकते थे। मुझे सबसे ज्यादा हैरानी यह देख कर हुई कि तीस-पैंतीस मिनट की बातचीत में उन्होंने कोई शिकायत नहीं की न भाग्य की, न नेतृत्व की, न सामग्री के अभाव की। जो नहीं हो सका, वह क्यों नहीं हो सका ? इसके बारे में हवाई तर्क करने और दूसरों को दोष देने की सामान्य मानवीय दुर्बलता उनमें नहीं दिखी। राजनीतिक चर्चा में भी उन्होंने कोई रुचि नहीं दिखाई। हमारे एक साथी ने जब बांगला देश की विभिन्न राजनीतिक पार्टियों में व्याप्त मतभेदों की चर्चा करते हुए कुछ की आलोचना शुरू की तो उन्होंने उस प्रसंग को बन्द करते हुए कहा, "मैं सिपाही आदमी हूँ। इतना जानता हूँ कि पाकिस्तानियों ने तेईस सालों तक लगातार मेरे देश का शोषण किया है, हमें गुलाम बनाकर रखा है। इस लड़ाई में उन्होंने जिस विश्वासघातकता तथा पशुता का परिचय दिया है, उससे यह साफ है कि वे हमारे देश को अपने कब्जे में रखने के लिए नीचता की किसी सीमा तक जा सकते हैं। इसका एक ही जवाब है जीतने तक युद्ध करते जाना। इन परिस्थितियों में लड़ाई कैसे चल सकती है ? कैसे सफल हो सकती है ? मेरी समस्या यही है। राजनीतिक दांवपेंच मैं नहीं जानता। उसके लिए आप इनसे (बांगला देश मिशन के प्रतिनिधि) से बातचीत कीजिये।" इस दो-टूक उत्तर ने मुझे जीत लिया। बंगाली अल्पभाषी भी हो सकता है और राजनीति-चर्चा-विरत भी, यह मेरे लिए नयी अभिज्ञता थी। इस युद्ध से बल्कि शेख मुजीब के पूरे आन्दोलन से पूर्व बंगाल के लोगों में नयी चेतना का उदय हुआ है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

हम लोग इधर बात चीत कर रहे थे, उधर वीणा दी मीना जी सूची से मिला मिलाकर सब सामग्री क्वार्टर मास्टर को सम्हला रही थीं। बातचीत के मध्य हमें पता चला कि जहाँ हम थे, उसके इर्द-गिर्द ही दो शिविर और थे, एक नये रंगरूटों का, दूसरा पुराने ई० पी० आर० के उन जवानों का जो लड़ाई में हिस्सा ले चुके थे और अब भी ले रहे थे। नये रंगरूट मुख्यतः विस्थापित छात्रवर्ग के थे और अभी उनकी संख्या पचास के करीब थी। उन्हें सैनिक शिक्षा दी जा रही थी। पुराने जवानों की संख्या २५० के करीब थी

और अब उन्हें विशेष रूप से गुरिल्ला युद्ध के लिए प्रशिक्षित किया जा रहा था। स्वभावतः हम लोगों ने उनसे मिलने की इच्छा प्रकट की। कैप्टेन मुस्कुराये, बोले, अच्छा आप लोग इतनी दूर से चले आ रहे हैं, थोड़ा सुस्ता लीजिये और नाश्ता कर लीजिए फिर मैं आप लोगों को ले चलूंगा। नास्ते पर हम लोगों ने आपत्ति की, पर कैप्टेन नहीं माने, बोले, आप लोग हमारे मेहमान हैं, दोस्त हैं, हम लोगों के लिए इतनी चीजें लाये हैं, यह कैसे हो सकता है ? कि हम लोग आप लोगों की खातिर न करें।

जवानों का शिविर उस स्थान से करीब डेढ़-दो मील दूर था। रास्ता कच्चा और खराब था, अतः हम लोगों की दोनों गाड़ियाँ वहीं रहीं। मुक्ति-फौज की बड़ी पिकअप जीप आगे-आगे और अपनी जीप पीछे-पीछे चलीं। मैं कैप्टेन के साथ अगली जीप में था। कैप्टेन के साथ स्टेनगन लिये उनका अंगरक्षक भी था।

चाँद अभी तक नहीं निकला था। घोर निस्तब्धता और घने अंधेरे के बीच उस ऊबड़-खाबड़ रास्ते पर दौड़ रही थीं दो जीपें, जिनकी हेडलाइटें अंधेरे को चीर कर प्रकाश के झरने के समान झर रही थीं। ऊपर तारों भरा निर्मल आकाश था। कलकत्ते के धूल और धुएँ से भरे आकाश में इतने तारे कहाँ दिखते हैं और यह हवा—यह उन्मुक्त प्राकृतिक विस्तार। सामने से कोई जन्तु दौड़ गया ब्रेक के झटके ने विचारधारा को भी झकझोर दिया। लगा ऐसा ही अँधेरा बांगला देश के ऊपर भी छा गया है, क्या वह दूर होगा ? और तभी मेरे मन में कौंध गयीं नसीमुन आरा की पंक्तियाँ "ए आंधार कूलप्लावी कत क्षण डूबे, तिमिर हननेर गान आमार कंठे···" (किनारों को डुबा देनेवाला यह अंधेरा टिक सकेगा कितनी देर, अंधेरे को चीर देनेवाला गान है मेरे कंठ में···कैप्टेन रशीद और उनके साथी अंधेरे को चीर देने की साधना में ही तो लगे हैं। तभी संतरी की आवाज सुन कर मैं भावजगत से फिर वस्तु जगत में आ गया।

एक बड़ा सा मैदान, जिसके बीचोबीच विशाल बरगद का पेड़, दो तरफ फौजी छावनी। हम लोगों की जीपें अहाते में घुसीं तो जवान बाहर निकल आये। बांगला देश मिशन के जो प्रतिनिधि हम लोगों के साथ आये थे, वे जवानों को सम्बोधित कर कुछ कहने वाले थे अतः कैप्टेन ने उन्हें करीने से व्यवस्थित कर बैठा दिया। रास्ते के पड़ावों में हम लोग रवीन्द्रनाथ के देश भक्ति मूलक गीत गाते और कविताएँ सुनते, सुनाते आये थे। अतः स्वाभाविक था कि हम लोगों से जवानों को गीत, कविता आदि सुनाने का अनुरोध किया जाता। हम लोगों ने प्रसन्नतापूर्वक इसे स्वीकार कर लिया।

चारों तरफ के अँधेरे से जूझती हुई चार लालटेनें, इधर-उधर के संतरियों की बीच-बीच में चमक उठने वाली टार्चें, बरगद के पेड़ के नीचे दो मेजें, कुछ कुर्सियाँ, सामने व्यूहबद्ध ढाई सौ मुक्तियोद्धा। कुल मिलाकर रहस्यपूर्ण रोमांचक वातावरण। सेकेंड इन कमांड ले० टुन्नूमियाँ उस फौजी-सांस्कृतिक कार्यक्रम का संचालन कर रहे थे। उन्होंने घोषणा की सबसे पहले बांगला देश का राष्ट्रगीत गाया जायेगा। पार्थ, जिष्णु दे मीना जी तथा अन्यों के परिशीलित, सुरीले शान्तिनिकेतनी स्वर गूँजे, "आमार सोनार बांगला, आमी तोमाय भालोवासी।" जवानों के साथ-साथ हम सब 'सावधान' की मुद्रा में खड़े हो गये। ओ मेरे सोने के बंगाल, मैं तुम्हें प्यार करता हूँ। देश को कैसे प्यार किया जाता है? क्या देश प्रेम केवल जबानी जमा खर्च है? नहीं, नहीं देश की प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए अपना जीवन, अपना सब कुछ बलिवेदी पर चढ़ाने के लिए जो तत्पर न हो, उसे क्या हक है कहने का कि 'ओ मेरे देश, मैं तुम्हें प्यार करता हूँ।' मेरे सामने जो लोग खड़े थे उन्होंने अपना सब कुछ होम दिया था और अब प्राणों को हथेली पर लिये दुश्मन से जूझने को, उसे मार भगाने को कटिबद्ध थे। हाँ, उन्हें हक है कि ये कहें 'आमार तोमार बांगला, आमी तोमाय भालोवासी।'

फिर मेरा नाम पुकारा गया, परिचय देने के बाद मुझसे कहा गया कि मैं बांगला देश की नयी संग्रामी कविताएँ सुनाऊँ। कविताएँ सुनना, सुनाना मेरा नशा है किन्तु उतनी तन्मयता से मैंने शायद ही कभी कविताएँ सुनायीं हों। पहले सुनाई सिकन्दर अबू जफर की कविता 'आमादेर संग्राम चलबेइ'। 'अँधेरी कब्रग्राह में उषा के बीज' बोने वालों का दृढ़ संकल्प व्यंजित हुआ है, उस कविता में। मैंने उसका हिन्दी अनुवाद भी किया है, उसकी आरंभिक पंक्तियाँ हैं, 'दी तो है शान्ति, देंगे अब स्वस्ति भी। दे चुके संभ्रम, देंगे अब आस्थि भी। प्रयोजन हुआ तो देंगे नदी भर रक्त। हो लें पथ बाधा के पत्थर और सख्त। अविराम यात्रा के लिए चिर संघर्ष से। एक दिन पहाड़ वह टलेगा ही। चलेगा ही, चलेगा ही, संग्राम यह चलेगा ही।" कविता शेष हो गई लेकिन मुझे लगा कि श्रोताओं की प्यास बुझी नहीं है। मैंने दूसरी कविता सुनायी नसीमुन आरा की 'तिमिर हननेर गान आमार कंठे, आमार हाते इ चाबी आवामी दिनेर' किसी बड़े उद्देश्य को जब कोई कवि अपनी सम्पूर्ण भावात्मक सत्ता द्वारा स्वीकार कर लेता है, तो उसका स्वर कितना उदात्त हो जाता है। सिकन्दर और नसीमुन दोनों अभी छात्र ही हैं किन्तु ये कविताएँ कितनी वजनदार हैं, कितनी धारदार हैं। मेरा काव्य-पाठ ज्यों ही

समाप्त हुआ, स्वतः स्फूर्त तालियों की गड़गड़ाहट से परिवेश गूँज उठा। मुझे खुशी हुई कि जवानों ने इन कविताओं को पसन्द किया।

बांगला देश मिशन के प्रतिनिधि ने अपने संक्षिप्त किन्तु तेजस्वी भाषण में कहा कि लड़ाई चालू है और आखिरी जीत तक चालू रहेगी। जीत हमारी होगी ही क्योंकि हमारी सारी जनता इस शोषण और गुलामी का अन्त करने के लिए कटिबद्ध है। अत्याचारी फौजी ताकत की जीत क्षणिक होती है। सारी जनता हमारे साथ है। हम संकट के इन क्षणों में अपने धैर्य, साहस और युद्ध कौशल का प्रमाण दें। हमने अब सीधी लड़ाई की जगह गुरिल्ला लड़ाई लड़ने का फैसला किया है। हमारे छापेमार दस्ते आज भी काम कर रहे हैं और अगले कुछ महीनों में हमारी मार और तेज हो जायेगी। याद रखें, हमारी लड़ाई राष्ट्रीय स्वतंत्रता की लड़ाई है, जाति के जीवन को बचाने की लड़ाई है। दुश्मनों के दलालों और फूट डालने वाले राजनीतिक नारों से सावधान रहें। देश को आजाद करने के लिए शेख मुजीब के नेतृत्व में हमने राष्ट्रीयता का बिगुल फूँका है। चरम बलिदान देकर भी हम अपने लक्ष्य को प्राप्त करेंगे ही। जय बांगला। उनके व्याख्यान का समर्थन जवानों ने पुनः तालियों की गड़गड़ाहट द्वारा किया। उसके बाद कैप्टेन रशीद ने हम लोगों के प्रति आभार प्रकट किया।

पार्थ और मीनाजी ने समापन संगीत गाया 'बांध भेंगे दाओ, बांध भेंगे दाओ, भांगो।' तोड़ दो यह बांध, सूखे नद में जीवन की बाढ़ का उद्दाम कौतुक आये, जीर्ण, पुरातन बह जाये···हम लोगों ने किसी नवीन की पुकार सुनी है, मत डरो, मत डरो, अब हम किसी अज्ञात से भय नहीं करते, उसके बन्द द्वार की ओर हम दुर्दान्त वेग से दौड़ रहे हैं और तोड़ देंगे उसे··· भांगो···। शेख मुजीब के सांस्कृतिक प्रेरणास्रोत रवीन्द्रनाथ की भावधारा का कितना योग है इस मुक्ति संघर्ष में, अभी इसका अन्दाज भी नहीं लगाया जा सकता।

जवानों के अनुरोध पर 'आमार सोनार बांगला' फिर गाया गया और उसके बाद कार्यक्रम समाप्त हो गया।

साढ़े दस बज चुके थे। पर हम लोगों के लिए चाय आयी, केवल एक-एक प्याली चाय, पर उसमें स्नेह और कृतज्ञता की ऐसी मिटास भरी थी कि वह अमृत जैसी लग रही थी। मैं अपनी प्याली हाथ में लिये जवानों के बीच चला गया। पाकिस्तानी फौज की दगाबाजी और खूँरेजी की कहानियाँ सबके

ओंठों पर थीं। किसी का भाई उनका शिकार बना था, किसी की बहिन, किसी का कोई और···। उनकी आँखों में क्रोध और घृणा की जो आग भरी हुई थी वह पाकिस्तानी फौजी तानाशाही को भस्म करने के इरादे से लहक रही थी। मैंने अपनी आँखों से उसे देखा है। मैं कैसे उस पाकिस्तानी प्रचार पर विश्वास कर सकता हूँ कि गदर दबाया जा चुका है और अब पूर्वी पाकिस्तान में अमन चैन है। या उन निराशावादियों की बात को कैसे मान सकता हूँ? कि लड़ाई हारी जा चुकी है और अब कुछ नहीं हो सकता। मैं उनकी तरह भविष्य वक्ता नहीं हूँ, पर इतना जरूर जानता हूँ कि लड़ाई चल रही है, कि मुक्तियोद्धाओं का मनोबल बहुत ऊँचा है, कि बांगला देश सरकार का नेतृत्व बदलती हुई परिस्थियों में अपने फौजी दस्तों और राजनीतिक कार्य-कर्ताओं के पुनर्गठन और प्रशिक्षण के कार्य पर जोरों से जुटा हुआ है तथा अपने इस काम में उसे काफी हदतक सफलता मिली है कि जिस तरह के शिविर में उस समय हम लोग थे, वैसे बीसियों शिविर बांगला देश के सीमावर्ती अंचलों में लगे हुए हैं और उनकी संख्या बढ़ रही है। यह जानकारी मुझे आश्वस्त करती है और प्रेरित करती है कि इस सच्चाई को मैं सबके सामने रख दूँ।

× ×

हम लोग प्रशासनिक शिविर की ओर लौटे। कैप्टेन रशीद अब अधिक आत्मीयता से बातें कर रहे थे। मैं उनसे पूछ बैठा कि आपने इसे 'ट्रेनिंग कैम्प' से भिन्न 'आपरेशन कैम्प' की संज्ञा दी है, तो यह तो बताइये कि अब तक आप लोग क्या 'आपरेशन' (फौजी कारवाई करते रहे हैं और भविष्य में आपकी क्या योजना है। उनके ओठों पर भेदभरी मुस्कुराहट आ गयी और वे कुछ समय तक मुझे देखते रहे, फिर बोले अभी तक मुख्यतः हम लोग अपने जवानों को गुरिल्ला युद्ध के कौशल सिखाते रहे हैं, पर अब हमने प्रतिदिन दो जत्थे भेजने शुरू किये हैं, जो हर रात को दुश्मन के ठिकानों पर हमला करते हैं, उनके दलालों और समर्थकों का सफाया करते हैं। आज सुबह ही जो दस्ता लौटा है उसने कामयाबी के साथ राजशाही पुलिस लाइन्स पर हथगोले बरसाये थे। उनके हताहतों की संख्या का ठीक पता नहीं चला है किन्तु वह निहायत कम नहीं होगी। कुछ रुककर निश्चय भरे स्वर में वे बोले—तीन, चार महीने और जाने दीजिये, फिर देखियेगा कि केवल सीमावर्ती अंचलों में ही नहीं, बांगला देश की समस्त भूमि पर हमारी लड़ाई किस जोशोखरोश के साथ चालू हो जाती है। अभी मैं और क्या कहूँ?

अपने शिविर पहुँच कर कैप्टेन ने फिर एक बात पर हम लोगों को धन्यवाद दिया। मैं अपने साथ धर्मयुग के बांगला देश विशेषांक की एक प्रति ले गया था जो मैंने उन्हें भेंट की और चाहा कि यदि कोई मुद्रित या लिखित साहित्य उनके पास हो तो मुझे दें। वे बोले हम लोग अभावों के बीच जी रहे हैं, न हमारे पास यथेष्ट शस्त्रास्त्र हैं, न दवाइयाँ, न पैसा ही। इसलिए हम अभी तक अपना साहित्य मुद्रित, प्रकाशित नहीं कर पाये हैं। हम जानते हैं कि इसकी बहुत जरूरत है, हम इसकी योजना भी बना रहे हैं पर अभी तो मैं आपको एक छोटे से पर्चे के अतिरिक्त और कुछ नहीं दे सकूंगा। यह पर्चा हमने बड़ी संख्या में बांगला देश की सामान्य जनता में बांटा है। मैंने आग्रहपूर्वक उस पर्चे की माँग की। वे भीतर गये, दो कागज लिये हुए बाहर आये और मुझे देते हुए बोले, 'लीजिये, यह तो वह छपा हुआ पर्चा है और यह है हम लोगों के दैनिक प्रशिक्षण का कार्यक्रम। इससे आप समझ सकेंगे कि हम लोग दिन के समय क्या करते हैं ? रात की कार्रवाई का कुछ संकेत तो मैं आपको दे ही चुका हूँ।'

बिदा का क्षण आया। दोनों हाथों से कैप्टेन का दाहिना हाथ दबाते हुए मैंने कहा, 'भगवान ने चाहा तो हम लोग फिर मिलेंगे, यहाँ भी और ढाका में भी।' 'मृत्यु की भर्त्सना दिन-रात हम ढोते हैं' के अन्दाज में वे मुस्कुराये और बोले 'जय बांगला'। हम सब ने दुहराया 'जय बांगला।'

× × ×

मेरे सामने उनके दिये हुए दोनों कागज पड़े हैं। एक है सुबह साढ़े पाँच से रात के दस बजे तक का व्यस्त सैनिक कार्यक्रम। गुरिल्ला योद्धाओं को विस्फोटकों, मार्टरों, मशीनगनों, हथगोलों आदि का प्रयोग तो सिखाया ही जाता है, सामाजिक एवं राजनीतिक नेतृत्व की उनकी क्षमता के विकास पर भी पूरा जोर दिया जाता है। ध्वंस और निर्माण दोनों साथ-साथ ही तो चलते हैं।

दूसरा कागज अपने देश की जनता के प्रति किया गया मुक्ति योद्धाओं का निवेदन है, जिसमें उन्होंने अपने स्वरूप और लक्ष्य को स्पष्ट किया है। इसका प्रकाशन तब हुआ था जब बांगला देश के मुख्य नगरों और यातायात के साधनों पर उनका अधिकार था। आज स्थिति बदल गयी है, फिर भी उनका मौलिक स्वरूप और लक्ष्य तो नहीं बदला है। अतः उनके बलिदानी प्रयास की सफलता की कामना करते हुए मैं यह उचित समझता हूँ कि उनकी बात का मुख्य अंश उनके ही शब्दों में आप तक पहुँचा दूँ।

हम मुक्तियोद्धा

हम स्वाधीनता और गणतंत्र के विश्वासी हैं। मनुष्य की तरह जीना चाहते हैं। इसीलिए हम संग्राम कर रहे हैं। हम बांग्ला देश में जुल्मबाजी नहीं चाहते। हम संत्रासपूर्ण शासन से मुक्ति चाहते हैं, इसीलिए हम संग्राम कर रहे हैं। जिस दिन तक हम साढ़े सात करोड़ बंगाली स्वाधीन बांगला देश के नागरिक नहीं बन जाते उस दिन तक यह संग्राम शेष नहीं होगा।

शान्ति और गणतंत्र के शत्रु हमारी स्वाधीनता की आकुलता को कुचल देना चाहते हैं किन्तु वे पूर्णतः पराजित होंगे ही (हम लोगों की जय सुनिश्चित है)।

मुक्तियोद्धा आप लोगों के समर्थन की कामना करते हैं। प्रत्यक्ष संग्राम में योग देना यदि आपके लिए संभव न हो, तो भी दूसरी तरह से सहायता करने के और बहुत से रास्ते खुले हैं।······शान्ति, स्थिर रहें, मन मजबूत रखें। स्वाधीनता हम लोगों का जन्मगत अधिकार है। हम लोगों की जय होगी ही जय बांगला !

७.

चारों तरफ मुँह बाये खड़ी मृत्यु

कल और आज दो दिन मैं विभिन्न शरणार्थी शिविरों में घूमता रहा। स्थिति असह्य है। हम लोग क्रमशः अमानवीय होते जा रहे हैं। दूसरों के दुःख-कष्ट हम लोगों को बहुत कम, नहीं के बराबर छूते हैं। कल साठ मील प्रति घंटा की रफ्तार से तूफान आया था और उसी के साथ थी प्रचंड वर्षा! हम लोगों ने देखा कि हजारों व्यक्ति पेड़ों तले या खुले में चटाई ओढ़े भींग रहे थे···जो भाग्यवान (हाँ, उन्हें भाग्यवान ही कहना पड़ेगा।) शिविरों में या झोपड़ियों में स्थान पा सके थे उनकी स्थिति भी अच्छी नहीं थी, क्योंकि नीचे पानी जमा हो गया था। 'दुःख वर्षा में आयी वर्षा, चिथड़े भी ये भींग चले' एक कविता की पंक्ति है किन्तु इससे कहीं करुण दृश्य मैंने कल देखे हैं—अभाव, थकावट, बीमारी, अरक्षित भविष्य···चारों तरफ मुँह बाये खड़ी मृत्यु और उसके कठोर पाश में छटपटाते लाखों आदमी! यह नहीं कि हम लोगों की सरकार उनकी सहायता नहीं कर रही है, किन्तु यह कि समस्या इतनी विकराल है और हम लोगों की सरकार और जनता दोनों इसके लिए इतनी अप्रस्तुत थीं कि इस बाढ़ में हम लोग अभी तक पाँव जमा कर खड़े नहीं हो पा रहे हैं। कल्पना कीजिए कि दो महीनों के भीतर चालीस लाख से ऊपर आदमी आ गये। आगे से ही आर्थिक दृष्टि से छिन्न-भिन्न पश्चिम बंगाल में! राजनीतिक मतभेदों से जर्जर प्रबुद्ध वर्ग! सरकारी और गैर सरकारी दोनों स्तरों पर बेहद ढिलाई और पराजयकारी मनोवृत्ति थी। फिर भी ऐसा लगता है कि अब बड़े पैमाने पर काम चालू करने के लिए सरकारी तंत्र तैयारी कर रहा है। अंतर्राष्ट्रीय सहायता भी अब आने लगी है।

किन्तु क्या यही इसका जवाब है? जिन बर्बरों ने इस अर्धसफल क्रान्ति का सुयोग (?) उठा कर बांगला देश की विकासमान नयी चेतना को कुचल डालने का पाशविक प्रयास किया है, क्या उन्हें इसी तरह से विफल-मनोरथ किया जा सकता है?

१६. ६. १९७१

बांगला देश की अलख जगाने

वांगला देश के मुक्ति-युद्ध का पहला दौर पाकिस्तानी फौज के वर्बर अत्याचारों के कारण खून और आँसू, आग और धुएँ, वलिदान और दमन की कहानी बन कर रह गया। मई, १९७१ के अन्त तक यह स्पष्ट हो गया कि मुक्ति युद्ध लम्बा चलेगा। बांगला देश के संग्रामी मनोबल को तोड़ देने के लिए नये नादिरशाह टिक्का खाँ ने अवामी लीग, नैप आदि के नेताओं, कार्यकर्ताओं के साथ-साथ बुद्धिजीवियों, प्राध्यापकों, लेखकों, पत्रकारों, कलाकारों आदि को भी अपने रोष का प्रमुख लक्ष्य बनाया। ये ही लोग तो पहले बांगला देश की स्वायत्तता और अब स्वाधीनता के लिए सामान्य जनता को भड़का रहे थे। सामान्य जनता तो आततायी शासकों के मतानुसार पहले सप्ताह के 'कत्ले आम' से ही काबू में आ चुकी थी। उनका ख्याल था कि अब अगर इन सिरफिरों को नेस्तनाबूत और काफिर हिन्दुओं को जलावतन किया जा सके तो फिर इस्लाम के नाम पर पाकिस्तानी हुकूमत सदियों तक बांगला देश में बरकरार रह सकती है। जैसे-जैसे वे अपने शैतानी इरादे को अमल में लाते गये, वैसे-वैसे भारत का आकाश लाखों की संख्या में आनेवाले निःसंबल शरणार्थियों के आर्त्तनाद और हाहाकार से गूंजने लगा।

देश के सभी विचारशील लोगों की तरह ही कलकत्ता विश्वविद्यालय बांगला देश सहायक समिति के कार्यकर्ताओं के सामने प्रश्न था, "इस चुनौती का मुकाबला कैसे किया जाय ?" अपने सीमित साधनों और कार्यकर्ताओं की मनोरचना एवं क्षमता के अनुसार समिति ने निश्चय किया कि मुक्तियोद्धाओं और बुद्धिजीवियों की यथासंभव सक्रिय सहायता के अतिरिक्त भारत और संसार के सभी प्रमुख विश्वविद्यालयों के माध्यम से शिक्षित जनगण के समक्ष बाँगला देश और उसके बुद्धिजीवियों पर किये जा रहे अकथ्य पाकिस्तानी अत्याचार की सही तस्वीर पेश कर बांगला देश के प्रति उनका नैतिक एवं

भौतिक सहयोग प्राप्त करने का उद्योग हमें करना चाहिये। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए बांगला देश के मुक्ति युद्ध पर तथ्य संवलित छोटी-बड़ी कई पुस्तिकाएँ प्रकाशित कर विश्व के सभी प्रमुख विश्वविद्यालयों को भेजी गयीं। बांगला देश से आये हुए विश्वविद्यालय, महाविद्यालय एवं विद्यालय स्तर के शिक्षकों की वर्गीकृत तालिकाएँ वनाकर विभिन्न विश्वविद्यालयों एवं शिक्षा संस्थाओं में उनकी अल्पकालिक नियुक्ति का प्रयास किया गया। देश-विदेश के बहुत से विश्वविद्यालयों से सहायता के साथ-साथ ऐसा शिष्टमंडल भेजने का आमंत्रण भी मिला जो बांगला देश के मुक्ति युद्ध की वस्तुस्थिति को विस्तारपूर्वक बौद्धिकों के समक्ष ठीक-ठीक रख सकें। समिति के कर्मठ एवं सुयोग्य मंत्री प्रो० दिलीप चक्रवर्त्ती पहले से ही इस प्रकार के शिष्टमंडलों को भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयों में भेजने की योजना बना रहे थे, अतः ये आमंत्रण सहर्ष स्वीकार कर लिये गये। निश्चय किया गया कि पहला शिष्टमंडल, अलीगढ़, इलाहाबाद, दिल्ली, आगरा, लखनऊ, गोरखपुर, वाराणसी और पटना जाये। इस शिष्टमंडल के नेता थे चटगाँव विश्वविद्यालय के उपकुलपति डॉ० अजीजुर्रहमान मल्लिक। इसके सदस्य थे चटगाँव विश्वविद्यालय के बँगला विभाग के रीडर डॉ० अनी सुज्जमान, बांगला देश के एम० पी० ए० सुबिद अली (जो केवल अलीगढ़ और दिल्ली में ही शिष्ट मंडल के साथ रह सके), समिति के उपमंत्री प्रो० सौरीन्द्रनाथ भट्टाचार्य, कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्रो० अनिल सरकार, डॉ० अनिरुद्ध राय एवं प्रो० विष्णुकान्त शास्त्री। बन्धुओं की शुभकामनाओं के साथ हम लोग भारत-बांगला-देश की मैत्री को दृढ़ करने वाली इस सद्भावना यात्रा पर १० जून, १९७१ को निकल पड़े।

× × ×

११ जून, १९७१। इलाहाबाद स्टेशन पर इलाहाबाद विश्वविद्यालय के छात्र कल्याण विभाग के डीन श्री रफीक हुसेन तथा इतिहास विभाग के अध्यक्ष श्री ओ० पी० भटनागर ने बड़ी आत्मीयता के साथ हम लोगों का स्वागत किया। भटनागर जी ने ही आग्रहपूर्वक पत्राचार कर शिष्टमंडल को आमंत्रित किया था। हम लोग विश्वविद्यालय के अतिथि भवन में ठहराये गये। भोजन के समय वाइस चांसलर डॉ० भाटिया पधारे। डॉ मल्लिक तथा सभी सदस्य उनके स्नेहपूर्ण व्यवहार से बहुत प्रसन्न हुए।

भोजन के बाद और लोग तो विश्राम की मुद्रा में आ गये किन्तु मैं अपने मित्रों से मिलने-जुलने के लिए निकल पड़ा। दिलीप दा ने कह रखा था कि

विश्वविद्यालय के बाहर के बुद्धिजीवियों, लेखकों, कलाकारों से भी शिष्टमंडल की बातचीत होनी चाहिए और इसकी व्यवस्था की जिम्मेदारी विशेष रूप से मुझे सौंपी गयी थी। कलकत्ते से ही मैं पं० उमाशंकर शुक्ल, डॉ० रघुवंश, डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी श्री अमृत राय आदि को इस शिष्टमंडल के बारे में लिख चुका था। शुक्ल जी को फोन किया तो उन्होंने बताया कि कल सुबह साढ़े नौ बजे हिन्दुस्तानी एकेडेमी की ओर से शिष्टमंडल का स्वागत होगा और उसमें इलाहाबाद के प्रायः सभी प्रमुख बौद्धिक आमंत्रित हैं। कुछ देर रघुवंश जी और रामस्वरूप जी के साथ गपशप की। वे लोग बांगला देश की क्रान्ति के बारे में बहुत आस्थावान् थे। हम लोग साथ-साथ ही विश्वविद्यालय के कार्य-क्रम में पहुँचे।

४ बजे वाइस चांसलर डॉ० भाटिया की ओर से शिष्टमंडल के सम्मान में चाय पार्टी थी। विश्वविद्यालय के अधिकांश विभागाध्यक्ष तथा अधिकारी आये हुए थे। डॉ० मल्लिक का परिचय विशिष्ट विद्वानों से कराया गया। फिर सब लोग दो-दो, तीन-तीन की टुकड़ियों में बँट कर चाय-पान के साथ-साथ बांगला देश की वर्तमान स्थिति आदि के बारे में चर्चा करते रहे। इतिहास विभाग के अध्यक्ष डॉ० गोवर्धन शर्मा एवं अंग्रेजी विभाग के अध्यक्ष श्री यदुपति सहाय से मेरी अच्छी बात-चीत हुई। समागतों में श्री आर० के० नेहरू और उनकी पत्नी श्रीमती राजेन्द्र नेहरू, डॉ० ताराचन्द वगैरह भी थे।

४–३० बजे नार्थ हाल में सभा शुरू हुई। कक्ष खचाखच भरा था। वाइस चांसलर डॉ० भाटिया सभापति थे। उन्होंने अपने स्वागत भाषण में बांगला देश के मित्रों को आश्वस्त किया कि संकट की इस घड़ी में सारा भारत उनके साथ है और यह आशा प्रकट की कि बांगला देश शीघ्र ही स्वतंत्र होगा। डॉ० मल्लिक ने पिछले २३ वर्षों के राजनीतिक विकास के परिप्रेक्ष्य में बांगला देश के शोषण और संघर्ष का इतिहास प्रस्तुत किया और यह संकल्प घोषित किया कि यह लड़ाई स्वाधीनता की लड़ाई है, हम अन्तिम दम तक लड़ेंगे और इन्शाअल्ला अपनी कुर्बानियों से तथा भारत-जैसे मित्र राष्ट्रों की सहायता से स्वतंत्र होकर रहेंगे। बौद्धिकों के सहयोग की कामना करते हुए उन्होंने यह भी कहा कि बांगला देश की स्वतंत्र सरकार को विधिवत् मान्यता मिलनी चाहिए। डॉ० मल्लिक बहुत ही प्रभावशाली और कुशल वक्ता हैं। तथ्यों और तर्कों से परिपूर्ण उनके विषय प्रतिपादन ने श्रोताओं पर गहरी छाप छोड़ी। उनके बाद डॉ० अनीसुज्जमान ने बांगला देश के मुक्ति संघर्ष में बौद्धिकों··विशेषतः प्राध्यापकों की महत्वपूर्ण भूमिका को स्पष्ट करने

के बाद विस्थापित प्राध्यापकों की दुरवस्था का वर्णन किया। सौरीन बाबू ने कलकत्ता विश्वविद्यालय बांगला देश सहायक समिति के कार्यों का संक्षिप्त परिचय दिया और सहायता की अपील की। उनके बाद स्थानीय एम० पी० श्री एस० एन० मिश्र, एडवोकेट बोले। उन्होंने अहम्मन्यतापूर्ण स्वर में बताया कि लोकसभा बांगला देश के प्रश्न को लेकर कितनी चिन्तित है, बजट में हम लोगों ने उसकी सहायता के लिए साठ करोड़ रुपयों की व्यवस्था की है। बांगला देश को मान्यता देने पर विश्वयुद्ध छिड़ जा सकता है, इसीलिए सरकार अभी मान्यता देने के पक्ष में नहीं है। फिर उन्होंने मजाक-सा करते हुए कहा कि यद्यपि मैं विना फीस लिए सलाह नहीं देता तथापि बांगला देश से आये मित्रों को मुफ्त सलाह दूंगा कि वे भारत में न घूम कर अमेरिका, रूस, इंगलैंड आदि देशों में जायें। मुझे उनका अहंकार भरा स्वर बहुत खराब लगा। संयोग से उनके बाद ही मेरा नाम पुकारा गया।

मैं जरा आवेश में ही बोला। श्री मिश्र के दाँवों और भयों को अतिरंजित बताते हुये मैंने कहा कि इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राध्यापकों ने अतीत में भी बहुत से कठिन मौकों पर सरकारी और विरोधी दलों के प्रचार से ऊपर उठकर राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों पर सही बात निर्भीकतापूर्वक कही है। उन्हीं के जाग्रत विवेक से मेरा निवेदन है कि बांगला देश के मुक्ति-संग्राम को पूरी मदद पहुँचाने के अनुकूल वातावरण बनाने में वे सहयोग दें। बांगला देश की नवगठित स्वतंत्र सरकार को विना कूटनीतिक मान्यता दिये हम मुक्ति-योद्धाओं को कोई बड़ी मदद नहीं दे सकते। अतः बांगला देश को मान्यता देना हमारा पहला कर्त्तव्य है और फिर आवश्यकता होने पर सशस्त्र हस्तक्षेप कर बांगला देश से आये लाखों शरणार्थियों को स्वतंत्र बांगला देश में वापिस भेजना हमारा दूसरा कर्त्तव्य है। नहीं तो उनकी बाढ़ में ये साठ करोड़ रुपये ही नहीं, हमारी पूरी आर्थिक प्रगति बह जायेगी। विश्व युद्ध यदि वियतनाम के प्रश्न पर नहीं छिड़ा तो बांगला देश के प्रश्न पर छिड़ेगा, यह सोचना ठीक नहीं है। फिर इस संभावना के भय से हम अपने आर्थिक ढाँचे को चरमराने और सम्मान को धूलिसात् होने तो नहीं दे सकते। हमारा राष्ट्रीय गौरव और हित इसी में है कि स्वतंत्र बांगला देश की प्रतिष्ठा में हम पूरी तरह मुक्ति योद्धाओं का साथ दें। श्रोताओं ने कई बार तालियाँ बजाकर मेरा प्रबल समर्थन किया।

मेरे बाद श्रीमती राजेन्द्र नेहरू बोलीं। उन्होंने बहुत ही मीठी भाषा में हम लोगों की भावनाओं का आदर करते हुए कहा कि भारत सरकार की

धैर्यपूर्ण नीति का अर्थ दुर्बलता कत्तई नहीं है। हम अपने अतिथियों को विश्वास दिलाना चाहते हैं कि अन्ततोगत्वा यदि पाक फौजों का मुकावला करने की स्थिति अनिवार्य हो गई तो हम वह भी करेंगे। बांगला देश को अब अधिक समय तक कोई शक्ति गुलाम बनाकर नहीं रख सकती।

प्रो० भटनागर ने धन्यवाद देते हुए आश्वासन दिया कि इलाहाबाद विश्वविद्यालय के अधिकारी, प्राध्यापक और विद्यार्थी बांगला देश की मुक्ति के लिए और वहाँ के विस्थापित प्राध्यापकों की मदद के लिए अपना पूरा सहयोग देंगे।

सभा बहुत सफल रही। प्राध्यापकों और विद्यार्थियों ने सभा के बाद हम लोगों को घेर लिया। देर तक बांगला देश की स्थिति के बारे में वे लोग सवाल पूछते रहे, अपना समर्थन व्यक्त करते रहे। हम लोगों को बहुत खुशी हुई।

× × ×

इलाहाबाद का विख्यात काफी हाउस। डॉ० मल्लिक तो सभा के बाद अपने आवास में लौट गये थे किन्तु अनीस को लोगों ने नहीं छोड़ा। अनौपचारिक चर्चा के लिए उसे मित्रगण काफी हाउस ले आये। मैं तो साथ था ही। डॉ० रघुवंश, डॉ० विजयदेव नारायण साही, लक्ष्मीकान्त वर्मा, नरेश मेहता, विश्वंभर मानव, डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी, ओंकार शरद् आदि अनीस से बांगला देश के लेखकों-कवियों के बारे में पूछते रहे। अनीस बहुत पुलकित हुआ। उसने मुझसे रात को कहा कि उसे धारणा नहीं थी कि इलाहाबाद के बौद्धिक बांगला देश की समस्या के बारे में इतने जागरूक और सहानुभूति सम्पन्न होंगे। मैंने कहा, कल देखना, हिन्दुस्तानी एकेडेमी की गोष्ठी कैसी होती है? विश्वविद्यालय की सभा में तो फिर भी औपचारिकता थी, यहाँ के साहित्यकारों में बांगला देश के मुक्ति युद्ध के प्रति केवल सहानुभूति ही नहीं, सहभागिता की भावना है। उसने कहा, मुझे भी ऐसा ही लग रहा है।

× ×

१२–६–७१। सुबह साढ़े आठ बजे वाइस चांसलर साहब से बांगला देश के विस्थापित प्राध्यापकों की समस्या पर बातचीत हुई। उन्होंने कहा कि वे यू० जी० सी० और भारत सरकार के शिक्षा तथा विदेश मंत्रालयों को लिखेंगे कि अस्थायी रूप से बांगला देश के कुछ प्राध्यापकों को इलाहाबाद विश्वविद्यालय में नियुक्त करने की अनुमति दी जाये। प्राध्यापकों एवं

विद्यार्थियों के सहयोग से कुछ धनराशि भी एकत्र कर भिजवाने का वचन उन्होंने दिया। डॉ० मल्लिक उनके रुख से सन्तुष्ट हुए, बोले, हम लोगों की यही अपेक्षा थी आप से।

साढ़े नौ बजे हिन्दुस्तानी एकेडेमी की ओर से शिष्टमंडल के सम्मान में साहित्यकारों और बुद्धिजीवियों की गोष्ठी थी। प्रो० आर० सी० देव, फिराक गोरखपुरी, अमृत राय, नरेश मेहता, लक्ष्मीकान्त वर्मा, रघुवंश, रामस्वरूप चतुर्वेदी, साही, गोपेश, जगदीश गुप्त आदि बहुत से साहित्यकार बन्धु जुटे थे। डॉ० मल्लिक ने बांगला देश के बुद्धिजीवियों की भूमिका पर तथा अनीस ने बांगला देश के नये संघर्षशील साहित्य पर छोटी किन्तु सारगर्भ वक्तृताएँ दीं। मैंने बांगला देश की कुछ कविताओं का हिन्दी अनुवाद सुनाया। फिराक साहब, देव साहब, साही जी, रघुवंश, जगदीश गुप्त, अमृत राय आदि ने बांगला देश के प्रति शुभकामनाएँ अर्पित कीं और भारतीय जनता एवं बुद्धिजीवियों की ओर से पूरे समर्थन का विश्वास दिलाया। समाजवादी नेता श्री राजनारायण ने भी इस गोष्ठी में बांगला देश का जोरदार समर्थन किया। इस गोष्ठी की सुचारु व्यवस्था का सारा श्रेय पं० उमाशंकर शुक्ल और डॉ० सत्यव्रत सिन्हा को है जिन्होंने बहुत ही कम समय में इतना अच्छा आयोजन कर अपनी संगठन कुशलता का प्रमाण दिया। पन्त जी उन दिनों इलाहाबाद में थे नहीं और महादेवी जी बहुत अस्वस्थ थीं, फिर भी उन्होंने डॉ० मल्लिक को और उनके माध्यम से बांगला देश को अपनी शुभकामनाएँ भेजी थीं।

शाम को श्रीमती राजेन्द्र नेहरू ने शिष्टमंडल के सदस्यों को चाय पर बुलाया। श्री आर० के० नेहरू ने अपने कूटनयिक अनुभवों के आधार पर डॉ० मल्लिक से देर तक बात चीत की। वे इस पक्ष में थे कि बांगला देश को सब प्रकार की पूरी सहायता दी जानी चाहिए। श्रीमती राजेन्द्र नेहरू बांगला देश के लिए चन्दा एकत्र करने के कार्य में जुटी हुई थीं। उन्होंने यह आश्वासन भी दिया कि इलाहाबाद में एकत्र राशि का एक अंश बांगला देश के बुद्धिजीवियों के सहायतार्थ वे कल वि० वि० बां० दे० सहायक समिति को भेजेंगी।

रात को इलाहाबाद के बंगाली समाज की ओर से श्री अनुकूल चन्द्र बनर्जी के घर प्रीति गोष्ठी और उसके बाद 'भोज' का आयोजन था। कल रात को भी श्री बग्गा ने, हम लोगों को 'डिनर' दिया था। इलाहाबाद के बंगाली सुसंस्कृत एवं सुसंगठित हैं। काफी संख्या में संभ्रान्त बंगाली नागरिक एकत्र हुए थे। नेहरू दम्पति एवं अमृत राय भी आमंत्रित थे। डॉ मल्लिक, सौरीन दा

आदि तो बोले हीं मित्रों के आग्रह से मैं भी बंगला में ही बोला। राजनीतिक एवं साम्प्रदायिक विभाजन के बावजूद बंगाल की सामान्य संस्कृति एक और अविभाज्य है, बांगला देश की हाल की घटनाओं ने इसे असन्दिग्ध रूप से स्पष्ट कर दिया है। श्री अमृत राय भोज के बाद भी हम लोगों से रात के साढ़े ग्यारह तक गप-शप करते रहे। बांगला देश के प्रति उनके मन में जो सद्भाव है उसे सक्रिय रूप देने के लिए वे बांगला देश के मुक्त अंचलों की यात्रा करना चाहते थे। हम लोगों ने उनके इस मनोभाव का स्वागत किया और उन्हें कलकत्ते आने का आमंत्रण भी दिया।

दूसरे दिन (१३–६–७१ को) सुबह प्रो० भटनागर ने हम लोगों को अपने घर चाय पिलायी। बिलकुल सहज पारिवारिक वातावरण। श्रीमती भटनागर ने तिलक लगाकर और सफल होने का आशीर्वाद देकर हम लोगों को बिदा दी। सबको यह आत्मीयता बहुत अच्छी लगी। हम लोगों को बिदा देने के लिए बीसियों मित्र स्टेशन आये। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इलाहाबाद के बुद्धिजीवियों में विशिष्ट शालीनता है जो उन्हें एक ही साथ प्रिय और सम्मान्य दोनों बनाती है। इलाहाबाद के समाचार-पत्रों ने भी दोनों दिनों के हम लोगों के आयोजनों के विस्तृत, सचित्र विवरण प्रकाशित किये थे। डॉ० मल्लिक ने कहा कि इलाहाबाद के शुभारंभ से भरोसा होता है कि यह सद्भावना-यात्रा सफल रहेगी। हम सब उनके साथ सहमत थे।

अलीगढ़ स्टेशन पर प्रो० वाइस चांसलर डॉ० शफी, डॉ० निजामी, अलीगढ़ विश्वविद्यालय के जन सम्पर्क अधिकारी श्री इकराम उल्ला खां तथा और भी बहुत से प्राध्यापक आये हुए थे। शहर के कुछ बंगाली सज्जन भी बांगला देश के विद्वानों के आकर्षण से खिंचे चले आये थे। बड़े शिष्टाचार के साथ हम लोगों का स्वागत हुआ।

अलीगढ़ विश्वविद्यालय का अतिथि भवन इलाहाबाद वि० वि० के अतिथि भवन से कहीं ज्यादा अच्छा है। अधिक सजे हुए और आरामदेह कमरे। जून की सख्त गर्मी और भीड़-भाड़ ने यात्रा को कष्टप्रद बना दिया था। स्नान और विश्राम ने बड़ी राहत पहुँचायी।

वाइस चांसलर डॉ० अलीम साहब हम लोगों के साथ भोजन करने पधारे। वे बहुत शान्त, सौम्य, संयत सज्जन लगे। बड़ी आवभगत के साथ हम लोगों को भोजन कराया गया। डॉ० अलीम हम लोगों के साथ कुछ देर

तक लान में बैठे भी किन्तु अपनी तरफ से उन्होंने डॉ० मल्लिक के स्वास्थ्य के बारे में ही पूछ-ताछ की, मौसम की कुछ चर्चा भी की। न तो बांगला देश के सम्बन्ध में उन्होंने कुछ पूछा, न औरों की बातों पर कोई प्रतिक्रिया प्रकट की। हम सब लोगों को यह बात अर्थपूर्ण लगी कि प्रो० वाइस चांसलर तथा अन्य अधिकारी भी औपचारिकता तो पूरी निभाते रहे किन्तु बांगला देश के बारे में विशेष पूछ-ताछ उन्होंने भी नहीं की।

स्थानीय लोगों के चले जाने के बाद हम लोगों की आपसी परामर्श गोष्ठी बैठी। हम लोगों की सूचनाओं के अनुसार अलीगढ़ वि० वि० के प्राध्यापकों और विद्यार्थियों का एक हिस्सा कट्टर साम्प्रदायिक होने के कारण बांगला देश के मुक्तियुद्ध का विरोधी था। पाकिस्तान द्वारा बहु प्रचारित इस मिथ्या का भी यहाँ की मानसिकता पर काफी असर था कि बंगालियों के अत्याचार से उर्दू भाषियों की रक्षा के लिए ही पाकिस्तानी सरकार को कड़ा कदम उठाना पड़ा। अतः यह तै हुआ कि कल की सभा में डॉ० मल्लिक विस्तार पूर्वक बोलें और पाकिस्तानी अपप्रचार का खंडन कर बांगला देश के न्यायोचित पक्ष को निर्भीकतापूर्वक उपस्थित करें।

× ×

१४–७–७१। जलपान के बाद हम लोग अलीगढ़ विश्वविद्यालय देखने निकले। हम लोगों के साथ श्री इकराम उल्ला खां थे। मैंने अपनी तरफ से उनसे उर्दू में बात-चीत करनी चाही किन्तु उन्होंने धड़ल्ले से संस्कृतनिष्ठ हिन्दी बोल कर मुझे चकित कर दिया। मुझे तब और सुखद आश्चर्य हुआ जब उन्होंने अपने बच्चों को हिन्दी के माध्यम से ही शिक्षा दिलाई है और कुरान-शरीफ भी हिन्दी में ही पढ़ाई है। गोरे, चिट्टे, हँसमुख इकराम खाँ बहुत ही जल्दी हम सब के स्नेह भाजन हो गये।

सर सैयद अहमद ने अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के स्वप्न को वृहदाकार ठोस रूप देने में कोई कोर कसर नहीं रहने दी थी। स्वतंत्रता के बाद उसे केन्द्रीय विश्वविद्यालय होने का गौरव प्राप्त हुआ। आजकल भारत सरकार उस पर दो करोड़ रुपया प्रति वर्ष से अधिक खर्च कर रही है। स्वाधीनता के बाद अलीगढ़ विश्वविद्यालय का द्रुत गति से विस्तार हुआ है। पुराने विक्टोरियन भवनों के साथ ही बिलकुल आधुनिक शैली के लम्बे-चौड़े महाविद्यालयों और छात्रावासों की दिनों दिन बढ़ती कतारें दर्शकों को प्रभावित कर देती हैं। हम लोगों ने पहले सर सैयद का वास भवन देखा, फिर

पुराना विक्टोरिया हाल, नया पुस्तकालय, मेडिकल कालेज, इंजीनियरिंग कालेज, आर्ट्स फैकल्टी, साइंस फैकल्टी आदि का परिदर्शन किया। सर सैयद और उनके बेटे, पोते के मकबरे भी देखे। बहुत ही सादे··· बिलकुल अनलंकृत··· किन्तु महिमामंडित। डॉ० मल्लिक और अनीस ने उनके सामने जियारत की। मैंने भी उनकी आत्मा की सद्गति के लिए प्रार्थना की।

नया पुस्तकालय भवन विशाल और भव्य है। भारतीय इस्लामी संस्कृति, साहित्य और इतिहास का सबसे बड़ा ग्रन्थ भंडार यहाँ सुरक्षित है। डॉ० मल्लिक इतिहास के अधिकारी विद्वान हैं। उन्होंने और डॉ० अनीस ने भी पुस्तकाध्यक्ष रिजवी साहब से मुसलमानों के पुनर्जागरण में बंगाल की देन से सम्बद्ध कई दुर्लभ ग्रन्थों के बारे में पूछ-ताछ की और उन्हें कुछ ऐसी सामग्री यहाँ मिली, जिसे वे लोग अप्राप्य समझते थे।

शाम को सभा हुई। उपस्थिति करीब १०० के रही होगी। छुट्टियों के कारण बहुतेरे छात्र अपने-अपने घर चले गये थे। जो थे भी उन्हें आमंत्रित नहीं किया गया था। बात यह थी कि कुछ दिनों पहले बांगला देश के प्रश्न को लेकर छात्रों के दो दलों में मारपीट हो चुकी थी। जमाते इस्लामी और मुस्लिम लीग से प्रभावित छात्र बांगला देश के आन्दोलन को कुफ्र और इस्लाम के प्रति गद्दारी मानते थे जब कि राष्ट्रीयतावादी और प्रगतिशील विचार के विद्यार्थी इसे मुक्ति आन्दोलन मानते थे। अतः अधिकारी नहीं चाहते थे कि परस्पर विरोधी विचार के विद्यार्थी सभा में आयें, उन्हें भय था कि बांगला देश के प्रश्न पर वे फिर टकरा जा सकते हैं। अतः सभा में केवल निमंत्रित प्राध्यापकों एवं विशिष्ट जनों का ही समावेश हुआ था।

डॉ मल्लिक यहाँ बहुत ही अच्छा बोले। उन्हें इस बात का आभास था कि वे अधिकांशतः संरक्षणशील···एक हद तक कट्टरपंथी मुस्लिम बुद्धिजीवियों के समक्ष बोल रहे हैं। अतः वे बहुत सावधान थे। उन्होंने अपने व्याख्यान में तर्क और भावना का अद्भुत समन्वय किया। पाकिस्तान के निर्माण में बंगाली मुसलमानों के योगदान की चर्चा करने के अनन्तर उन्होंने विस्तारपूर्वक सप्रमाण बताया कि इस्लाम की दुहाई देते रहने के बावजूद पाकिस्तानी शासकों ने तेईस वर्षों तक बंगाली मुसलमानों का कैसा भयंकर आर्थिक शोषण किया, उनके लोकतांत्रिक आन्दोलनों को किस बेरहमी से कुचला, उनकी भाषा और संस्कृति को नष्ट कर उन्हें बौना और गुलाम बना देना चाहा। पाकिस्तान को खंडित शेख मुजीब ने नहीं, अयूब-यहिया जैसे फौजी तानाशाहों

और भुट्टो कयूम जैसे श्रेष्ठतावादी पश्चिमी पाकिस्तानी राजनीतिज्ञों की अन्ध-स्वार्थ परायण हठबुद्धिता ने किया है। बिहारी मुसलमानों पर बंगालियों के अत्याचार की बात को अत्यधिक अतिरंजित और मन गढ़न्त बताते हुए डॉ० मल्लिक ने कहा कि २६ मार्च, १९७१ को दिये गये वक्तव्य में यह्रिया खां ने इसका कोई उल्लेख नहीं किया था, न विदेशी पत्रकारों ने इस प्रकार की घटनाओं का संकेत ही अपने संवादों और लेखों में दिया था। यह बंगाली मुसलमानों को दुनिया की नजरों में गिराने के लिए किया जाने वाला झूठा अपप्रचार मात्र है।

फिर उन्होंने २५ मार्च के वाद पाकिस्तानी फौज के द्वारा किये गये कत्ले आम का लोमहर्षक विवरण दिया। ढाका विश्वविद्यालय के प्राध्यापकों, छात्रों, ई० पी० आर०, ई० बी० आर० के जवानों और साधारण निरीह जनता के ऊपर तीन दिनों तक जो अन्धाधुन्ध अत्याचार हुआ···बंगाली मुस्लिम स्त्रियों पर जो बड़े पैमाने पर बलात्कार हुआ उसका वर्णन करते-करते उनका गला रुँध गया। फिर उन्होंने दृढ़ कंठ से बताया कि अब बंगाली जनता इस्लाम के नाम पर छली नहीं जा सकती। जो अपने व्यक्तिगत जीवन और राष्ट्रीय व्यवहार में घोर इस्लाम विरोधी हैं, उनसे हम इस्लामी भाईचारे की बात सुनने के लिए तैयार नहीं हैं। पाकिस्तानी फौजी जेनरलों और राजनीतिक नेताओं को इस्लाम से कुछ लेना-देना नहीं है, वे अपने स्वार्थ के लिए इस्लाम के नाम का दुरुपयोग भर करते हैं। बांगला देश की मुक्ति का युद्ध मानवता की मुक्ति से जुड़ा हुआ है। बांगला देश साम्प्रदायिकता और धर्मान्धता का घोर विरोधी है। क्योंकि वह उनके विषैले फल चख चुका है। स्वतंत्र बांगला देश धर्म निरपेक्ष, लोकतांत्रिक, समाजवादी देश होगा। हम भारत की जनता और सरकार से अपने मुक्ति युद्ध में पूरे सहयोग की आशा रखते हैं क्योंकि उनका आदर्श भी यही है।

सभा की शान्ति और एकाग्रता से यह स्पष्ट था कि डॉ० मल्लिक के व्याख्यान का गहरा प्रभाव पड़ा है किन्तु सुनने वालों की भीतरी प्रतिक्रिया क्या हुई ? इसको हमलोग नहीं जान पाये क्योंकि श्रोताओं में से कोई कुछ नहीं बोला। न किसी ने कोई सवाल ही पूछा, न भाषण ही दिया। वाइस चांसलर डॉ० अलीम ने जरूर अपने अध्यक्षीय भाषण में स्वतंत्र बांगला देश का समर्थन किया और यह आश्वासन दिया कि विस्थापित प्राध्यापकों में से कुछ को अलीगढ़ विश्वविद्यालय में अस्थायी रूप से नियुक्त करने की चेष्टा की जायेगी।

सभा के बाद चाय पार्टी थी। हिन्दी विभाग के डॉ० कुंवर पाल सिंह से मेरी अच्छी पटरी बैठ गयी। उन्होंने विस्तार से बताया कि बांगला देश के समर्थन में पूरी तरह आवाज उठाने वाले मुस्लिम छात्रों-प्राध्यापकों की संख्या बहुत कम है। केवल वामपंथी विचारधारा के मुस्लिम बुद्धिजीवी ही बांगला देश का समर्थन कर रहे हैं। साधारण मुसलमान पाकिस्तान के बँटने और कमजोर हो जाने की संभावना से दुःखी हैं। उनके साथ यहाँ के प्रोफेसर्स क्लब में गया। उसका भवन और लान अच्छा है। वातावरण भी बहुत जीवन्त था, बहुत से प्राध्यापक वहाँ गपशप कर रहे थे या ताश आदि खेल रहे थे। काश, कलकत्ता विश्वविद्यालय में भी ऐसा क्लब होता।

रात को शानदार डिनर था। चांसलर नवाब छतारी तथा सभी विभागाध्यक्ष पधारे थे। यहीं अपने नये सहयोगी सुबिद अली से मेरा परिचय हुआ। वह उसी समय कलकत्ते से वहाँ पहुँचा था। डिनर का वातावरण बहुत सौहार्द्रपूर्ण था किन्तु चर्चा सामान्यतः स्वास्थ्य, भोजन और मौसम की ही होती रही।

१५-६-७१। नौ बजे अलीगढ़ नगर के धर्म समाज कालेज में जनसभा थी। उपस्थिति साढ़े तीन सौ के करीब रही होगी। प्रिन्सिपल गुप्त अध्यक्ष थे। राजनीति विभाग के डॉ० गहराना ने शिष्टमंडल का स्वागत किया। डॉ० मल्लिक और डॉ० अनीस थोड़ा-थोड़ा बोले। विस्तार से आज सुबिद अली बोला। डॉ० मल्लिक और अनीस सदा अंग्रेजी में बोलते रहे किन्तु सुबिद ने व्याख्यान उर्दू में दिया। यद्यपि वह काफी अच्छी उर्दू बोल लेता है, फिर भी लिंग, वचन की कुछ गलतियाँ तो होती ही हैं। उसकी वक्तृता में राजनीतिक नेता का लहजा था। उसने बांगला देश के आन्दोलन का ऐतिहासिक क्रम प्रस्तुत किया और स्वतंत्र बांगला देश के स्वप्न को सत्य बनाने के बंगाली जाति के संकल्प को सब प्रकार की सहायता देने की अपील की। लोगों ने उसे काफी पसन्द किया। मैं भी बोला। मैंने और बातों के साथ-ही-साथ इस बात पर भी जोर दिया कि इस समय पाकिस्तानी नीति भारत में हिन्दू-मुस्लिम दंगा कराने की ही है। अलीगढ़ में कुछ समय पहले दंगा हो भी चुका है। हर भारतीय को चाहे वह किसी भी धर्म या राजनीतिक दल का क्यों न हो? पाकिस्तानी चाल को सफल नहीं होने देना चाहिए। हिन्दू-मुस्लिम सद्भाव ही बांगला देश को नैतिक समर्थन देने की आधारशिला है। पाकिस्तान के दो राष्ट्रों वाले सिद्धान्त को सदा के लिए दफना कर ही हम नये बांगला देश के निर्माण में सहायक हो सकते हैं। सभा काफी जमी।

अलीगढ़ की सामान्य जनता में बांगला देश के प्रति गहरी सहानुभूति है, यह साफ हो गया।

अलीगढ़ की खातिर तवज्जह में कोई कमी नहीं थी। सच कहा जाये तो इलाहाबाद से हम लोगों का कहीं अधिक स्वागत-सत्कार अलीगढ़ में हुआ, पर यह भी महसूस होता रहा कि इसमें औपचारिकता अधिक है, आन्तरिकता कम। बांगला देश के प्रति अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के अधिकांश प्राध्यापक चुप्पी साधे रहे। विद्यार्थियों से तो हम लोग मिल ही नहीं पाये। यदि विश्व-विद्यालय में छुट्टियाँ नहीं होतीं तो बांगला देश के बारे में प्रबुद्ध, संरक्षणशील भारतीय मुस्लिम मानस क्या सोचता है? यह और अधिक स्पष्ट होता। जो हो, अलीगढ़ से विदा होते समय हम लोगों को इस बात का सन्तोष था कि डॉ० मल्लिक का विचारोत्तेजक व्याख्यान बहुतों के मन की दुविधा और भ्रान्ति को दूर करने में समर्थ हुआ होगा।

१५–६–७१ की रात को ही हम लोग दिल्ली पहुँचे। स्टेशन पर दिल्ली विश्वविद्यालय के एक अधिकारी के साथ स्वयं दिलीप दा प्रतीक्षा कर रहे थे। दिल्ली विश्वविद्यालय के अतिथि भवन में हम लोगों का डेरा जमा। दिलीप दा इलाहाबाद-अलीगढ़ की उपलब्धियों के समाचार से बहुत खुश हुए। वे साउथ एवेन्यू में ठहरे हुए थे अतः दूसरे दिन सुबह विचार-विमर्श करने की बात कह कर जल्दी ही चले गये।

१६–६–७१। दिल्ली राजधानी है और बहुत ही व्यस्त है। यहाँ किसी को किसी के बारे में उतनी ही दिलचस्पी रहती है, जितनी उसके अपने लिए जरूरी है। कहाँ अलीगढ़ का मध्ययुगीन शिष्टाचार से ओतप्रोत राजसी आतिथ्य, कहाँ गैररस्मी बरतने वाली दिल्ली की काम चलाऊ यांत्रिक व्यवस्था। यहाँ वाइस चांसलर, प्रो० वाइस चांसलर की तो बात ही जाने दीजिये रजिस्ट्रार, असिस्टेंट रजिस्ट्रार भी भोजन के समय पूछ-ताछ करने नहीं आये। केवल भोजन-प्रबन्धक (कैटरर) सज्जन ही अपनी ओर से औप-चारिकता निभाते रहे।

जो हो, दिल्ली हम लोगों के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण पड़ाव था। शिक्षा-मंत्री श्री सिद्धार्थ राय अपनी विदेश-यात्रा से अभी तक नहीं लौटे थे। बिना उनसे मिले विस्थापित प्राध्यापकों और शरणार्थी शिविर-विद्यालयों की योजना

के बारे में कोई निर्णय नहीं हो सकता था, अतः हमें प्रतीक्षा करनी थी और इस समय का सदुपयोग बांगला देश के पक्ष में वातावरण के निर्माण की दृष्टि करना था।

केन्द्रीय सरकार के मंत्रियों, अधिकारियों, विभिन्न विश्वविद्यालयों के वाइस चांसलरों, प्राध्यापकों आदि से मिलने-भेंटने की साँझी जिम्मेदारी तो थी ही, प्रेस कनफ्रेंस तथा साहित्यकार-कलाकार-गोष्ठी के आयोजन की जिम्मेदारी विशेष रूप से मुझे सौंपी गयी थी। आज शाम को चार बजे दिल्ली विश्वविद्यालय की ओर से सभा का आयोजन था। तब तक समय-ही-समय था। मैं अपने काम पर आज ही से जुट गया।

सबसे पहले गया राजेन्द्र यादव-मन्नू भंडारी से मिलने। वे लोग मेरी प्रतीक्षा ही कर रहे थे। पहले तो कुछ देर तक कलकत्ते की और मन्नू जी के नये उपन्यास 'आप का बंटी' की चर्चा होती रही, फिर साहित्यकार गोष्ठी के सम्बन्ध में विचार-विमर्श हुआ। कई और मित्रों से फोन पर बात चीत की। श्री कान्त वर्मा, प्रभाकर माचवे, भारत भूषण अग्रवाल, सुरेश अवस्थी आदि से भी मैं मिला। सबने बांगला देश के प्रति पूरी सहानुभूति दिखाई और प्रस्तावित गोष्ठी में आने का वचन दिया। कुछ अच्छे सुझाव भी दिये। मैं आश्वस्त हुआ।

शाम को दिल्ली विश्वविद्यालय में अच्छी सभा रही। सभागतों में अधिकतर प्राध्यापक ही थे, कुछ अधिकारी भी थे। वाइस चांसलर डॉ० स्वरूप सिंह दिल्ली में नहीं थे अतः प्रो० वाइस चांसलर डॉ० वी० पी० दत्त ने अध्यक्षता की। डॉ० मल्लिक ने संक्षिप्त किन्तु प्रभावशाली व्याख्यान में बताया कि बांगला देश अपनी आजादी के लिए सशस्त्र संघर्ष कर रहा है। हमारा विश्वास है कि भारत की महान् जनता और सरकार हमारे इस मुक्ति युद्ध को अपना पूरा समर्थन देगी। प्रो० दिलीप चक्रवर्ती ने कलकत्ता विश्वविद्यालय बांगला देश सहायक समिति की गतिविधि का परिचय दिया और विस्थापित प्राध्यापकों और बुद्धिजीवियों की सहायता के लिए अपील की। दिल्ली स्कूल ऑफ इकानामिक्स के डाइरेक्टर श्री तपन राय चौधरी, प्रो० नकवी, प्रो० रुद्र दत्त आदि ने बहुत उत्साह के साथ बांगला देश को हर संभव सहायता देने के लिए विश्वविद्यालय एवं भारत सरकार से अनुरोध किया। अध्यक्ष डॉ० वी० पी० दत्त ने आश्वासन दिया कि विश्वविद्यालय इस दिशा में शीघ्र ही निर्णय करेगा कि विस्थापित विद्वानों में से कुछ की सेवाओं का अस्थायी उपयोग किस प्रकार किया जा सकता है। हिन्दी विभाग के सिर्फ डॉ० उदयभानु सिंह ही सभा में आये थे।

मित्रों का यह विचार था कि शिष्टमंडल को प्रधान मंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी से अवश्य मिलना चाहिए। प्रो० समर गुह, एम० पी० ने भेंट की व्यवस्था करने का जिम्मा लिया। श्री तपन राय चौधरी, श्री सेनगुप्त, एम० जी० भी हमलोगों की बड़ी सहायता कर रहे थे।

१७–६–७१। अभी हम लोग नाश्ता ही कर रहे थे कि राजेन्द्र यादव, मन्नू भंडारी, सेवाराम शर्मा एवं उनकी श्रीमती जी तथा अजित कुमार, डॉ० मल्लिक, अनीसुज्जमान, सुबिद अली आदि से मिलने आ गये। अच्छी बातचीत रही। डॉ० मल्लिक योग्य व्यक्ति हैं। व्याख्यान देने में जितने दक्ष हैं, बातचीत करने में भी उतने ही पटु हैं। अपने उद्देश्य के प्रति गंभीर आस्था होने के कारण और युक्तियुक्त वार्तालाप करने के कारण वे सामने वालों को प्रभावित कर देते हैं। राजेन्द्र यादव आदि सभी उनके प्रति सम्मान का भाव लेकर लौटे।

इससे साहित्यकार सभा का काम सुगम हो गया। डॉ० निर्मला जैन के यहाँ डॉ० नामवर सिंह, राजेन्द्र यादव, मन्नू भंडारी, अजितकुमार आदि के सहयोग से यह निश्चय किया गया कि किसी एक व्यक्ति या संस्था की तरफ से इस सभा का आयोजन न कर दिल्ली के साहित्यकारों-कलाकारों की ओर से इसका आयोजन किया जाये तथा स्थान का भाड़ा बचाने के लिए रवीन्द्र भवन के लान पर सभा बुला ली जाये। व्यवस्था आदि के लिए कुछ समय हाथ में रहना अच्छा है, यह सोचकर २१ तारीख की सन्ध्या के समय यह सभा करने का निर्णय किया गया।

वहाँ से मैं गया शिक्षा विभाग के उच्च अधिकारी श्री जीवन नायक से मिलने। शिष्टमंडल के अन्य सदस्य कुछ देर से पहुँचे। मालूम पड़ा इस बीच वे लोग प्रधान मंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी से मिल आये। डॉ० मल्लिक ने बताया कि मेरे निकलने के बाद ही भेंट के निश्चित समय की सूचना मिली अतः मुझे सूचित नहीं किया जा सका। डॉ० मल्लिक प्रसन्न थे क्योंकि बातचीत अच्छी तरह हुई थी और इन्दिरा जी ने विस्थापित विद्वानों की व्यवस्था करने का वचन दिया था।

श्री जीवन नायक ने ध्यानपूर्वक हम लोगों की बात सुनी। हमारी योजनाओं पर विचार करने का और उन्हें शिक्षा मंत्री के समक्ष अनुकूल सम्मति के साथ उपस्थित करने का वचन दिया।

अब मेरे सामने प्रेस कान्फ्रेंस के आयोजन की समस्या थी। दिनमान के कार्यालय में श्री रघुवीर सहाय से मिला। उन्होंने प्रेस क्लब के लोगों से

मिलने की सलाह दी। हाँ, २१ तारीख की सभा की सूचना हिन्दी-अंग्रेजी के पत्रों में निकलवा देने का आश्वासन दिया।

रात को शिष्टमंडल के सम्मान में उपवित्त मंत्री के० आर० गणेश के निवास स्थान में 'डिनर' था। वहाँ युवा तुर्क नेताओं और मंत्रियों का अच्छा जमघट था। नन्दिनी सत्पथी, रघुनाथ रेड्डी, के० एन० सिंह, शशि भूषण, अमृत नाहटा, सत्यपाल कपूर आदि उपस्थित थे। वे लोग मुख्यतः डॉ० मल्लिक से बांगला देश की स्थिति के बारे में प्रश्न-पर-प्रश्न करते रहे। डॉ० मल्लिक ने उन सब के उत्तर अच्छी तरह दिये। अन्त में उन्होंने पूछा कि अब आप लोग बताइये कि भारत सरकार इस सम्बन्ध में क्या करने जा रही है? पहले तो उन लोगों ने इस प्रश्न को टाल देना चाहा किन्तु मैंने इस प्रश्न को और इससे निकलने वाले अन्य प्रश्नों को आग्रहपूर्वक दुहराया तो श्री के० आर० गणेश ने कहा कि हम लोग शीघ्र ही कड़ा कदम उठाने वाले हैं, वह कदम क्या होगा? कब उठाया जायगा? यह अभी नहीं बताया जा सकता किन्तु उससे बांगला देश के समर्थकों को सन्तोष होगा।

फिर प्रेमपूर्वक भोजन हुआ। यहीं दिल्ली के प्रमुख पत्रकार श्री गिरीश माथुर से भी मेरा परिचय हुआ। उनसे मैंने आग्रह किया कि आप लोग प्रेस क्लब की ओर से डॉ० मल्लिक को दिल्ली के पत्रकारों से बातचीत करने के लिए आमंत्रित कर लीजिये। उन्होंने अपने मित्रों से बातचीत कर मेरा प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। २०–६ की अपराह्न वेला में प्रेस के साथ चाय पर डॉ० मल्लिक की बातचीत का कार्यक्रम तै हो गया। मुझे खुशी हुई कि मेरी दोनों जिम्मेदारियाँ अब अच्छी तरह पूरी हो जायेंगी।

रात को हम लोग जब अपने आवास में मिले तो आज की उपलब्धि से बहुत खुश थे। अनिरुद्ध और अनिल प्रति दिन की रिपोर्ट रात को लिखते और टाइप करते थे। अगले दिन का समन्वित कार्यक्रम भी वे ही लोग बनाते थे। पर आज हम सब देर तक लान पर बैठे-बैठे गपशप करते रहे। स्वाधीन बांगला देश के सपने देखते रहे।

× × ×

१८–६–१९७१। आज का सारा दिन महत्वपूर्ण व्यक्तियों से मिलने-जुलने में ही लग गया। सभाओं द्वारा प्रचार और वातावरण का निर्माण तो होता है किन्तु काम आगे बढ़ता है विशिष्ट व्यक्तियों के माध्यम से ही। केन्द्रीय सरकार के नेताओं के साथ तो बातचीत चल ही रही थी, हम लोगों ने सोचा

दिल्ली-प्रशासन के अधिकारियों से मिल लेना भी उचित होगा। हम लोगों का काम राजनीतिक दल निरपेक्ष काम था। अतः सभी दलों से हमें सहयोग मिल रहा था।

अभी हम लोग जलपान ही कर रहे थे कि आकाशवाणी से श्री अशोक मनसुखानी आ गये डॉ० मल्लिक की वार्ता को रिकार्ड करने के लिये। डॉ० मल्लिक की अंग्रेजी वार्त्ता रिकार्ड कर लेने के बाद उनसे यह अनुरोध किया गया कि वे पाकिस्तान की साधारण जनता के लिए उर्दू में भी अपनी वार्ता दें। उसके लिए फिर उन्हें बुलाया गया।

ठीक दस बजे डॉ० मल्लिक दिल्ली के मुख्य कार्याकारी पार्षद श्री विजय कुमार मल्होत्रा से मिलने गये। उनके साथ मैं भी था और मित्र दूसरे कार्यों पर चले गये थे। विजय जी जनसंघ के हैं, बांगला देश के प्रति उनके मन में बहुत सहानुभूति है, वे बहुत प्रेम से मिले। उन्होंने कहा कि २५,०००) रु० की राशि हम दे सकते हैं किन्तु केन्द्रीय सरकार यदि आग्रह करे कि यह सहायता केन्द्रीय सहायता समिति के माध्यम से होनी चाहिए तो थोड़ी मुश्किल होगी। विस्थापित बुद्धिजीवियों की भारत में यथासंभव समुचित देख-रेख होनी ही चाहिए। उन्होंने कुछ प्राध्यापकों की नियुक्ति के बारे में भी विचार करने का आश्वासन दिया। उनके रूप, गुण और व्यवहार से हम लोग बहुत प्रभावित हुए।

वहाँ से हम लोग गये ले० गवर्नर आदित्यनाथ झा से मिलने। महामहोपाध्याय पं० गंगानाथ झा के पुत्र और डॉ० अमरनाथ झा के छोटे भाई श्री आदित्यनाथ झा मुझे तो प्रशासक कम और प्राध्यापक अधिक प्रतीत हुए। इनके परिवार में दो पीढ़ियों से सब लोग वाइस चांसलर होते रहे हैं। ये भी वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर रह चुके थे। वैदुष्य और उनके सहजातगुण प्रबोध और विनय इनमें प्रचुर मात्रा में लगे। हम लोगों को पता नहीं चला कि हम लोग किसी राजपुरुष से मिल रहे हैं, लगा एक सेवा निवृत्त वाइस चांसलर अपने से उम्र में छोटे और कष्टग्रस्त वाइस चांसलर से बड़े भाई के स्नेह के साथ मिल रहा है। उन्होंने प्रतिमास कुछ-न-कुछ सहायता भिजवाते रहने का और कुछ प्राध्यापकों को भी दिल्ली प्रशासन के कालेजों में लेने का वचन दिया।

दोपहर को हम लोग जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय गये। वाइस चांसलर किसी आवश्यक कार्य से बाहर चले गये थे। इतिहास विभाग की

अध्यक्ष डॉ० रमला थापड़ डॉ० मल्लिक से बहुत सम्मान पूर्वक मिलीं। जब डॉ० मल्लिक लंदन विश्वविद्यालय में थे तब वे वहाँ शोध-कार्य कर रही थीं। उन्होंने बताया कि डॉ० मल्लिक के तत्कालीन सहयोगी डॉ० गुजराल और डॉ० मीनाक्षी सेनगुप्त भारत सरकार के गजट विभाग में हैं। डॉ० मल्लिक उनसे भी मिले। मित्रों से बातें करते समय वे पुरानी यादों में खो गये और थोड़े समय के लिए वर्तमान का दुःख दर्द भूल गये। स्नेही मित्रों से बहुत दिनों बाद मिलना कितना सुखद होता है।

शाम को भी एक शुभ संयोग घटा। दिल्ली विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर डॉ० स्वरूप सिंह से हम लोग मिलने गये। डॉ० मल्लिक को देखते ही उन्होंने पूछा, बताइये, इसके पहले हम लोग कहाँ मिले हैं? थोड़ी देर तक दोनों अनुमान भिड़ाते रहे, बाद में अचानक दोनों को याद आया कि दोनों लंदन में साथ-साथ थे। मल्लिक साहब इतिहास में शोध कर रहे थे और स्वरूप सिंह जी अंग्रेजी साहित्य में, इसलिए दोनों में घनिष्ठता तो हुई नहीं थी किन्तु हीरालाल सिंह दोनों के मित्र थे और उनके यहाँ वे लोग कई वार मिले थे। अब तो वातावरण में हृदयता आ गयी। डॉ० स्वरूप सिंह ने कहा, डा० मल्लिक दूसरे प्राध्यापकों की बात तो होती रहेगी, पहले बताइये कि क्या आप यहाँ आ सकते हैं?' डॉ० मल्लिक थोड़ा-सा हिचकिचा गए। डॉ० स्वरूप सिंह ने कहा, 'देखिये, मेरे पास एक अच्छा काम है, जिसमें आपको विशेष मेहनत भी नहीं करनी पड़ेगी। क्या आप दिल्ली विश्वविद्यालय के विजिटिंग वाइस चांसलर होना पसन्द करेंगे? अवश्य ही इसके लिए श्रीमती मल्लिक की अनुमति पहले आपको लेनी होगी।' इस मीठे परिहास ने सबको हँसा दिया। फिर प्राध्यापकों की अस्थायी नियुक्ति के बारे में अच्छी बातचीत हुई। डा० सिंह ने विश्वविद्यालय की एक गाड़ी भी डॉ० मल्लिक की सेवा के लिए नियोजित कर दी।

वहाँ से डॉ० मल्लिक प्रगतिशील राष्ट्रीयतावादी नेता नूरुलहसन एम० पी० साहब से मिलने गये। उनकी बात चीत में हम लोग शामिल नहीं हुए।

रात को भोजन के वाद लान पर आज भी देर तक गपशप होती रही। डॉ० मल्लिक आज मित्रों से मिल कर बहुत प्रसन्न हुए थे। देर तक लंदन विश्वविद्यालय की चर्चा करते रहे। कुछ जरूरी काम के कारण आज सौरीन दा कलकत्ता लौट गये।

१९–६–७१ आज जलपान के समय पांचजन्य के सम्पादक देवेन्द्र जी पधारे। डॉ० मल्लिक और अनीस से देर तक बात चीत करते रहे। एक तरह

से उन्होंने उन लोगों का इंटरव्यू ही ले लिया। मजहब से संस्कृति को अधिक व्यापक एवं बड़ा मानना बंगाली मुसलमानों के लिए कैसे संभव हुआ ? इस विषय पर काफी चर्चा हुई।

कलकत्ते से हम लोग दस की रात को चले थे। तब से अनवरत काम करते ही रहे। आज पहला दिन था जब हम लोगों को थोड़ा-सा फुर्सत का समय मिला था। वैसे मैं पूर्वाह्न में डॉ० नगेन्द्र से थोड़ी साहित्यिक बातचीत और राजेन्द्र यादव से साहित्यकार सभा के बारे में विचार-विमर्श कर आया था।

भोजन के बाद डॉ० मल्लिक कुछ देर तक अपने संस्मरण सुनाते रहे। मुझे लगा कि उन्हें अपने घर की याद सता रही है। कैसा परिवर्तन ला दिया था इतिहास ने उनके जीवन में ! कल वे चटगांव विश्वविद्यालय के तेजस्वी, प्रभावशाली वाइस चांसलर थे और आज अनिश्चित भविष्य से जूझ रहे थे ताकि उनके देश को सम्मानपूर्ण जीवन जीने का अधिकार मिले। चटगाँव विश्वविद्यालय को उन्होंने मुक्तिवाहिनी का गढ़ बना दिया था। खूंखार लड़ाई के बाद ही पाकिस्तानी फौज चटगांव वि० वि० पर पुनः अधिकार कर सकी थी। भरा हुआ घर छोड़कर बीवी बच्चों के साथ जो कपड़े पहने हुए थे उन्हीं को लेकर उन्हें वहाँ से हटना पड़ा था। बाद में उन्हें समाचर मिला था कि पाक फौज ने उनके मकान को लूट कर उनके पुस्तकालय में आग लगा दी थी। अन्त में वे बोले जब तक काम करता रहता हूँ, तब तक ठीक रहता हूँ, नहीं तो परिवार और देश की चिन्ताएँ व्याकुल कर देती हैं। हम लोगों ने उनकी बात की सच्चाई और पीड़ा को महसूस किया। अनीस भी गमगीन हो गया था। वह स्वभाव से ही कुछ गंभीर है। अनिल और अनिरुद्ध का स्नेह पुर्ण, विनोदपूर्ण साथ न होता तो वह अस्वस्थ ही हो जाता। सुबिद अली जरूर अलमस्त था पर संकट इतना बड़ा था कि उसकी मस्ती भी भाप बन कर उड़ गयी थी। अनिल, अनिरुद्ध और मैं···तीनों चेष्टा करते रहते थे कि यथासंभव अपने सम्मानित एवं प्रिय मित्रों को उदास न होने दें।

दिल्ली में नवस्थापित बांगला देश मिशन के श्री अमजद अली अपराह्न में डॉ० मल्लिक से देर तक परामर्श करते रहे।

शाम के बाद हम सब लोग लाल किले में 'प्रकाश और ध्वनि' का कार्यक्रम देखने गये। इतिहास को रोचक और नाटकीय बनाने में आयोजकों को पर्याप्त सहायता मिली है। शाहजहाँ से शुरू कर जवाहरलाल नेहरू तक लाल

किले के गौरव के उत्थान-पतन की गाथा प्रकाश और ध्वनि के सहारे गीतों, घोषणाओं, सैनिक आक्रमण की ध्वनियों, सभाओं के नारों और व्याख्यान आदि के टुकड़ों को रंग-बिरंगे आलोक से संयुक्त कर प्रभावशाली ढंग से कही गयी है।

अपने आवास लौट कर ले० गवर्नर झा तथा श्री विजय मल्होत्रा को दिये जाने वाले आवेदन पत्रों के प्रारूप बनाये। भोजन के बाद लान पर बैठ कर पिछले दिनों के काम-काज की समीक्षा और अगले कार्यक्रमों की योजना बनाते रहे। अन्य विश्वविद्यालयों से लिखा-पढ़ी आदि का काम अनिरुद्ध और अनिल ही करते हैं। उन्होंने बताया कि चंडीगढ़ विश्वविद्यालय जाने की बात नहीं बन पायी। अब यहाँ से हम लोग आगरा ही जायेंगे। हम सब एक परिवार की तरह हो गये थे। डॉ० मल्लिक भी लान की बैठकों में बड़ा रस लेने लगे थे। उनके मानसिक तनावों को कुछ तो हँसी-मजाक से भरी गपशप और कुछ रात की ठंडी हवा (जो सब समय नहीं चलती थी।) कुछ-न-कुछ मात्रा में दूर कर देती थी।

२०–६–७१। सुबह जलपान के समय दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के डॉ० दशरथ ओझा एवं डॉ० रमानाथ त्रिपाठी डॉ० मल्लिक आदि से बात चीत करने के लिए पधारे और बांगला देश के प्रति अपनी हार्दिक सद्भावना व्यक्त कर गये।

दिन भर हम लोग लिखा-पढ़ी एवं अगले कार्यक्रमों की व्यवस्था में जुटे रहे।

शाम को प्रेस क्लब ऑफ इंडिया में डॉ० मल्लिक के साथ शिष्टमंडल को चाय पर आमंत्रित किया गया था। श्री गिरीश माथुर ने अपना उत्तरदायित्व अच्छी तरह निभाया था। दिल्ली के सभी महत्त्वपूर्ण पत्रकार उपस्थित थे। डॉ० मल्लिक की प्रारंभिक संक्षिप्त वार्त्ता के बाद पत्रकार बन्धु देर तक भिन्न-भिन्न दृष्टियों से प्रश्न पूछते रहे। प्राध्यापक के लिए प्रश्नों का चुस्त उत्तर देना अपेक्षाकृत रूप से आसान काम है। यह कार्यक्रम बहुत अच्छा रहा।

उसके बाद करोल बाग के बंगाली समाज द्वारा आयोजित एक सभा में डॉ० मल्लिक, अनीसुज्जमान और सुविद अली के अच्छे व्याख्यान हुए। यहीं से बांगला देश मिशन के राजनयिक श्री शहाबुद्दीन और उनकी पत्नी के अनुरोध पर हम लोग उनके घर गये। शहाब सा साहब पाक दूतावास में सेकेंड सेक्रेटरी थे, अब वे बांगला देश के दिल्ली मिशन का काम-काज देख रहे हैं।

शहाब डॉ० मल्लिक के विद्यार्थी थे और उनकी पत्नी डॉ० अनीस की छात्रा थीं अतः वातावरण में वड़ी अपनायत थी। शहाव ने अपनी लड़कियों के नाम रखे हैं, अजन्ता, इलौरा। इतिहास के विद्यार्थी के अनुकूल ही है ऐसा नामकरण। लगता है कि क्रमशः बंगाली मुसलमान अरवी-फारसी नामों के साथ संस्कृत वंगला नाम भीं अपने वच्चों के लिए चुनने लगेंगे। यह प्रवृत्ति वहुत ही स्वागत योग्य है। इससे हिन्दू-मुसलमान की पृथकता की भावना कम होगी।

२१–६–७१। आज के सभी अखबारों में डॉ० मल्लिक की कल की भेंट-वार्ता प्रमुख संवाद के रूप में प्रकाशित हुई थी। इससे हम लोगों को बड़ी खुशी हुई। आज हम लोगों को दिल्ली वि० वि० का अतिथि भवन छोड़ना पड़ा क्योंकि पहले हमलोग दिल्ली में २०–६ तक ही रहने वाले थे। श्री सिद्धार्थ शंकर राय के विदेश में अँटक जाने के कारण हम लोगों को अपना निवास काल बढ़ाना पड़ा। हम सव अलग-अलग मित्रों के यहाँ चले गए। मैं अपने कलकत्ते के पुराने वन्धु श्री लक्ष्मी निवास झुंझुनवाला के घर चला गया जिन्होंने मुझे बहुत स्नेहपूर्वक रखा।

दोपहर को हम लोग नेहरू विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर श्री पार्थ-सारथी से मिले। उनसे वात करते ही लगा कि वे बहुत प्रतिभाशालीं व्यक्ति हैं, तेजस्वी, मितभाषी किन्तु सहायता के लिए तत्पर। प्रो० वाइस चांसलर श्री यूनिस रजा के साथ उन्होंने सहानुभूति पूर्वक हम लोगों की वात सुनी और यथा संभव सहयोग देने का वचन दिया।

अनिरुद्ध ने वताया कि वे लोग इसी वीच इन्दिरा जी के निजी सचिव श्री हक्सर से मिल चुके थे। नेहरू विश्वविद्यालय से हम लोग श्री नूरुल हसन से मिलने गये। आज भी डॉ० मल्लिक ने उनसे कुछ गोपनीय चर्चा की। श्री नूरुल हसन इन्दिरा जी के बहुत विश्वासभाजन हैं। अतः उनका सहयोग हम लोगों के कार्य के लिए वहुत उपकारी है।

वहाँ से डॉ० मल्लिक अनिल और अनिरुद्ध के साथ केन्द्रीय शिक्षा मंत्री श्री सिद्धार्थ राय से मिलने गये और मैं अनीसुज्जमान और सुबिद अली के साथ रवीन्द्र भवन गया जहाँ ६ बजे से साहित्यकारों, कलाकारों कीं सभा होने वाली थी। डॉ० मल्लिक सिद्धार्थ बाबू से बात कर उस सभा में आने वाले थे।

रवीन्द्र भवन के लान में ही एक तरफ छह कुर्सियाँ लगा दी गयी थीं सभापति और प्रमुख वक्ताओं के लिए, शेष बन्धुगण घास पर ही बैठने वाले

थे। छः बजे के पहले ही से साहित्यकार-कलाकार बन्धु आने लगे थे। साहित्य अकादमी की जनरल कौंसिल की बैठक चल रही थी। मेरे अनुरोध पर डॉ० माचवे ने छह बजने के पाँच मिनट पहले ही अपनी बैठक समाप्त कर दी और इस तरह डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी, डॉ० हरेकृष्ण मेहताव, श्री उमा शंकर जोशी, श्री० क० ना० सुब्रह्मण्यम्, डॉ० उदयनारायण तिवारी जैसे वरिष्ठ विद्वान एवं साहित्यकार भी उस सभा में सम्मिलित हो गये। मेरी इच्छा थी कि इस सभा का संचालन राजेन्द्र यादव या नामवर सिंह करते किन्तु सवा छह वजे तक जब वे लोग नहीं आये तब डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी को सभापति बना कर मैंने ही सभा का कार्य शुरू कर दिया। उपस्थिति काफी अच्छी थी। दिल्ली के बहुत से प्रमुख लेखक और कलाकार उत्साहपूर्वक आये थे। पहले डॉ० अनीसुज्जमान बांगला देश की क्रान्ति में साहित्यकारों तथा बुद्धिजीवियों के योगदान पर बोले। वे अभी बोल ही रहे थे कि डॉ० मल्लिक वगैरह भी आ गये। मेरा मन और आश्वस्त हो गया। सुविद अली यहाँ भी उर्दू में बोला। उसने पाकिस्तानी फौज के अत्याचारों का विस्तृत विवरण दिया। डॉ० मल्लिक ने अपने ओजस्वी भाषण में बांगला देश के मुक्ति युद्ध का सैद्धान्तिक पक्ष स्पष्ट किया। दिल्ली के साहित्यकारों की ओर से श्री कान्त वर्मा ने उन्हें आश्वासन दिया कि भारत के सभी लेखक, कलाकार और बुद्धिजीवी बांगला देश के साथ हैं। सभापति डॉ० चटर्जी ने बंगाली भाषा और संस्कृति के अविभाज्यदाय को ही बांगला देश की मुक्ति के आन्दोलन के मूल में मुख्य प्रेरक शक्ति बताया। सभा बहुत अच्छी रही। समागतों में सर्व श्री विष्णु प्रभाकर, मोहन सिंह सेंगर, प्रभाकर माचवे, सुरेश अवस्थी, नामवर सिंह, राजेन्द्र यादव, मन्नू भंडारी, अलकाजी, अम्लानदत्त, लक्ष्मीनारायण लाल, भारत भूषण अग्रवाल, निर्मला जैन, रमानाथ त्रिपाठी, गोविन्द केजरीवाल, शिवकुमार गोयल आदि-आदि अस्सी, पचासी लेखक-कलाकार बन्धु तो थे ही। पटना के डॉ० गोपाल राय भी उन दिनों वहीं थे, वे भी इस सभा में आ गये थे। इस आयोजन से पूरे शिष्टमंडल को बहुत सन्तोष हुआ।

सिद्धार्थ बाबू से भी डॉ० मल्लिक की अच्छी तरह बात चीत हुई। उसका सुफल कितना होगा? यह तो भविष्य ही बतायेगा।

२२-६-७१। डॉ० मल्लिक को आज उर्दू में रेडियो वार्त्ता देनी थी। वे अंग्रेजी में बोलते गये, मैं बंगला लिपि और सरल उर्दू में लिखता गया। फिर उनसे उसके उच्चारण का पूर्वाभ्यास भी कराया। श्री सुबिद अली आज कलकत्ते लौट गये।

साढ़े दस, पौने ग्यारह बजे हम लोग जामिया मिल्लिया इस्लामिया के वाइस चांसलर प्रो० मुजीब से मिलने गये। मुजीब साहब वृद्ध हो गये हैं। उन्होंने सहानुभूति तो दिखायी किन्तु विशेष कुछ करने का आश्वासन नहीं दिया। अपने अर्थाभाव की ही चर्चा करते रहे। उनका यह भी मत था कि बांगला देश के बारे में भारत सरकार ने और भारतीय जनता ने बहुत जोश दिखा कर बांगला देश का भला नहीं किया। उनके रुख से हम लोग आश्वस्त नहीं हो सके।

लौटते समय साढ़े तीन बजे रेडियो स्टेशन पहुँचने की बात पक्की कर मैं साहित्य अकादमी में उतर गया, मित्रों से गपशप करने की दृष्टि से। साढ़े तीन बजे रेडियो स्टेशन पहुँचा तो मालूम पड़ा कि तबीयत खराब हो जाने के कारण डॉ० मल्लिक ने अपना कार्यक्रम स्थगित कर दिया है। मुझे चिन्ता हुई, मैंने तपन दा को फोन किया। उन्होंने बताया कि लगातार मेहनत और गर्मी के कारण डॉ० मल्लिक को कमजोरी महसूस हो रही थी, चक्कर भी आ रहे थे। अतः डाक्टर की सलाह के अनुसार उन्हें विश्राम करना उचित लगा कल भी आगरा वे जायेंगे या नहीं इसका निश्चय रात को करेंगे। रात को मैंने फोन किया तो अनिरुद्ध ने बताया कि सर की तबीयत सुधर गयी है और कल की यात्रा पूर्व योजना के अनुसार ही होगी। दिल्ली में बिताये ये सात दिन चिरस्मरणीय रहेंगे।

२३–६। आज सुबह सवा सात की गाड़ी से आगरा जाना था अतः लक्ष्मी निवास जी और उनके परिवार से बिदा लेकर पौने सात बजे ही स्टेशन पहुँच गया। डॉ० मल्लिक वगैरह पाँच मिनट पहले ही आ गये थे। मल्लिक साहब का स्वास्थ्य ठीक ही था, सिर्फ थकावट, गर्मी और दुश्चिन्ताओं के कारण वे कल अपराह्न को परेशान हो गये थे। फिर भी हम लोगों ने सावधानी के लिहाज से गोरखपुर, वाराणसी और पटना की यात्रा रद्द कर दी। आगरा और लखनऊ के बाद सीधे कलकत्ता जाना ही तै हुआ।

आगरा स्टेशन पर हम लोग उतरे तो कोई लेने नहीं आया था। फोन करने पर वाइस चांसलर साहब ने बताया कि उन्हें हम लोगों के पहले के पत्र तो मिले थे किन्तु आने का तार नहीं मिला था। असुविधा के लिए खेद प्रकाश करते हुए उन्होंने अपने पी० ए० को शीघ्र ही भेजा और हम लोगों के आवास की अनुकूल व्यवस्था करवा दी।

वाइस चांसलर शीतल प्रसाद जी बुजुर्ग सज्जन थे। उन्होंने हम लोगों के कार्यक्रम के निर्धारण के लिए डॉ० राम विलास शर्मा एवं डॉ० हरिहर नाथ

टंडन को बुलवाया। इन दोनों विद्वानों का मुझ पर स्नेह रहा है। दूसरे दिन शाम को साढ़े चार बजे फैकल्टी के सदस्यों तथा पत्रकारों के साथ चाय गोष्ठी तथा छः बजे विश्वविद्यालय के लान पर जन-सभा के आयोजन का निश्चय हुआ। शीतल प्रसाद जी ने आग्रहपूर्वक अनुरोध किया कि आज शाम और कल सुबह के समय का सदुपयोग हम लोग आगरा, फतेहपुर सीकरी के ऐतिहासिक स्थानों के निरीक्षण द्वारा करें। उन्होंने विश्वविद्यालय की एक गाड़ी भी हम लोगों की सेवा में नियुक्त कर दी। यह सौजन्य हम लोगों को अच्छा लगा।

× × ×

२४–६। दूसरे दिन शाम को चाय के बहाने बांगला देश के बारे में अन्तरंग चर्चा ही होती रही। वाइस चांसलर साहब ने डॉ० मल्लिक तथा शिष्टमंडल के सदस्यों का स्वागत करते हुए बांगला देश के प्रति अपनी पूरी और सच्ची सहानुभूति व्यक्त की। मैंने बताया कि कलकत्ता विश्वविद्यालय बांगला देश सहायक समिति को बाहर से सबसे पहले आगरा विश्वविद्यालय द्वारा प्रेषित दस हजार रुपये का चेक मिला था। अपनी कृतज्ञता व्यक्त करने और बांगला देश की व्यथा आप सब के सामने रखने के लिए ही हम लोग यहाँ आये हैं। डॉ० मल्लिक ने अपनी संक्षिप्त वार्त्ता में बांगला देश के मुक्ति युद्ध के कारण और स्वरूप का परिचय दिया। फिर प्रश्नोत्तरों की झड़ी सी लग गयी। देश की जनता में बांगला देश के प्रति कितनी ममता, जिज्ञासा और चिन्ता है, इन प्रश्नों से यही स्पष्ट होता रहा। डॉ० मल्लिक के उत्तर बड़े माकूल होते हैं।

जन-सभा की उपस्थिति चार सौ के लगभग थी। अध्यक्ष शीतल प्रसाद जी के स्वागत भाषण के बाद डॉ० मल्लिक और डॉ० अनीसुज्जमान ने पाकिस्तानी शोषण और अत्याचार के विरुद्ध संग्रामरत बांगला देश के राजनीतिक, सांस्कृतिक विश्वासों की विस्तृत चर्चा की और आशा प्रकट की कि भारत की जनता पूरी तरह इस मुक्ति संग्राम का समर्थन करेगी। भारत-बांगला देश के पारस्परिक सहयोग की आवश्यकता पर मैं भी बोला। श्रोताओं की प्रतिक्रियाएँ बहुत अनुकूल थीं।

पं० जगन्नाथ तिवारी डॉ० रामविलास शर्मा, डॉ० हरिहरनाथ टंडन जैसे गुरुजनों एवं राजेन्द्र रघुवंशी, घनश्याम अस्थाना जैसे बन्धुओं से थोड़ी-बहुत साहित्य चर्चा भी हो गयी।

रात की गाड़ी से हम लोग लखनऊ के लिए रवाना हो गये ।

२५–६ । लखनऊ विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्र विभाग के अध्यक्ष डॉ० वीर बहादुर सिंह, कम्यूनिस्ट नेता श्री रमेश सिन्हा तथा कुछ और सज्जन हम लोगों के स्वागतार्थ लखनऊ स्टेशन पर आये हुए थे । यहाँ हम लोग राजकीय अतिथि भवन में ठहराये गये ।

आज ग्यारह बजे ही लखनऊ विश्वविद्यालय के प्राध्यापकों की सभा आयोजित थी । हम लोग जल्दी-जल्दी तैयार हो कर वहाँ पहुँचे । छुट्टियों के कारण उपस्थिति अधिक नहीं थी, फिर भी सत्तर के करीब प्राध्यापक तो रहे ही होंगे । डॉ० वीर बहादुर सिंह, डॉ० जी० सी० मिश्र, डॉ० हरिकृष्ण अवस्थी आदि ने हम लोगों का स्वागत किया । वाइस चांसलर साहब लखनऊ के बाहर गये हुए थे । डॉ० मिश्र की अध्यक्षता में सभा की कार्यवाही शुरू हुई । डॉ० मल्लिक ने बांगला देश की राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों का विश्लेषण कर बताया कि सम्मानपूर्ण जीवन के लिए बांगला देश के सामने एक ही रास्ता था मुक्ति युद्ध का । हमने उसे चुन लिया है । सारे संसार की और विशेषतः भारत की सक्रिय सहायता की हम अपेक्षा करते हैं । उनके व्याख्यान के बाद कुछ प्रश्नोत्तर भी हुए । बांगला देश से समागत विस्थापित प्राध्यापकों, शिक्षकों की समस्या और उसे सहृदयतापूर्वक सुलझाने के लिए कलकत्ता विश्वविद्यालय बांगला देश सहायक समिति की प्रस्तावित योजना पर मैं बोला । मैंने लखनऊ के शिक्षाविदों से अपील भी की कि वे अपना पूरा सहयोग हमें दें ।

शाम को ५ बजे डॉ० मल्लिक को स्थानीय पत्रकारों ने सूचना विभाग के कक्ष में आमंत्रित किया था । दिल्ली की ही तरह लखनऊ के पत्रकार भी बहुत सहयोग परायण निकले । वास्तव में बांगला देश के मुक्तियुद्ध के प्रति भारतीय जनता में इतनी व्यापक सहानुभूति थी कि पत्रकार बन्धु उसके सम्बन्ध में प्रामाणिक सूचना देने के किसी अवसर को हाथ से जाने नहीं देना चाहते थे । यहीं बन्धुवर ठाकुर प्रसाद सिंह से भी मुलाकात हुई, जो अस्वस्थ होते हुए भी बां .ला देश के प्रतिनिधियों से मिलने के लिए चले आये थे ।

साढ़े छः बजे उत्तर प्रदेश की उपमंत्री बेगम हबीबुल्ला के यहाँ चाय गोष्ठी के साथ-ही-साथ विशिष्ट नागरिकों की बैठक भी थी । हिन्दी के प्रमुख कथा-

-कार भगवतीचरण वर्मा और यशपाल जी भी पधारे थे। अमृत लाल नागर सूकर खेत गये हुए थे तुलसी पर उपन्यास लिखने की सामग्री बटोरने अतः वे नहीं आ सके थे। डॉ० मल्लिक और अनीसुज्जमान थोड़ा-थोड़ा बोले और फिर सभागतों से बात-चीत करते रहे। बड़ा अच्छा आत्मीयतापूर्ण वातावरण था। मेजर जेनरल हबीबुल्ला साहब भी बांगला देश के बड़े समर्थक लगे।

२६–६–७१। आज के सभी स्थानीय अखबारों में कल की प्रेस गोष्ठी का अच्छा विवरण आया था। आज ही हम लोगों को लौटना था। डॉ० वीर बहादुर सिंह, रमेश सिन्हा, प्रेम खन्ना, श्री त्रिपाठी वगैरह स्टेशन तक पहुँचाने आये। लखनऊ में इलाहाबाद की सी आन्तरिकता और अलीगढ़ की सी अर्थ-साध्य अतिथि परायणता दोनों मिली। सभी साथी विशेषतः डॉ० मल्लिक बहुत प्रसन्न थे…'हम फिदा ए लखनऊ हैं, लखनऊ हम पे फिदा'…की सी स्थिति समझ लीजिये।

अब हम लोग घर लौट रहे थे। सभी के चेहरों पर सन्तोष की आभा थी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि हम लोगों की यह यात्रा उत्तर भारतीय जनता…विशेषतः बुद्धिजीवियों के मध्य बांगला देश के प्रति सहानुभूति-सद्भाव को प्रगाढ़ करने में बहुत दूर तक सफल रही थी। इलाहाबाद, अलीगढ़, दिल्ली, आगरा, लखनऊ प्रत्येक नगर के समाचार पत्रों में हम लोगों की गतिविधि के विस्तृत विवरण प्रकाशित हुए थे। बांगला देश की समस्या को दलगत राजनीति से मुक्त रख कर उच्च बौद्धिक धरातल पर उजागर करने के हमारे प्रयास की सराहना विवेकशील व्यक्तियों ने की। बांगला देश के विस्थापित बुद्धिजीवियों के अस्थायी पुनर्वासन के लिए केन्द्रीय सरकार तथा विविध विश्वविद्यालयों के अधिकारियों से बातचीत कर अपनी कई योजनाओं के लिए आर्थिक सहयोग पाने की तथा कुछ विशिष्ट विद्वानों की अस्थायी नियुक्ति की हमारी चेष्टा का कुछ सुफल तो हुआ ही तथा कुछ और होगा, इसका हम सब को विश्वास था। जून की सख्त गर्मी में की गयी लगातार यात्रा और दौड़-धूप ने, मुलाकातों, वक्तृताओं और वार्त्ताओं ने चाहे जितना थकाया हो, कहीं मन में यह भाव भी जगाया कि हम लोग इतिहास की महान् क्रान्ति के निष्क्रिय दर्शकों की नहीं, सक्रिय सहयोगियों की भूमिका अदा कर रहे हैं।

मनुष्य अपनी इकाई में तो छोटा ही है। समष्टि के साथ मिलकर किसी बड़े उद्देश्य से मिल कर ही वह बड़ा हो पाता है। जब किसी बड़ी चुनौती को स्वीकार कर आदमी उससे पूरी शक्ति से भिड़ जाता है, तब उसे अपने नये रूप का, अपने में ही छिपी नयी विशेषताओं का परिचय मिलता है। बांगला देश के इस मुक्ति युद्ध ने बंगाली चरित्र को···विशेषतः बंगाली मुस्लिम चरित्र को काफी बदला है। कम-से-कम अभी तो ऐसा ही लगता है। उसकी लपेट में आ जाने के कारण मुझे भी उस परिवर्त्तन ने छुआ इसे मैं अपना सौभाग्य समझता हूँ।

हम बांगला देश की अलख जगाने निकले थे और निष्ठापूर्वक यह कह सकते हैं कि हमने अपना काम पूरी लगन के साथ किया।

ये क्रान्तिवाही विस्थापित·····और हम

'मेरी जेब में सिर्फ दो रुपये बचे हैं और मैं नहीं जानता कि इनके खत्म हो जाने के बाद मैं क्या करूँगा।'···

कहने वाले का स्वर भावहीन था किन्तु सुनने वालों के लिए ये शब्द पैने बर्छों के समान थे जो कलेजे को चीरते हुए निकल गये थे। कहने वाले थे डॉ० एम० ए० सालेह, चटगांव विश्वविद्यालय के रसायन-विभाग के सीनियर लेक्चरर और सुनने वाले थे कलकत्ता विश्वविद्यालय बांगला देश सहायक समिति के कार्यकर्त्ता। सामयिक रूप से कुछ अपर्याप्त-सी व्यवस्था की गयी किन्तु समस्या की गंभीरता तो ज्यों-की-त्यों बनी रही। विदेश से रसायन विज्ञान में डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त करने वाले विद्वान की ऐसी दुर्गति क्यों?

सूखे चेहरे, सूनी आँखें, भद्रता की रक्षा करने के लिए यथासंभव साफ पोशाक पहने पर अरक्षा और अनिश्चय से मलीन मुख लिये बांगला देश से आये शिक्षकों, प्राध्यापकों की भीड़ कलकत्ता विश्वविद्यालय के दरभंगा हाल में लगी ही रहती है इन दिनों। उन्होंने सुना है कि कलकत्ता विश्वविद्यालय बांगला देश सहायक समिति द्वारा बांगला देश से आये शिक्षकों, प्राध्यापकों के नाम दर्ज किये जा रहे हैं और उन्हें काम दिलाने की चेष्टा की जा रही है। मुफस्सिल इलाकों से भी वे लोग आते हैं नाम, योग्यता, अनुभव, वर्तमान पता लिखवा कर चले जाते हैं। जो बात मुँह से वे नहीं बोल पाते, वह उनकी आँखें बोलती हैं। माध्यम चाहे शब्द हों, चाहे छेद देने वाली नजर, चाहे उदास गहरी सांस···कथ्य सदा एक ही होता है 'किछू करुन, नइले मारा पड़बो···पारबे न किछू करते। (कुछ कीजिये, नहीं तो मर जायेंगे···कर सकेंगे कुछ?) बेबसी, लाचारी और याचना की ग्लानि से भरा यह कथन एक तरफ और नाम, पता दर्ज करते रहने की विवशता तथा सहानुभूति के शब्द दूसरी तरफ। फिर भी आशा का अदृश्य सेतु आत्मीयता के वातावरण में दोनों पक्षों को जोड़ता है और काम चलता रहता है।

क्या अपराध था इन अभागे बुद्धिजीवियों का ? क्यों इन्हें लगी लगायी नौकरी, घर-बार, अपना प्यारा बांगला देश छोड़कर अनिश्चित, अरक्षित भविष्य लिए इस ओर आना पड़ा ? क्यों यहिया खाँ की सरकार इनके खून की प्यासी है ? क्यों टिक्का खां की फौजी हुकूमत चुन-चुन कर बुद्धिजीवियों को मौत के घाट उतार रही है ?

क्योंकि इन्होंने पश्चिमी पाकिस्तानी···विशेषतः पंजाबी शासक-पूँजीपति गुट की नकाब फाड़ दी थी। इन्होंने बताया था कि किस प्रकार इस्लाम के नाम की ओट लेकर मुट्ठी भर फौजी जनरलों और दो दर्जन परिवारों की घिनौनी हरकतें पूर्वी बंगाल को श्मशान बनाती चली जा रही हैं, किस प्रकार इस्लामीकरण के नाम पर बंगाली संस्कृति और बंगला भाषा को निश्चिह्न कर देने का षड्यंत्र किया जा रहा है, किस प्रकार बुनियादी लोकतंत्र के नाम पर तानाशाही को पुख्ता बनाने का कुचक्र रचा जा रहा है, किस प्रकार इस्लामी राज्य के नाम पर हिन्दू जनता के साथ अत्याचारपूर्ण भेदभाव बरता जा रहा है। इन लोगों ने इस सब का जोरदार प्रतिवाद किया था और चाहा था कि धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था पाकिस्तान में भी कायम हो, पूर्व पाकिस्तान को उसके न्यायोचित अधिकार मिलें, आर्थिक विषमता दूर हो। इस नयी चेतना को छात्रों और राजनीतिक कार्यकर्ताओं के माध्यम से सम्पूर्ण देशवासियों में फैलाने का भयंकर अपराध करने के कारण ही ये बुद्धिजीवी पाकिस्तानी फौजी शासकों की आँखों में काँटों की तरह खटक रहे थे, खटक रहे हैं और खटकते रहेंगे।

वैसे तो सभी बुद्धिजीवियों ने इस लड़ाई में शानदार हिस्सा लिया किन्तु वैचारिक नेतृत्व विश्वविद्यालयों (मुख्यतः ढाका विश्वविद्यालय) के प्राध्यापकों ने विशेषतः बंगला अर्थशास्त्र तथा राजनीति विज्ञान के प्राध्यापकों ने किया और भावात्मक नवनिर्माण की दिशा दिखाई कवियों, कथाकारों, रंगकर्मियों ने। शायद ही किसी देश की क्रान्ति में भाषा का सवाल इतने प्रमुख रूप से उभरा हो, जितने प्रमुख रूप से वह पूर्वी पाकिस्तान को 'बांगला देश' बनाने की क्रान्ति में उभरा। पाकिस्तानी शासकों की दृष्टि में उर्दू इस्लामी भाषा थी और बंगला हिन्दू भाषा। अतः पाकिस्तान के ५५ प्रतिशत निवासियों की भाषा होने पर भी बंगला को बहिष्कृत कर केवल ५ प्रतिशत पाकिस्तानी जनता द्वारा बोली जाने वाली भाषा उर्दू को ही पाकिस्तान की एकमात्र राष्ट्रभाषा घोषित करने में कायदे आजम जिन्ना को या मुस्लिमलीग को कोई दुविधा नहीं हुई। १९४७ में ही छात्र-प्राध्यापक समाज द्वारा इस घोषणा का प्रतिवाद किया

गया था। २१ फरवरी १९४८ से २१ फरवरी १९५२ तक बंगला को भी पाकिस्तान की राष्ट्रभाषा बनाने का संघबद्ध आन्दोलन चलता रहा, ढाका की सड़कों पर बंगाली नौजवानों ने अपना खून बहाकर कई बहुमूल्य प्राणों की बलि चढ़ाकर बंगला को राष्ट्रभाषा का सम्मान देने के लिए पाकिस्तानी शासकों को विवश कर दिया।

उर्दू को पूर्वी पाकिस्तान की जाग्रत जनता पर थोपने में असमर्थ होने पर पाकिस्तानी मुस्लिम लीगी सरकार ने हिन्दू बंगला भाषा की 'सुन्नत' करने की योजना बनाई। १९४८–४९ में ही इसकी भरपूर चेष्टा की गई कि मुस्लिम बंगाली विद्वान बंगला के लिए अरबी लिपि को स्वीकार कर लें। वयोवृद्ध विद्वान डॉक्टर मुहम्मद शहीदुल्ला को पाकिस्तान का सर्वोच्च सम्मान देने का लालच दिया गया ताकि वे इस प्रस्ताव के पक्ष में हो जायें। डॉ० शहीदुल्ला ने दृढ़तापूर्वक इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया। डॉ० एनामुल हक आदि अन्य विद्वानों ने भी इसका घोर विरोध किया। फलतः बंगला के लिए अरबी लिपि की योजना केवल कुछ लोगों का दिमागी खयाल बनकर ही रह गयी।

लिपि के मोर्चे पर असफल होने के बाद १९४९ ई० में बंगला के शब्दों, सन्दर्भों, मिथकों, अन्तर्कथाओं का इस्लामीकरण करने के लिए एक समिति बनायी गयी। कई महीनों के श्रम के बाद उसने जो रिपोर्ट दी उसमें इस पर खेद प्रकट किया गया कि बंगाली मुसलमान लेखक भी अपनी रचनाओं में हिन्दू भावापन्न शब्दों का प्रयोग करते हैं, उनके स्थान पर इस्लामी भावना के अनुकूल शब्दों का प्रयोग करने का सुझाव भी दिया गया, उदाहरणार्थ—'आग्नी जन्म जन्मान्तर पर्यन्त तोमार जन्य प्रतीक्षा करबो' (मैं जन्म-जन्मान्तर तक तुम्हारे लिए प्रतीक्षा करूँगा) जैसे प्रयोगों पर सख्त आपत्ति की गयी थी। जन्म-जन्मान्तर की धारणा तो हिन्दू भावापन्न है अतः इस्लाम विरोधी है। 'जन्मान्तर पर्यन्त' के स्थान पर 'रोजे कयामत पर्यन्त' (कयामत के दिन तक) का प्रयोग करने की सलाह दी गयी थी। इसी तरह आदर्श महिलाओं के उदाहरण के लिए 'सीता-सावित्री' का प्रयोग निषिद्ध ठहराया गया था और कहा गया था कि उनके स्थान पर 'वीबी रहीमा' का प्रयोग करना चाहिये।

मुसलमान बंगाली कवियों, लेखकों, पत्रकारों ने एक स्वर से इसका विरोध किया। उनका कहना था कि 'जन्म-जन्मान्तर जैसे प्रयोग भाषा के अपने मुहावरे हैं, उन्हें बदलने से भाषा का सौन्दर्य नष्ट हो जायेगा। सीता-सावित्री जैसे पौराणिक चरित्रों को सांस्कृतिक विरासत के रूप में ग्रहण करना उचित है अतः उनके प्रयोग में धर्म को बाधक नहीं बनना चाहिए। यदि

फारसी साहित्य में गैर मुस्लिम सोहराब रुस्तम के साहित्यिक प्रयोग पर इस्लाम को आपत्ति नहीं है, तो बंगला साहित्य में सीता-सावित्री या उन्हीं के सदृश अन्य बंगाली मिथक चरित्रों के प्रयोगों पर पाकिस्तानी शासकों को क्यों आपत्ति होनी चाहिये ? उस समिति की सिफारिशें रद्दी की टोकरी में फेंक दीं गयीं और बंगाली मुसलमान लेखक धड़ल्ले से तथाकथित 'निषिद्ध प्रयोगों' को अपनी रचनाओं में स्थान देते रहे ।

बंगला के इस्लामीकरण की चेष्टा का एक पहलू बंगला के पाठ्यक्रम को बदल देने का प्रयास भी था । बंगाली मुसलमान छात्र-छात्राओं को कृत्तिवास की रामायण, वैष्णव कवियों की पदावली, काशीरामदास का महाभारत मनसा मंगल, चंडीमंगल जैसा पुराना बंगाली साहित्य या बंकिम, रवीन्द्र, शरत् आदि लेखकों का आधुनिक साहित्य क्यों पढ़ाया जाये ? यह सब पढ़ने से तो वे पक्के मुसलमान (अर्थात् हिन्दू द्वेषी और अपनी परम्परागत संस्कृति से घृणा करने वाले) नहीं बन पायेंगे और तो और नजरुल इस्लाम (जिन्हें पूर्वी पाकिस्तान का राष्ट्रकवि घोषित किया गया था) की भी सभी रचनाएँ क्यों पढ़ीं-पढ़ायी जायें, खास कर वे रचनाएँ जिनमें उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता की बात कही है, जिनमें उन्होंने भगवती दुर्गा या श्री राधा-कृष्ण की वन्दना या लीलाओं का गान किया है । वर्षों तक सरकार और (मुख्यतः) ढाका विश्वविद्यालय के बांगला विभाग में रस्साकशी चलती रही । डॉ० शहीदुल्ला, डॉ० एनामुलहक, डॉ० सैयदअली अहसान आदि विद्वान इस पर अड़े रहे कि भाषा और साहित्य के विकास का ज्ञान करने और अपनी संस्कृति से अवगत होने लिए इन सब का अध्ययन अनिवार्य है । उनका कहना था कि बंगला विभाग बन्द कर दिया जा सकता है किन्तु इनका अध्ययन-अध्यापन बन्द नहीं किया जा सकता । उनकी दृढ़ता के सामने सरकार को हार माननी पड़ी ।

बंगला को विकृत करने की आखिरी चेष्टा अयूबशाही के दिनों में की गयी । १९६१–६२ में बंगला के लिए रोमन लिपि प्रस्तावित की गयी । टाइपराइटर, प्रेस आदि की सुविधाओं की दुहाई दी गई किन्तु प्रो० मुहम्मद अब्दुल हाई, डॉ० सैयद अली अहसान आदि विद्वानों ने इसे भी अस्वीकृत कर दिया । जनमत तो उनके साथ था ही अतः पाकिस्तानी सरकार की दाल नहीं गल पायी ।

बंगला के यशस्वी लेखकों और कवियों ने साम्प्रदायिक एकता, धर्मनिरपेक्षता, लोकतंत्र तथा प्रगतिशील सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था के लिए वातावरण तैयार करने में अपूर्व सहयोग दिया । सैयद वली उल्लाह की

'एकटि तुलसी गाछेर काहिनी' शौकत उस्मान कृत 'क्रीतदासेर हासि' (उपन्यास), शहीदुल्लाकेसर कृत सारेंगे वो (मल्लाह की बहू, उपन्यास) तथा जसीमुद्दीन, शम्मुर्रहमान, सिकन्दर अबू जफर आदि की कविताएँ इस दृष्टि से बहुत ही सराहनीय रचनाएँ हैं। साहित्यकारों और जनता के मिजाज का कुछ अनुमान इसी तथ्य से लगाया जा सकता है कि १९६५ ई० में पाक-भारत युद्ध के समय से पाक रेडियो से रवीन्द्र संगीत के बहिष्कृत होने और रवीन्द्र जयन्ती को बन्द करने के सरकारी षड्यंत्र का जवाब उन्होंने महीने भर तक 'रवीन्द्र जयन्ती' मना कर दिया।

दूसरी तरफ ढाका विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्र विभाग के प्रमुख प्राध्यापकों ने अपनी गवेषणाओं, पुस्तकों तथा लेख आदि के द्वारा यह दिखाया कि इस्लामी भाईचारे के नाम पर पश्चिमी पाकिस्तान किस निर्लज्जता और हृदयहीनता से पूर्वी पाकिस्तान का शोषण कर रहा है! डॉ० सादिक, डॉ० हुदा (जो बाद में गवर्नर भी हुए और प्लैनिंग कमीशन के सदस्य भी) डॉ० नूरुलइस्लाम, डॉ० अनीसुर्रहमान, डॉ० महमूद (जिन्हें १९६९ में सरकारी गुण्डों द्वारा पीटा गया और जो उसके बाद आई० एम० एफ० की नौकरी स्वीकार कर विदेश चले गये। जनाब रहमान सुमान (जो इन दिनों अमेरिका में बांगला देश सरकार के प्रतिनिधि हैं) आदि ने दिखाया कि विदेशी मुद्रा का सत्तर प्रतिशत पूर्वी पाकिस्तान उपार्जित करता है और इसका केवल दस प्रतिशत ही उस पर खर्च किया जाता है, विदेशी सहायता का अस्सी प्रतिशत पश्चिमी पाकिस्तान को तथा कुल बीस प्रतिशत पूर्वी पाकिस्तान को दिया जाता है, जो घाटे में चलने वाले विभाग हैं (जैसे रेलवे) उनका प्रादेशिकीकरण कर दिया जाता है और जो फायदे में चलने वाले उद्योग हैं उन्हें पूर्वी पाकिस्तान के सरकारी खर्च से विकसित कर पश्चिमी पाकिस्तान के उद्योगपतियों को (जैसे कर्णफूली पेपर मिल दाउद परिवार को दे दी गयी) सौंप दिया जाता है या केन्द्र के नियंत्रण में रखा जाता है। इन तथ्यों का प्रकाशन पूर्वी पाकिस्तान को उपनिवेश बनाने वाली पाकिस्तानी सरकार को कैसे अच्छा लग सकता था ?

राजशाही विश्वविद्यालय के राजनीति शास्त्र विभाग के प्राध्यापक बदरुद्दीन उमर ने तो 'साम्प्रदायिकता', 'संस्कृतिर संकट' (पाक सरकार द्वारा जब्त), सांस्कृतिक साम्प्रदायिकता, 'पूर्व बांगलार भाषा आन्दोलन और तत्कालीन राजनीति' जैसी विस्फोटक पुस्तकें लिखकर पाकिस्तान की बुनियाद जिस पड़ी थी उस द्विराष्ट्रवाद के सिद्धान्त को ही छिन्न-भिन्न कर देना चाहा।

चटगांव विश्वविद्यालय के उपकुलपति डॉ० अजीजुर्रहमान मल्लिक ने हिन्दू छात्रों की भावनाओं का समादर करने के लिए विश्वविद्यालय के छात्रावासों में गोमांस का प्रवेश निषिद्ध कर दिया। उनका अनुकरण अन्य विश्वविद्यालयों में भी हुआ। विश्वविद्यालयों में छात्रवृत्ति आदि के प्रश्न पर भी धर्म के स्थान पर योग्यता को आधार बनाने का निर्णय किया गया।

केवल विचारों और भावों के क्षेत्र में ही नहीं, कर्म के क्षेत्र में भी बुद्धिजीवियों ने देश की जनता का साथ दिया। जलूसों, सभाओं, हड़तालों, आन्दोलनों में आगे बढ़कर हिस्सा लिया। राजशाही विश्वविद्यालय के रसायन विभाग के रीडर डॉ० शम्सुज्जोहा की १८ फरवरी १९६९ को विश्वविद्यालय के छात्रों पर होनेवाले फौजी अत्याचारों का प्रतिवाद करने के अपराध में गोली मार कर तथा संगीन भोंक कर हत्या कर दी गयी थी। अयूबशाही का पतन इसके चलते और जल्दी संभव हो सका था।

१९४७ में पूर्वी बंगाल के मुसलमानों का कट्टर धर्मोन्मादी मनोभाव नोआखाली के दंगों में प्रतिफलित हुआ था। आज उसी पूर्वी बंगाल का मुस्लिम समाज अपेक्षाकृत रूप से असाम्प्रदायिक, अपनी गैर-इस्लामी परम्परा का भी गौरव बोध करनेवाला कैसे हो गया? निश्चय ही इस परिवर्तन में शेख मुजीबुर्रहमान जैसे उदार और देशभक्त राजनीतिज्ञों का बहुत बड़ा योगदान है किन्तु इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि इसके मूल में इन बुद्धिजीवियों द्वारा वैचारिक और भावात्मक स्तर पर की गयी क्रान्ति ही है। अतः इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं कि यहिया खां की नादिरशाही का सबसे पहले शिकार ढाका विश्वविद्यालय हुआ।

२५ मार्च, १९७१ की खूनी रात को ११ बजे से ४ बजे तक टैंकों और आर्मर्डकारों सुसज्जित फौजी दस्ते ढाका विश्वविद्यालय पर कहर ढाते रहे। स्मरण रहे कि उस समय ढाका में न १४४ धारा लगी थी, न कर्फ्यू ही था, न छात्र उस समय कोई सभा या प्रदर्शन ही कर रहे थे। निष्ठुर और खूंख्वार रणनीति के अनुसार विश्वविद्यालय को चारों तरफ से घेर कर दो घंटों तक गोलाबारी करने के बाद यहिया के फौजी दरिन्दे कैम्पस में घुसे और उन्होंने कत्लेआम मचा दिया। यह कहना कठिन है कि उस रात कितने प्राध्यापकों और छात्र-छात्राओं की हत्या की गयी। एक संयत अनुमान के अनुसार कम-से-कम १४ विभागाध्यक्षों एवं प्राध्यापकों को उनके आवास गृह में घुस कर गोली

मार दी गयी जिनमें अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त, दर्शन विभागाध्यक्ष, डॉ० गोविन्द-चन्द्रदेव, डॉ० मनीरुज्जमान (स्टैस्टिस्टिक्स) डॉ० ज्योतिर्मय गुह ठाकुर का (अंग्रेजी) डॉ० अबूसालेह (शिक्षा) डॉ० फजले रहमान (भूमि विज्ञान) जनाव ए० आर० खान (फिजिक्स) जैसे विद्वान भी सम्मिलित हैं। इकबाल हाल जगन्नाथ हाल तथा सलीमुल्ला हाल में रहने वाला हर छात्र मारा गया।

बाद के दिनों में अन्यान्य विश्वविद्यालयों में छोटे पैमाने पर इसी की पुनरावृत्ति हुई। पाकिस्तानी अधिकारियों ने खतरनाक बुद्धिजीवियों की एक लम्बी सूची बना रखी है और उसी के अनुसार वे लोग एक-एक कर बुद्धिजीवियों का सफाया कर देना चाहते हैं और कर रहे हैं।

इस विषम परिस्थिति के कारण ही बड़ी संख्या में ये बुद्धिजीवी भारत आने के लिए विवश हुए। चटगांव विश्वविद्यालय के बंगला विभाग के रीडर डॉ० अनीसुज्जमान के शब्दों में 'हमारे सामने और कोई विकल्प नहीं था। यदि हम लोग वहाँ रहते तो या तो वे हमें मार डालते या बांगला देश के विरुद्ध प्रचार करने के लिए हमें विवश करते, जो हमारे लिए मौत से भी बदतर होता।' यह आशंका बिलकुल सही है, इसका प्रमाण राजशाही विश्वविद्यालय के उपकुलपति डॉ० सज्जाद हुसेन का आचरण है। कलतक वे शेखमुजीव के समर्थक थे, अवामी लीग की अतुलनीय विजय पर शेख मुजीब को सबसे पहले बधाइयाँ देने गये थे आज वे 'पूर्वी पाकिस्तान' की शिक्षापद्धति का इस्लामीकरण करने के लिए गठित आयोग के प्रधान हैं और सम्प्रति पाकिस्तानी बर्बरता पर लीपापोती करने अमेरिका गये हुए हैं। सच तो यह है कि भारत आये स्वाभिमानी बुद्धिजीवियों का 'पूर्वी पाकिस्तान' में लौटने का आज रास्ता वन्द है। इसे केवल लाक्षणिक प्रयोग न समझा जाये। टिक्का खां की कठपुतली बने डॉ० सज्जाद हुसेन ने राजशाही विश्वविद्यालय को पुनः चालू करने की आतुरता में अपने सहयोगियों की सुरक्षा की व्यक्तिगत जिम्मेदारी लेते हुए प्राध्यापकों से काम पर लौटने का आग्रह किया। कुछ प्राध्यापक लौटे भी किन्तु फौजी अधिकारियों ने विश्वासघात करते हुए उनमें से चार को मौत के घाट उतार दिया। उनका अपराध ? नहीं मालूम। वही बात है 'सजा को जानते हैं हम, खुदा-जाने खता क्या है ?' उन चारों प्राध्यापकों के नाम हैं, ऐप्लायेड फिजिक्स के विभागाध्यक्ष डॉ० ए० रऊद, स्टैटिस्टिक्स के रीडर डॉ० सालेह अहमद, गणित विभाग के रीडर प्रो० हबीबुर्रहमान तथा कानून विभाग के रीडर डॉ० अब्दुल हक। इस हत्याकांड ने इस

बात की खुली चेतावनी दे दी है कि 'पूर्वी पाकिस्तान' में कोई बंगाली बुद्धिजीवी सुरक्षित नहीं है। यह भी सच है कि ये बुद्धिजीवी हमेशा के लिए भारत में रहने नहीं आये हैं। वे जल्दी से जल्दी स्वतंत्र 'बांगला देश' में लौट जाना चाहते हैं।

किन्तु जब तक वैसी स्थिति नहीं आती तबतक क्या हो ? धर्म निरपेक्षता, लोकतंत्र और समानता पर आधारित सामाजिक व्यवस्था के लिए संघर्ष करने वाले इन क्रान्तिवाही विस्थापित बुद्धिजीवियों को मरने के लिए या कुंठित विघटित होकर दर-दर की ठोकरें खाने के लिए बेसहारा छोड़ा जा सकता है क्या ? याद रहे इनके मरने या टूट जाने का मतलब होगा बांगला देश की क्रान्ति का मरना या टूट जाना, उन मूल्यों का चकनाचूर हो जाना जिनके आधार पर ही घृणा, रक्तपात और अत्याचार का वातावरण बदल कर भारत के पूर्वी सीमान्त पर प्रेम, सौहार्द्र और सहयोग का वातावरण निर्मित किया जा सकता है। इतिहास ने आज हमें ऐसे मोड़ पर ला खड़ा किया है कि हम अपनी जिम्मेदारी से कतरा नहीं सकते। हमें मालूम है कि पैंसठ लाख विस्थापितों का गुरुभार हमें ढोना पड़ रहा है फिर भी छः साढे छः हजार बुद्धिजीवियों प्राध्यापकों, शिक्षकों, कवियों, लेखकों, गायकों, चित्रकारों, रंगमंच एवं चलचित्र के कलाकारों के लिए इतनी सुविधा जुटा देना क्या हमारा कर्त्तव्य नहीं है कि वे न केवल जीवित रहें बल्कि क्रान्ति की अग्निशिखा को जीवित रखने के लिए अपने क्षेत्र में सक्रिय भी रह सकें ? क्या ऐसा होने पर ही वह दिन और करीब नहीं आयेगा जब ये पैंसठ लाख विस्थापित निर्भय होकर 'बांगला देश' को वापिस लौट सकेंगे ? हमें गौर से सोचना होगा कि इन क्रान्तिवाही विस्थापितों के लिए हम क्या कर सकते हैं ? और अपने उस चिन्तन को यथाशीघ्र कर्म का रूप देना होगा। हमारे सही निर्णय और कार्य पर ही बांगला देश की क्रान्ति का (और हमारा भी) भविष्य निर्भर करता है।

१०.

ये सतत संघर्ष की घड़ियाँ अमर होंगी।

'शेख मुजीबेर मुक्ति चाई'

'शेख मुजीब जिन्दाबाद।'

'यहिया-भुट्टो भाई-भाई,

एक डोरी ते फाँसी चाई।'

'दियेथि तो रक्त, आरो देवो रक्त'

'रक्तेर बदले रक्त चाई।'

अग्निवर्षी नारे। कठोर संकल्प से सख्त हो गये चेहरे। बँधी मुट्ठियाँ, आँखों में उन्माद। धड़कते दिलों में आशंका···अपने लिए नहीं, शेख मुजीब के प्राणों के लिए। पाकिस्तानी दरिन्दों ने घोषणा की है कि शेख मुजीब पर फौजी अदालत में मुकदमा चलेगा। मुकदमा या न्याय का प्रहसन ? दस लाल प्राणों की बलि से यहिया खां का पाक फौजी शासक गुट सन्तुष्ट नहीं हुआ है, उसकी नारकीय क्षुधा की तृप्ति के लिए साढ़े सात करोड़ बांगला देशवासियों के प्राणों के प्राण शेख मुजीब के प्राण चाहिए। जो व्यक्ति पाकिस्तान के पहले आम चुनाव में जनता के प्रचंड समर्थन से स्पष्ट बहुमत पाकर अपने देश के भावी प्रधान मंत्री के रूप में उभरा, वह तो हो गया गद्दार और जिस व्यक्ति को जनता द्वारा अस्वीकृत एवं तिरस्कृत अय्यूब खां ने षड्यंत्र करके अपने उत्तराधिकारी के रूप में तख्त पर बैठा दिया और जिसने स्वयं पाकिस्तान में लोकतंत्र का गला घोंट दिया, लाखों निरीह व्यक्तियों को गोलियों से भुनवा डाला, चंगेज, तैमूर और नादिरशाह के अत्याचारों को भी बौना बना दिया वही हो गया देश भक्ति का ठेकेदार। अंधे और बहरे भी ऐसा नहीं कह सकते पर शक्ति-सन्तुलन ही जिन बड़े राष्ट्रों के लिए एकमात्र नैतिक मूल्य है, स्वार्थ ने जिनके विवेक और न्याय बोध पर पर्दा डाल दिया है, उनके लिए यही सच है। लेकिन सरकारें ही सब कुछ नहीं हैं। पाकिस्तान और उसके लग्गू-भग्गू बड़े-छोटे देशों की सरकारें चाहे

मुखर रूप से, चाहे मौन रूप से इस पाप की सहभागी भले बनें किन्तु बांगला देश की ही नहीं, सारी दुनिया की विवेकशील जनता न्याय के नाम पर इस घृणित हत्याकांड का विरोध करने के लिए कटिबद्ध है। उसी का छोटा सा निदर्शन था वह विक्षोभ-प्रदर्शन जो बांगला देश के प्रवासी बुद्धिजीवियों द्वारा १२ अगस्त के पूर्वाह्न में बांगला देश मिशन के सामने आयोजित किया गया था, जिसमें रह-रह कर ऊपर लिखे नारे लगाये जा रहे थे।

× × ×

एक दिन पहले ही बन्धुवर गोविन्द प्रसाद केजरीवाल ने फोन किया था कि मैं साप्ताहिक हिन्दुस्तान की तरफ से बांगला देश की हकीकत को अपनी आँखों देखने आया हूँ, आप इसमें सहयोग दें। मैंने उन्हें इसी सभा में बुला लिया था। बांगला देश के प्रवासी प्राध्यापक, साहित्यकार, कलाकार बड़ी संख्या में जुटे थे। सहानुभूति और सक्रिय सहयोगिता के प्रमाण स्वरूप कलकत्ते के भी बहुत से बुद्धिजीवी उपस्थित थे। नारों के बीच में गोविन्द जी से बांगला देश के विशिष्ट व्यक्तियों का परिचय करा रहा था, ये हैं डॉ० अजीजुर्रहमान मल्लिक, चटगांव विश्वविद्यालय के उपकुलपति तथा बांगला देश के बुद्धिजीवी मुक्ति परिषद् के अध्यक्ष, ये हैं जहीर रायान, कथाकार और फिल्म डाइरेक्टर तथा बुद्धिजीवी मुक्ति परिषद् के मंत्री, ये गणेश दासगुप्त, प्रख्यात प्रगतिशील लेखक, ये विख्यात चित्रकार कमरुलहसन, ये प्राध्यापक अजय राय और ये···और ये···।

डॉ० मल्लिक की अध्यक्षता में सभा। भाषा के चमत्कार या व्याख्यानबाजी के लटके नहीं, दिल से निकली, दृढ़ निश्चय से ओत-प्रोत खरी-खरी सीधी बातें। साम्राज्यवादी ताकतों के सहारे भी यहिया खां बांगला देश को अपना उपनिवेश नहीं बना सकता, शेख मुजीब को यदि कुछ भी हुआ तो बांगला देश से एक भी पाकिस्तानी सिपाही जिन्दा वापस नहीं जा सकेगा, बांगला देश की आजादी की लड़ाई सफल होने तक चलती ही रहेगी, शेख मुजीब की मुक्ति के लिए, सुरक्षा के लिए दुनिया भर के न्यायप्रिय देशों से अपील। कलकत्ता विश्वविद्यालय बांगला देश सहायक समिति की तरफ से मैं भी बोला। मैंने यह आशा प्रकट की कि सारी दुनिया के बुद्धिजीवियों के अनुरूप ही पश्चिमी पाकिस्तान के बुद्धिजीवी भी न्याय के इस नाटक का और शेख मुजीब को मार डालने के इस षड्यंत्र का विरोध करेंगे।

सभा के बाद लम्बा जलूस। गोविन्द जी के साथ मैं भी उसमें शामिल हूँ। अमेरिकी, ब्रिटिश, रूसी कौंसुलेटों को ज्ञापन दिया जायेगा कि शेख मुजीब

की प्राण रक्षा के लिए वे अपनी सरकारों को प्रेरित करें। अमेरिकी कौंसु-लेट के सामने कैसा उग्र किन्तु अनुशासित प्रदर्शन पाकिस्तानी हत्यारों को हथियारों और डालरों की मदद देने वाला अमेरिकी प्रशासन भी समानरूप से अपराधी है। बांगला देश का युवक नेता उमर बादशाह गरज रहा है, लोकतंत्र का ध्वजाधारी अमेरिका लोकतंत्र विरोधी तानाशाह यहिया का चाहे जितना समर्थन करे, बांगला देश की जाग्रत जनता को गुलाम नहीं बना सकता। अब भी समय है कि अमेरिका खूनी पाकिस्तानी सरकार को सहायता देना बन्द कर बांगला देश के प्रति न्याय करे। समवेत जन समूह का गगनभेदी क्रुद्ध स्वर निक्सन के कानों तक जरूर पहुँचा होगा।

× × ×

१४ अगस्त का पूर्वा। बांगला देश मिशन के प्रधान हुसेन अली साहब से बातचीत के दौरान गोविन्द जी पूछ बैठे, 'कहीं ऐसा तो नहीं है कि पाक फौजी शासकों ने मुजीब की हत्या कर दी हो और अब वे उस पर कानूनी पर्दा डालने के लिए मुकदमे का नाटक रच रहे हों?' उस मँजे हुए अकूट-नीतिज्ञ ने कहा, यदि उन्होंने ऐसा किया है, तो यह पहले दर्जे का पागलपन है, चरम मूढ़ता है किन्तु मैं नहीं समझता कि उनके होशोहवास यहाँ तक गुम हो चुके हैं कि ऐसा आत्मघाती कदम वे उठायें। बांगला देश और पाकिस्तान के बीच शेख मुजीब आखिरी कड़ी है। उनको गोली मारना उस कड़ी को भी तोड़ देना है। उनकी लाश पर वेशुमार लाशों का अम्बार लग जायेगा। मुझे तो लगता है कि मुजीब पर मुकदमा चलाने की धमकी देकर वे हमें दबाना चाहते हैं, अपने मनोनुकूल समझौते के लिए। पर अब समझौता अगर हुआ तो हमारी शर्तों पर होगा क्योंकि यह तै है कि वे इस लड़ाई को जीत नहीं सकते। ४८ घंटों में बंगालियों को ठीक कर देने की धमकी देने वालों ने देख लिया है कि कई ४८ घंटों के बीत जाने के बावजूद बांगला देश के लिए लड़ाई तेज होती गयी है। ज्यों-ज्यों समय बीतता जाएगा, त्यों-त्यों यह और तेज होती जायेगी।

मैंने पूछा यहिया सरकार जो आज कल भारत के साथ खुले युद्ध की धमकी दे रही है, उसका रहस्य क्या है? क्या आप समझते हैं कि भारत रूस सन्धि के बावजूद पाक और भारत के बीच युद्ध छिड़ सकता है और यदि युद्ध छिड़ा तो उसका बांगला देश पर क्या असर होगा?

पाक-भारत युद्ध की संभावना कम है। भारत रूस सन्धि के कारण यह खतरा और कम हुआ है। रूस से हुई सन्धि के फलस्वरूप भारत की शक्ति के

बढ़ने से हमें प्रसन्नता है। रूस ने अंशतः हमारा भी समर्थन किया है जिसके लिए हम उसके कृतज्ञ हैं। मेरी मान्यता है कि पाक-भारत युद्ध से बांगला देश के 'कॉज' को क्षति पहुँचेगी क्योंकि उससे विश्व का ध्यान बांगला देश की ओर से हट कर पाक-भारत की समस्याओं पर केन्द्रित हो जायेगा तथा बड़ी शक्तियों को हस्तक्षेप करने का खुला मौका मिलेगा। पाक की ये धमकियाँ इस बात का प्रमाण है कि हमारी मुक्तिवाहिनी की गति विधि प्रभावशाली होती जा रही है। पाकिस्तान भारत पर तभी हमला करेगा जब वह देखेगा कि उसे नागरिक 'मुक्ति वाहिनी' के हाथों पराजित होना पड़ सकता है, तब शायद पाक फौजी जेनरल भारत के हाथों पराजित होकर अपनी नाक बचाना चाहें।

क्या आप समझते हैं कि मुक्तिवाहिनी की शक्ति इस सीमा तक बढ़ सकती है कि पाक को भारत से टकरा कर या बिना टकराये ही बांगला देश छोड़ देना पड़े ?

"देखिये हम लोग लड़ रहे हैं। मुक्तिवाहिनी की हलचल प्रति दिन बढ़ रही है और उसके कारण दुश्मन संत्रस्त है किन्तु उसे अब भी बाहर से सैनिक तथा आर्थिक मदद मिल रही है, जिससे हमारा काम कठिन होता जा रहा है। सभी न्यायनिष्ठ व्यक्तियों और देशों को इस बात का प्रयास करना चाहिए कि पाकिस्तान को मिलने वाली फौजी मदद बन्द हो और बांगला देश की मुक्तिवाहिनी को अधिकाधिक मात्रा में शस्त्रास्त्र मिलें। हमारी संख्या दिनों-दिन बढ़ती जा रही है किन्तु हमारे पास हथियारों की कमी है, खास कर भारी हथियारों की। हमारी प्रशिक्षण सुविधाएँ भी बहुत कम हैं। हम चाहते हैं कि हमारे इस अभाव की पूर्ति हमारे मित्र देश करें।"

"फौजी मोर्चे के अलावा सांस्कृतिक आर्थिक कूटनीतिक आदि अन्य मोर्चों पर भी तो आप की लड़ाई चल रही है। क्या आप उन क्षेत्रों में अपनी उप-लब्धियों और सीमाओं की चर्चा करेंगे ?"

"सांस्कृतिक क्षेत्र से ही तो हमें लड़ाई की सबसे बड़ी प्रेरणा मिलती रही है। पश्चिमी पाकिस्तानियों ने सबसे पहले हमारी संस्कृति पर ही तो आक्रमण किया था, हमारी भाषा को बदलने की चेष्टा द्वारा। हम कह सकते हैं कि पश्चिमी पाकिस्तान नेता हमारा सांस्कृतिक विपर्यय करने में पूर्णतः असफल रहे हैं।"

गोविन्द जी बीच में ही पूछ बैठे, "भाषा पर आप लोगों ने इतना ज्यादा···धर्म से भी ज्यादा जोर क्यों दिया है ? आखिर पश्चिमी पाकिस्तान

में भी तो कई भाषाएँ हैं, वहाँ तो भाषा को लेकर इतना विवाद नहीं हुआ।'

'क्योंकि हम लोग भाषा को संस्कृति का वाहन मानते हैं और फिर इसमें धर्म कहाँ बाधा पहुँचाता है ? इस्लाम में किसी भाषा का निषेध नहीं है। अरबी भी तो हजरत मुहम्मद के पहले काफिरों की···मूर्तिपूजकों की भाषा थी। कुरान या हदीस में कहीं भी अपनी भाषा के माध्यम से अपने व्यक्तित्व या जातिगत चरित्र के प्रकाशन और विकास की मनाही नहीं है। जो लोग उर्दू को इस्लामी भाषा और बंगला को हिन्दू भाषा कहते या मानते हैं वे केवल अपनी अज्ञता का प्रमाण देते हैं या अपने किसी निहित स्वार्थ की पूर्ति चाहते हैं। जहाँ तक पश्चिमी पाकिस्तान का सवाल है, वहाँ भी कई भाषाएँ हैं 'पंजाबी, सिन्धी, बिलोची, पुश्तू आदि किन्तु वे इतनी विकसित नहीं हैं, उन इलाकों में पहले भी उर्दू के माध्यम से काम-काज होता था अतः उन्हें उर्दू पर इतनी आपत्ति नहीं हुई। हम लोगों के लिए उर्दू सर्वथा विदेशी भाषा है। यदि हम अपने ऊपर उर्दू का थोपा जाना स्वीकार कर लेते या बंगला को अरबी लिपि एवं अप्रचलित अरबी-फारसी शब्दों की भरमार के द्वारा विकृत हो जाने देते, तो सांस्कृतिक विकास की दृष्टि से बौने हो जाते। अतः हमने इसके खिलाफ जोरदार संग्राम किया और पश्चिमी पाकिस्तानियों की कूट योजना को व्यर्थ कर दिया। पश्चिमी पाकिस्तान में भी सिन्धी और पुश्तु भाषा-भाषी अपनी भाषा और संस्कृति के लिए लड़ ही रहे हैं। पश्चिमी पाकिस्तानी भले ही फौजी ताकत के कारण कुछ दिनों तक बांगला देश पर कब्जा किये रहें किन्तु सांस्कृतिक क्षेत्र में वे सर्वथा असफल रहे हैं और रहेंगे।

'आर्थिक, कूटनीतिक मोर्चों पर आप लोग क्या कर रहे हैं और क्या करना चाहते हैं ?'

'आर्थिक मोर्चे पर पाकिस्तानी सरकार डगमगा गयी है। विदेशी मुद्रा के प्रमुख अर्जक हम लोग ही थे। इस लड़ाई के कारण और हमारी गुरिल्ला रणनीति के फलस्वरूप बांगला देश का उद्योग-धन्धा करीब-करीब ठप है। चाय का उत्पादन बिलकुल रुक गया है और जूट की फैक्टरियाँ बहुत मुश्किल से पहले की तुलना में दस प्रतिशत काम कर पा रही हैं। पाट की फसल काटी ही नहीं गयी है, जो फसल कटी भी है, उसे फैक्टरियों तक हम लोग यथा संभव पहुँचने नहीं देते। पश्चिमी पाकिस्तान के तैयार माल की खपत हम लोगों के यहाँ बहुत कम हो गयी है। ऐसी हालत में यदि बाहरी सह·

यता न मिले तो पाकिस्तान अपने बोझ से ही चरमरा जायेगा किन्तु बड़े देशों के निजी स्वार्थों की टकराहट के कारण हो सकता है कि पाक को कुछ विदेशी मदद मिलती रहे। वैसे यह स्पष्ट है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार आदि के स्तर पर पाकिस्तान की साख बहुत गिर गई है। पाकिस्तान दीवालिया होता जा रहा है इसमें कोई सन्देह नहीं है। हम लोगों की जनता को भी घोर आर्थिक कष्ट सहना पड़ रहा है और पड़ेगा, अकाल पड़ने की भी आशंका है किन्तु फिर भी कुल मिला कर यह स्थिति हमारी स्वतंत्रता की लड़ाई के अनुकूल है।'

कूटनीतिक स्तर पर हमारी सबसे बड़ी सीमा यह है कि अभी तक हमें किसी भी देश ने मान्यता नहीं दी है। यह विचित्र स्थिति है कि अधिकांश देशों की जनता हमारे साथ है पर अभी तक किसी भी देश की सरकार ने हमें मान्यता नहीं दी। हमारा विश्वास है कि भारत यदि इस दिशा में पहल करे, तो हमें और देशों की भी मान्यता मिलेगी। पाकिस्तान की विदेश सेवा के बंगाली अधिकारी क्रमशः हमारी तरफ होते जा रहे हैं, इससे दुनिया के देशों के सामने यह स्पष्ट है कि बांगला देश की स्थिति पाक के दावे के अनुसार सामान्य कत्तई नहीं हुई है, बल्कि स्वतंत्रता संग्राम और ज्यादा जोर पकड़ता जा रहा है। हमें विश्वास है कि जैसे-जैसे हमारी मुक्तिवाहिनी सफल होती जाएगी वैसे-वैसे हमें कूटनीतिक सफलता भी मिलती जायेगी।'

गोविन्द जी ने विस्थापितों की वापसी के बारे में पूछा तो वे बोले, 'स्वाधीन बांगला देश अपनी सभी सन्तानों को अपनी भूमि में लौट कर सम्मानपूर्वक जीवन व्यतीत करने की पूरी सुविधा देगा। हम अपने देशवासियों को भारत का बोझ नहीं बनने देंगे।'

भारत सरकार भारतीय जनता और विशेषतः बुद्धिजीवियों के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करते हुए उन्होंने गोविन्द जी के माध्यम से भारतीय पत्रकारों और पत्रों से जोरदार अपील की कि आप लोग जनमत को इस प्रकार प्रशिक्षित करें कि बांगला देश को शीघ्रातिशीघ्र मान्यता प्राप्त हो। हम अपनी लड़ाई स्वयं लड़ेंगे किन्तु मित्र देशों विशेषतः भारत से हमें बहुत अपेक्षाएँ हैं। अन्तिम विजय की घड़ी नजदीक आये, खून कम बहे, ध्वंस के स्थान पर निर्माण का राग जल्दी गूंजे, इन सबके लिए आप लोगों की पूरी सहायता आवश्यक है।' मित्रता और सहयोग से भरे हाथ मिले और 'जय बांगला' के अभिवादन के साथ हम लोग बिदा हुए।

× × ×

१५ अगस्त···स्वतंत्रता दिवस। मैंने और गोविन्द जी ने तै किया कि इस बार स्वतंत्रता दिवस का हम लोग पालन करेंगे अपने पड़ोसी बांगला देश के स्वतंत्रता युद्ध के साक्षी बनकर। सुप्रसिद्ध सेवा संस्था मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी के सहयोग से विस्थापित शिविरों के परिदर्शन की व्यवस्था सहज ही हो गयी। सोसाइटी के तत्वावधान में बशीरहाट अंचल के दस शिविरों में खाद्यान्न वितरण का कार्य चल रहा है। उसके कार्यकर्ता श्री वासुदेव थरड़ एवं श्री बजरंगलाल सोमानी अपने वितरण केन्द्रों की देख-रेख के लिए जा ही रहे थे, हम लोगों को भी अपने साथ उत्साहपूर्वक ले चले। सन्मार्ग के श्री वासुदेव उपाध्याय भी अपनी टोली में थे। इस बार अन्य वर्षों की तुलना में कलकत्ते में राष्ट्रीय ध्वज अधिक संख्या में लहरा रहे थे। मानिक तल्ला, बेलियाघाटा जैसे राजनीतिक संघर्ष के लिए विख्यात अंचलों मे भी तिरंगों की शोभा देख कर मन पुलकित हुआ। इसे इन्दिरा जी का करिश्मा ही मानना चाहिए।

दमदम हवाई अड्डे के पास से ही विस्थापित शिविरों की पाँत शुरू हो जाती है। बीच-बीच में सड़क के दोनों ओर विस्थापितों ने मिट्टी, बाँस और पत्तों को बटोर कर अपनी झोपड़ियाँ बना ली हैं। धनखेतों की नीची जमीन में पानी जमने के कारण सड़क के किनारों की ऊँची जमीन को ही आवास भूमि बनाने की उनकी चेष्टा समझ में तो आती है पर इससे यानवाहनों का यातायात जरा खतरनाक हो गया है क्योंकि लड़के प्रायः सड़क पर ही खेलते रहते हैं। इन शिविरों में या झोपड़ियों में रहने वाले अधिकतर खेतिहर, मजदूर या विपन्न किसान ही लगते हैं। पहले भी उनके पास बहुत कम था अब तो प्रायः सब कुछ खो कर वे लोग भारत आये हैं। जीवन-यापन के लिए पूर्णतः औरों की सहायता पर निर्भर इस विशाल मानव समूह को कैसे बसाया जा सकेगा···कब तक इन्हें अपने देश से बाहर रहना पड़ेगा··· कब तक···?

× × ×

बशीरहाट के अन्तर्गत गोलपुकुर विस्थापित शिविर। शिविर अधिकारी मधुसूदन पाल के अनुसार ५०० से कुछ ऊपर परिवार। तम्बुओं का अच्छा खासा गाँव। हम लोगों को चारों तरफ से विस्थापितों ने घेर लिया है। ज्यादातर बच्चे और बूढ़े हैं। नौजवान स्त्री-पुरुष की संख्या बहुत कम है। १५ से २५ वर्ष के भीतर की नवयुवती एक भी नहीं दिखी। उनकी अनु-

परिस्थिति जिस बर्बर अत्याचार की द्योतिका थी, उसकी सहज कल्पना की जा सकती है। अभाव...और अभाव...और अभाव। शिकायतें...और शिकायतें...और शिकायतें। सरकार बहुत कुछ कर रही है, फिर भी यह तो स्पष्ट था ही कि बरसात के दिनों में नीची जमीन में लगे तम्बुओं में जिन्दगी बसर करने वालों को कितना कष्ट था। 'यह चीज कम मिलती है', 'वह चीज चाहिए' का जनरव, 'काम दीजिये' की माँग। दूसरी तरफ शिविर के अधिकारियों की भी शिकायत कि कार्यक्षम लोग भी आगे बढ़ कर शिविर सम्बन्धी काम-काज में सहयोग देना नहीं चाहते। वहाँ जो जवान या प्रौढ़ विस्थापित थे, मैंने उनसे कहा कि आप लोगों को शिविर में सफाई बनाये रखने का, पानी बरसने के कारण शिविर के रास्तों में हुए कीचड़ को मिट्टी से भर देने का, छोटे बच्चों को पढ़ाने का काम तो अपने ऊपर लेना ही चाहिए। वे बगलें झाँकने लगे। मुझे लगा कि व्यवस्थापकों को ऐसी योजना जरूर बनानी चाहिए कि शिविरवासियों को अपने शिविर की जिम्मेदारियाँ एक हद तक खुद उठानी पड़ें अन्यथा उनकी रचनात्मक शक्तियाँ कुण्ठित होती जायेंगी। श्री मधुसूदन पाल और उनके सहयोगियों को मेरा यह रुख पसन्द आया।

उस कष्ट और संकट के समय भी नंगधड़ंग बच्चों की टोलियाँ इधर-उधर खेल रही थीं। वे हँस भी रहे थे और शिविर कार्यालय से स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर प्रसारित गीतों को बड़े चाव से सुन भी रहे थे। वर्तमान के दुःख से एक हद तक अप्रभावित, भविष्य से बेखबर इन बच्चों का क्या होगा? अभाव की ज्वाला में झुलस कर क्या क्रमशः ये असामाजिक तत्त्वों में बदलते जायेंगे? मेरी विचारधारा आगे नहीं बढ़ सकी क्योंकि सोमानी जी पुकार कर कहे चले जा रहे थे कि एक ही शिविर में इतनी देर लगा देने से आप लोग सर्वेक्षण कैसे कर सकेंगे?

खाद्यान्न वितरण केन्द्र। खपरैल की छत वाला एक बड़ा सा अहाता। चारों तरफ के रास्तों में कीचड़...जूते समेत पैर डूब जाने वाला कीचड़। बीस-बीस हजार लोग उसी कीचड़ में कतार में खड़े-खड़े वर्षा में भीगते हुए दिन-दिन भर प्रतीक्षा करते रहते हैं कि उनकी बारी आये तो परिवार के लिए सप्ताह भर का चावल, दाल, आलू, प्याज मसाला लें। राशन सरकार की ओर से दिया जाता है किन्तु वितरण की व्यवस्था सोसाइटी के कार्य-

कर्ता करते हैं। उनके धैर्य, सेवाभाव और परिश्रम की जितनी सराहना की जाये कम है। बहुत अपर्याप्त साधनों के बावजूद वे इस बड़े काम की जिम्मेदारी सम्हाले हुए हैं। फिर भी मुझे लगा कि यदि छोटे-छोटे कई वितरण-केन्द्र हों तथा दो से छः व्यक्तियों तक के परिवारों के लिए साप्ताहिक राशन का अलग-अलग पैकेट हो तो प्रतीक्षा की अवधि कम की जा सकती है। यह ठीक है कि इसका अर्थ कुछ अधिक व्यय, कुछ अधिक कार्यकर्त्ता, कुछ अधिक परिश्रम होगा किन्तु हजारों व्यक्तियों को घंटों लाइन में खड़े रहने के अभिशाप से मुक्ति भी तो मिलेगी। मैं तो सुझाव ही दे सकता हूँ, साधन मुहैया करना मेरे वश की बात नहीं है। फिर भी इस अमानुषिक प्रतीक्षा और यातना को कम करने के लिए कुछ जरूर करना चाहिए।

विस्थापित शिविर···वितरण केन्द्र···गुदाम। करीब-करीब एक ही जैसी स्थिति की बार-बार पुनरावृत्ति। शाम घिरती आ रही थी। हम लोगों को···विशेषतः गोविन्द जी को और मुझको लगा कि बांगला देश के सीमान्त तक पहुँच कर मुक्तियोद्धाओं से मिले बिना लौटना अपराध होगा। साथियों में कुछ संकोच था लेकिन हम लोगों का उत्साह संक्रामक सिद्ध हुआ। स्थानीय कार्यकर्ताओं का सम्पर्क सूत्र तो था ही, कुछ संकेत सूत्र मैं कलकत्ते के मित्रों से भी लाया था। गाड़ियाँ पक्के रास्ते पर छोड़ दी गयीं। एक जीप में ही हम लोग किसी प्रकार धँसे। वर्षा ऋतु में बंगाल के कच्चे रास्ते। जीप भी कई जगह फँसी। हम लोगों को बीच-बीच में उतरना पड़ा पर अन्ततोगत्वा हम लोग गन्तव्य तक पहुँच ही गये।

× ×

बांगला देश का मुक्त क्षेत्र। सामने का वह शिविर तो कुछ निराला ही लगता है। छोटे-छोटे तम्बू पर करीने से लगे हुए। गंभीर वातावरण। राइफल लिए तैनात संतरी। जीप को कुछ दूर पर ही रोक कर हम लोग उतरे। आगे-आगे चल रहा था वह मित्र पथ-प्रदर्शक जो उन लोगों से भलीभाँति परिचित था। हम लोगों के आने की सूचना कैप्टेन को दी गयी। गोविन्द जी ने वर्मा से कहा कि इन तम्बुओं का चित्र ले लो। सन्तरी जानता था कि हम मित्र हैं, फिर भी निषेध कर रहा था, पर वर्मा ने झट से 'क्लिक' कर ही दिया।

'बांगला देश के मुक्त क्षेत्र में मैं आप लोगों का स्वागत करता हूँ।' कैप्टेन मुहम्मद शफीकुल्ला के स्वर में सौहार्द्र था। लुंगी पर गंजी पहिने

कैप्टेन हम लोगों के आने की खबर पाकर सहज भाव से उसी वेश में अपने तम्बू से बाहर आ गये थे। उनके हाथ में एक बड़ा सा बन्द छुरा था और उनके पीछे थे तीन-चार राइफल धारी मुक्ति सैनिक।

इसे संयोग ही कहा जायेगा कि कैप्टेन शफीकुल्ला मेरे मित्र डॉ० अनीसुज्जमान के छात्र निकले। परिचय की प्राथमिकता से उनका जो स्वर ध्वनित हुआ था, उससे यही लगा था कि कैप्टेन हम लोगों का तुरन्त बिदा कर देने वाले हैं क्योंकि यह क्षेत्र उभय पक्ष की सैनिक गतिविधियों के कारण उन्हीं की भाषा में 'काफी गर्म' था। अतः हम लोगों का अधिक देर वहाँ रहना उन्हें पसन्द नहीं था। पर मेरे और गोविन्द जी के सिर पर जो जनून सवार था। हम लोग चाहते थे युद्ध क्षेत्र की अग्रिम पंक्ति तक जाना और जीती हुई चौकियों को देखना। डॉ० अनीसुज्जमान तथा बांगला देश के अन्य अधिकारियों और बुद्धिजीवियों के सम्बन्ध में सवाल-जवाब कर जब कैप्टेन की दिलजमई हो गयी तो वे मुस्कुराकर बोले 'वहाँ मैं आपको ले चल सकता हूँ। कोई खास खतरा तो नहीं है पर दोनों ओर से गोलियाँ तो चल ही रही हैं और अँधेरा हो चला है, आप लोग समझ लीजिये।' कुछ लोग हिचके। मैंने गोविन्द जी की ओर देखा, वे दृढ़प्रतिज्ञ दिखे। मैंने कहा जिन्हें रुकना हो वे रुकें, गोविन्द जी के साथ मैं तो अवश्य जाऊँगा और लो एक-एक कर सब राजी हो गये। कीचड़ भरी पगडंडी पर पैदल अभियान। रास्ते में पड़ी सोनाई नदी। बहुत चौड़ी तो नहीं लेकिन बहुत पतली भी नहीं। मुक्तिवाहिनी के पास सिर्फ एक डांगी थी। छः-सात तो हमीं लोग थे, कैप्टेन के साथ चार सैनिक भी थे। नाव बहुत हल्की थी और जरा सा हिलते-डुलते ही डगमगा उठती थी। दो खेवे में हम लोग पार हुए। घाट न इस ओर था, न उस ओर। फिसलनदार कगार पर चढ़ना छरहरे शरीर वालों के लिए मुश्किल था किन्तु गोविन्द जी के बनारसी संस्कारों को क्या कहिए कि एक हाथ में कलकत्ते से लाये पानों से भरा ठोंगा लिए वे अपने दुहरे शरीर को किसी प्रकार सन्तुलित कर फिसलते-फिसलते भी ऊपर चढ़े जा रहे थे। बिना पान जमाये और घुलाये बनारसी को स्वर्ग में भी रस नहीं आ सकता, यह तो बांगला देश ही था।

हम लोग बांगला देश के अन्तर्गत खुलना जिला के बादली गाँव से गुजर रहे थे। कच्चे घर, छोटी सी मसजिद, एक-दो आधे पक्के घर। किसी-किसी में एक-दो पुरुष दिखे। महिला एक भी नहीं। चलते-चलते कैप्टेन एक जगह ठिठक गये। बाँसों के झुरमुट के नीचे दो कब्रें बनी हुई थीं। कल ही दो

जवान शहीद हुए थे, मुहम्मद मूसा और अब्दुस्सत्तार दोनों वहीं विश्राम कर रहे थे। हम लोगों ने उन्हें नमस्कार किया। हरा-भरा उन्मुक्त शस्यश्यामल अंचल शहीदों के रक्त से रँग उठा है। मुझे भाई काली चरण गुप्त की पंक्ति याद हो आई 'धानी चूनर वाली धरती, जवाकुसुम सी लाल हो गयी।' दस लाख से ऊपर बांगला देशवासियों की हत्या पाकिस्तानी कर चुके हैं···इतना खून बहाकर पाकिस्तानी बर्बरों ने बांगला देश की धरती को लाल कर दिया है किन्तु बंजर भी बना देना चाहा है। मुक्तिवाहिनी के सैनिकों का रक्त उसे उर्बर बना रहा है, उसमें जवाकुसुम और गन्धराज खिला रहा है। यह बलिदान व्यर्थ नहीं जा सकता।

× ×

तड़तड़ तड़ तड़ तड़ तड़···मशीन गन से गोलियाँ छूट रही हैं। दुश्मन तीन मील दूर है। पाँच अगस्त को दुश्मन की काकडाँगा चौकी पर मुक्तिवाहिनी ने कब्जा कर लिया था। दुश्मन पीछे हट कर मोर्चे बन्दी कर जमा हुआ है। मुक्तिवाहिनी के सैनिक उन लोगों को चैन से नहीं रहने देने के इरादे से गोलियाँ चलाते रहते हैं। उधर से भी गोलियाँ छूटती रहती हैं। कैप्टेन रह-रह कर बताते हैं कि यह आवाज दुश्मन की चीनी राइफल या मशीनगन की है।

एक छोटी सी पुलिया। मुक्तिवाहिनी के छः जवान उसकी रक्षा के लिए तैनात थे। पुलिया के बराबर ही ऊँची सड़क की आड़ लेते हुए उन्होंने अपना मोर्चा बाँध रखा था। कैप्टेन ने बताया कि इस सड़क पर कब्जा कर लेने के कारण सीमावर्ती क्षेत्र में पाकिस्तानी यातायात को हम लोगों ने ठप सा कर दिया है। मानसून के कारण पाकिस्तानी फौजें आत्मरक्षात्मक युद्ध कर रही हैं। इस समय यदि हमारे पास भारी हथियार होते तो हम उन्हें और भीतर ठेल दे सकते थे। आज ही मार्टर से गोलाबारी कर हमने उनके नौ जवानों को खत्म कर दिया है, गनर एस० ए० हामिद और हवलदार जलाल से कैप्टेन ने हम लोगों को मिलाया जिनके कारण दुश्मन को यह चोट पहुँचाना संभव हो पाया था।

और आगे एक स्थान पर खाइयाँ खोद कर आठ-दस जवान जमे हुए थे। जवानों का उत्साह और मनोबल प्रशंसनीय था। वे शत्रु से जूझने के लिए बेताब थे···खास कर वे जो मुक्तिवाहिनी में भर्ती होने के पहले विद्यार्थी

थे। वे अपने केन्द्रीय नेतृत्व की संयत छापामार नीति को और उग्र बनाना चाहते थे। कैप्टेन ने उनको थपथपाया, धीरज बँधाया। हम लोगों से बात-चीत कर मुक्ति सैनिक बहुत प्रसन्न हुए। भारतीय जनता की सहानुभूति के लिए वे बहुत कृतज्ञ थे।

पिछली बार जब बांगला देश के मुक्तियोद्धाओं के बीच गया था तब तैयारी ही चल रही थी और इक्के-दुक्के छापे मारे जा रहे थे। अब तो पूरे जोश से लड़ाई चल रही है। यह ठीक है कि मुक्तिवाहिनी अपनी गतिशीलता को बहुत बढ़ा दे सकती है पर उसके लिए और बहुत से साधन चाहिए। केवल राइफल, मशीनगन, मार्टर के सहारे तो बड़ी लड़ाई नहीं जीती जा सकती। जो जवान नाले के पास या खाई में थे उनको मच्छरों से बचाने वाला 'मास्किवटोरिपेलेंट' तेल तक मयस्सर नहीं था। कैप्टेन ने बड़ी हसरत से कहा यदि मेरे पास 'शार्टरेंज कम्युनिकेशन' के लिए वायरलेस सेट होते तो कई जानें बच सकती थीं, काम और सुचारू रूप से चल सकता था, पर खैर...जो है, उसी से हम लोग लड़ेंगे और अल्लाह की मेहरवानी से जरूर जीतेंगे।

अपने देश के स्वतंत्रता दिवस पर पड़ोसी मित्र देश की स्वतंत्रता की लड़ाई में विजय की कामना करना हमारा कर्त्तव्य था, हम लोगों ने जोरों से नारा लगाया, 'जय बांगला, जवानों ने दुहराया 'जय बांगला'। रणक्षेत्र में खड़े हो कर विजय की कामना करने वाले कितने प्रिय होते हैं ? कैप्टेन ने मुझे गले से लगा लिया।

भादों की कृष्णा दशमी थी। चारों ओर घना अँधेरा छा गया था। केवल दो टॉर्चें थीं कैप्टेन की टोली के साथ। हम लोगों को दो घंटे से ऊपर हो चुका था वहां। कैप्टेन ने लौटने का आग्रह किया। हम लोगों के साथ छायाकार वर्मा थे ही। कुछ चित्र उतरे। कैप्टेन ने कहा चित्र लेने हों तो जवानों के ही लें, मैं अपना चित्र नहीं उतरवाना चाहता। पर हम लोग नहीं माने।

लौटते समय मन पुलकित भी था और भारी भी। स्वतंत्रता के संघर्ष की झलक देख कर हम लोग लौट रहे थे। सैनिकों का साथ था। उनका दृढ़ संकल्प हम लोगों को स्पन्दित कर रहा था। पर उनमें से कितने इस संग्राम की सफलता देखने के लिए जीवित बचेंगे, यह विचार मन को उदास किये दे रहा था। सोनाई नदी आयी, पहले खेवे में औरों को भेज कर मैं

कैप्टेन के साथ रुक गया। बाँस का झाड़, अँधेरे में चमकने वाले जुगुनू और घनी शान्ति जो गोलियों की आवाज से ही भंग होती थी। मैंने कैप्टेन से पूछा 'कैसा मनोबल है आपके जवानों का।' वे बोले, 'आपने देखा ही है कल हमारे दो साथी मारे गये हैं पर क्या कातरता अथवा घबराहट का कोई लक्षण हम लोगों में आपको दिखा? हमें उनकी मृत्यु का शोक है किन्तु पश्चात्ताप नहीं, हम उनका प्रतिशोध लेने और देश को मुक्त करने के लिए कटिबद्ध हैं।' मुझे रोमांच हो आया।

अचानक मुझे अपने देश के स्वतंत्रता संग्राम की एक प्रेरक कविता याद हो आयी, ये सतत संघर्ष की घड़ियाँ अमर होंगी। कवि का नाम मैं भूल रहा हूँ शायद पर रचना श्री राम कुमार चतुर्वेदी की है। मैंने कविता सुनाई तो कैप्टेन ने स्नेह के साथ मेरा हाथ पकड़ कर जोरों से दबा दिया। कविता का एक छन्द उद्धृत कर दूँ :—

दीप होते हैं कि जो बुझते हिलोरों से
तुम लपट हो और फैलोगे झकोरों से,
ये तुम्हारे क्रान्ति डमरू के गमकते स्वर
भस्म कर देंगे तमिस्रा गूँज कर घर-घर।
रच रही जो पृष्ठ भू नव सृष्टि की प्रतिपल
ये प्रलय की दीप्त फुलझड़ियाँ अमर होंगी।
ये सतत संघर्ष की घड़ियाँ अमर होंगी॥

चारों तरफ तमिस्रा का अँधियारा था। कैप्टेन शफीकुल्ला और उनके जवान और उनके हजारों साथी तमिस्रा से जूझ रहे हैं···अन्तिम जीत प्रकाश की ही होगी अन्धकार की नहीं, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

× × ×

सोनाई नदी की धारा में छपाछप डांड़ चलने की आवाज निस्तब्धता को गहरा ही बना रही थी। गनर हमीद, पूर्व बंगाल का नाविक ऐसे में चुप नहीं रह सका। मटियाली की स्वर लहरी गूँजी,

ओ के कादे रे नदीर किनाराय
आउला चूल बातासे ओड़े, छोमटा नेइ माथाय।

तो जीवन इस विषम परिस्थिति में भी बिलकुल रसहीन नहीं हो गया है। हमीद गा रहा है, नदी के किनारे वह कौन रो रही है ? उसके खुले हुए बाल हवा में उड़ रहे हैं, मुँह पर घूँघट भी नहीं रह गया है। यह गीत तो शायद किसी वियोगी ने अपनी विरहिणी प्रिया को लक्ष्य कर लिखा होगा किन्तु आज की परिस्थिति में प्रतीकात्मक रूप से यह 'बांगला माता' के ऊपर कितना लागू होता है। अपनी सन्तानों के दुःख कष्ट से संतप्त 'बांगला माता' नदी के किनारे ही नहीं सारे देश में रो रही है, बर्बरों ने लूट कर उसे श्रीहीन कर दिया है, उसकी मर्यादा का आवरण भी उसके मुख पर नहीं रहने दिया है।

उसी के विषण्ण मुख पर प्रसन्नता की आभा लाने के लिए, उसी के क्रन्दन को मधुहास में वदल देने के लिए ही तो यह संग्राम है। कैप्टेन और उसके साथियों से बिदा लेते समय मेरे मन में एक ही बात गूँज रही थी : 'ये सतत संघर्ष की घड़ियाँ अमर होंगी।'

११०

कर्नल उस्मानी : मेरी नजर में

सच कहा जाये तो, कर्नल उस्मानी से बातें करते समय बिल्कुल ऐसा नहीं लगा कि हम लोग किसी देश के प्रधान सेनापति से बातें कर रहे हैं। प्रधान सेनापति की मेरी धारणा थी जाज्वल्यमान, अभिभूतकारी, उल्कापिंड सा व्यक्ति, जिसकी ओर आँखें उठा कर देखने का भी साहस न हो। पर जो व्यक्ति मेरे सामने बैठा था उसकी आँखों की पारदर्शी मानवीयता ने कुछ क्षणों में ही हम लोगों को अपना बना लिया और फिर हमें ऐसा लगता रहा कि हम लोग अपने परिवार के ही किसी बुजुर्ग से बातें कर रहे हैं। मझोला कद, सांवला रंग, इकहरा शरीर, सुसंस्कृत भंगिमा। कर्नल उस्मानी की मूछें जरूर रोब डालती हैं, सघन, गंगा-जमनी हो जाने पर भी ऊपर को ऐंठी हुई, गौरव की पुंज-सी। पर उनके समग्र मुखमंडल की सौम्यता श्रद्धा उमगाती है, आतंकित नहीं करती।

उत्तेजना, विक्षोभ, उग्रता के बिना भी दृढ़ता हो सकती है। विनम्रता के बावजूद अपराजेय संकल्प स्वरों में ध्वनित हो सकता है, इसका जीवंत आभास मुझे उनकी नपी-तुली बातों से मिला। भारती जी ने उनकी प्रशंसा करते हुए जब उन्हें मुक्ति युद्ध के नेतृत्व का श्रेय देना चाहा, तो उन्होंने उसका मृदु किंतु सच्चे मन से प्रतिवाद करते हुए कहा, 'नेता तो एक ही व्यक्ति है, शेख मुजीब! और वास्तविक संघर्ष कर रहे हैं अपने प्राणों की बाजी लगाने वाले जवान, छात्र, मजदूर और किसान यानी बांगला देश की सामान्य जनता··· अतः यदि श्रेय देना हो तो शेख मुजीब को दीजिये या सामान्य जनता और मुक्तिवाहिनी के सैनिकों को दीजिये, मुझे तो दुआ दीजिये कि इतिहास ने जो उत्तरदायित्व मेरे कमजोर कंधों पर डाल दिया है, उसे मैं निभा सकूं।' उनके स्वर में छद्म विनय का लेश भी नहीं था। अपने सम्बन्ध में चर्चा करते समय जो वाणी विनीत हो उठती थी, अपने जवानों के कार्यों का उल्लेख करते समय उसमें ओज और गौरव छलक उठता था।

बांगला देश स्वतंत्र हो कर रहेगा, उनकी यह अविचल निष्ठा संक्रामक है। भावावेग को अनुशासित कर कर्मशक्ति में रूपांतरित कर देने की उनकी अद्भुत क्षमता उनके अनुयायियों को क्रोधांधता और हताशा दोनों से उबरने की शक्ति देती होगी। अपने देश की मुक्ति के लिए जीवन-मरण के युद्ध का संचालक अपने तमाम अभावों और आत्मा में लगे गहरे घावों के बावजूद संयत और नैतिक मूल्यों के प्रति आस्थावान रह सकता है, यह अनुभूति मेरे जीवन की अत्यंत मूल्यवान अनुभूति है। ईश्वरीय न्याय पर श्रद्धा और व्यापक मानव कल्याण की भावना ने ही संभवतः उन्हें कटु नहीं होने दिया है। बांगला देश की स्वतंत्रता की लड़ाई विश्व मानव की स्वतंत्रता और मांगलिकता की लड़ाई का ही एक अंश है। इस चेतना ने अत्याचारियों को परास्त कर समता और न्याय पर आधारित समाज निर्माण की प्रेरणा उन्हें दी है, अंध घृणा और अकारण विनाश की नहीं !

मैं बिना किसी झिझक के यह कह सकता हूँ कि कर्नल उस्मानी के संपर्क में आनेवाला प्रत्येक व्यक्ति पहले से अच्छा मनुष्य...पहले से अच्छा योद्धा बन कर लौटता है।

७ सितम्बर, १९७१।

१२.
मुक्तियुद्ध : चरित्रगत क्रांति

ऊँचा कद, गेहुँआ रंग और घनघोर व्यस्तता में भी चेहरे पर एक स्नेह भरी मुस्कान। बांगला देश कूटनीतिक मिशन के अध्यक्ष श्री हुसेन अली के सुयोग्य सहायक ताहिरुद्दीन ठाकुर अवामी लीग के टिकट पर केन्द्रीय असेंबली के सदस्य चुने गये थे, इसी चुनाव में।

मिलते ही उन्होंने स्नेह से स्वागत किया, बांगला देश विशेषांक के लिए बधाई दी, उसमें प्रकाशित अनेक दुर्लभ चित्रों की प्रतिलिपियाँ माँगी ताकि वे अपने रेकार्ड में रख सकें और फिर आँखों में विशेष चमक के साथ पूछा—"कहिए, कल हमारे सेनाध्यक्ष से आपकी भेंट कैसी रही?" जब हमने अपना संतोष और प्रसन्नता व्यक्त की तो बोले—"आप भाग्यवान हैं। वे पत्रों को मुलाकात देने के लिए राजी नहीं होते थे। लेकिन धर्मयुग के लिए तैयार हो गये।"

उसके बाद इस संग्राम के आंतरिक मूल्य बोध और प्रकृति पर उनसे बातें होती रहीं जो यहाँ प्रस्तुत हैं।

चलते समय उन्होंने हमारी यात्रा की रूपरेखा बनायी, हमें कहाँ किन बिंदुओं से मुक्त क्षेत्रों और सबसे लोमहर्षक युद्ध-क्षेत्रों में प्रवेश मिल सकता है, वहाँ हमें किनसे मिलना चाहिए, वगैरह—और अंत में उन्होंने एक प्रामाणिक परिचय पत्र दिया जिसे हम अपनी पूरी बांगला देश यात्रा में अपने पासपोर्ट की तरह इस्तेमाल करते रहे।

प्रश्न : आपकी दृष्टि में बांगला देश के वर्त्तमान संग्राम की सबसे बड़ी उपलब्धि क्या है?

उत्तर : मेरी समझ से बांगला देश ने गत चुनाव के बाद अपनी राष्ट्रीय अस्मिता (नेशनल आइडेंटिटी) के पुनरन्वेषण (रिडिस्कवरी) में सफलता पायी है। यह बहुत बड़ी बात है। इसने सारी जनता में अपनी स्वतंत्रता की

अदम्य आकांक्षा जगा दी है। हमारा युद्ध समग्र युद्ध है…'टोटल वार' है। सब लोग अपनी-अपनी जगह बर्बर पाकिस्तानी सत्ता से युद्ध कर रहे हैं।

प्रश्न : क्या आपको लगता है कि इससे बंगाली चरित्र में कोई गुणगत परिवर्तन आया है ?

उत्तर : जी हाँ, अब हम योद्धा जाति में रूपांतरित होते जा रहे हैं। इस लड़ाई के पहले रणक्षेत्र में जो युद्ध बंगालियों ने लड़ा था, वह १७५७ ई० का पलासी का युद्ध था। उपन्यासकारों और कवियों ने उसे बहुत अतिरंजित करके प्रस्तुत किया है। पर सच्चाई यही है कि उस लड़ाई में कुल तेईस अंग्रेज मारे गये या घायल हुये। उसके बाद दो सौ वर्षों तक बंगाल की भूमि में कोई बड़ी लड़ाई नहीं लड़ी गयी। मुट्ठी भर क्रांतिकारियों की बात छोड़ दीजिए। सामान्य बंगाली जनता को इस बीच कभी युद्ध दीक्षा नहीं मिली। इस पृष्ठ भूमि के संदर्भ में रख कर यदि इस युद्ध को आप देखें तो बंगाली जाति का पूर्ण रूपांतर आपको चकित कर देगा। अब हमारे जवान युद्ध कर सकते हैं। मर ही नहीं सकते, मार भी सकते हैं और वह भी हजारों की संख्या में युद्धक्षेत्र में। मैं इसे इस संग्राम की सबसे बड़ी उपलब्धि मानता हूँ।

प्रश्न : आपकी दृष्टि में आपकी स्वतंत्रता में सबसे बड़ी बाधा किसके द्वारा पहुँच रही है ?

उत्तर : अमरीका की गंदी राजनीति से हमें सबसे ज्यादा नुकसान पहुँचा है। निक्सन प्रशासन न केवल दकियानूसी और प्रतिक्रियावादी है, बल्कि अपराधिक रूप से ऐसा है।

केनेडी ने जरूर बहुत अच्छे भाषण दिये हैं अपने देश जाकर। हम चाहते हैं कि उनका असर अमरीकी प्रशासन पर भी पड़े। पर अभी तक तो लगता है कि उसका कुछ असर नहीं पड़ा।

प्रश्न : अच्छा यह बताइए कि ऐसा क्यों है कि अमरीका और चीन दोनों पाकिस्तान का समर्थन कर रहे हैं ?

उत्तर : हमारा अनुमान है कि अमीरका और चीन दोनों इस विषय में एकमत हैं कि भारत को उठने न दिया जाये। भारत को उलझाये रखने के लिए पाकिस्तान की एकता का बाह्य आवरण बहुत आवश्यक है लेकिन यह बात चल नहीं सकती। पुराना पाकिस्तान मर चुका है, अब उसे जिंदा नहीं किया जा सकता। हम लोगों को लगता है कि युद्ध में हमारी सफलता के लक्षण दिखते ही ये दोनों देश अपना रवैया बदलेंगे। खासकर चीन तो और भी जल्दी

इस प्रश्न पर पाकिस्तान का समर्थन करना बन्द कर सकता है। उसके अंधभक्त अपनी तरह से बांगला देश के मुक्तियुद्ध में कूद सकते हैं। हम उनके प्रति बहुत सजग हैं।

प्रश्न : क्या टिक्का खां को हटाने का अर्थ वर्त्तमान फौजी शासक गुट में मतभेद हो जाना है ? इन दिनों टिक्का-यहिया द्वंद्व की बात समाचारपत्रों में जोरों से प्रचारित की जा रही है, इस सम्बन्ध में आपकी क्या धारणा है ?

उत्तर : यह बात सच भी हो सकती है और बनावटी भी। किंतु यदि सच थी तो भी उससे बांगला देश के प्रति पश्चिम पाकिस्तानी शासक गुट के रवैये में कोई फर्क नहीं पड़ सकता। आप जरा पश्चिम पाकिस्तानियों के निहित स्वार्थ पर भी तो गौर कीजिए। पूरे देश के बजट का ६५ प्रतिशत पाकिस्तान में फौज पर खर्च होता है। इस फौज में बंगाली कुल ७ प्रतिशत थे जब कि कुल आबादी में वे ६५ प्रतिशत हैं। पाक नौकरशाही में बंगालियों का प्रतिनिधित्व कुल १५ प्रतिशत था। उद्योग-धंधे प्रायः सबके सब पश्चिम पाकिस्तानियों के हाथ में हैं। २२ परिवार देश के ८० प्रतिशत धन के मालिक हैं। इस प्रकार पाकिस्तानी फौज, नौकरशाही और पूंजीपति इन तीनों का निहित स्वार्थ एक ही है। यहिया हो या टिक्का या कोई और, सब का लक्ष्य यही होगा कि बांगला देश के शोषण पर पश्चिम पाकिस्तान फले, फूले। अतः उनके परिवर्तन से बांगला देश का कोई लाभ नहीं होगा। मुखौटे के परिवर्तन से नीति में कोई परिवर्तन नहीं होता। जिस खूंख्वार, सत्तालोभी पाक शासक गुट ने डॉन के सम्पादक अल्ताफ हुसेन के अनुसार कायदे आजम जिन्ना का खून किया, जिसने फातिमा जिन्ना की नृशंस हत्या की, उस गुट से हमें किसी प्रकार की प्रत्याशा नहीं है। हम उनसे लड़ेंगे और उन्हें युद्ध में परास्त कर बांगला देश से खदेड़ कर रहेंगे।

७ सितम्बर, १९७१।

१३.
मुक्तिवाहिनी : रणनीति और युद्धकौशल

सेनाध्यक्ष उस्मानी से बातचीत के बाद मुजीब नगर से लौट कर दूसरे दिन हमने कलकत्ता में एक भारतीय युद्ध विशेषज्ञ कर्नलरिखी से मुक्तिवाहिनी की रणनीति के बारे में उनकी धारणाएँ जाननी चाहीं, हमारे प्रश्न और उनके उत्तर प्रस्तुत हैं :—

प्रश्न : आपके मतानुसार किन कारणों के चलते मुक्तिवाहिनी को आरंभिक युद्ध में मार्च-अप्रैल में सफलता नहीं मिली ?

उत्तर : क्योंकि उस समय तक मुक्तिवाहिनी असंगठित थी। बांगला देश के नेता २५ मार्च तक नहीं समझ पाये थे कि उनके आंदोलन को सशस्त्र प्रतिरोध का रूप ग्रहण करना पड़ेगा। इसीलिए वे बड़े क्षेत्रों पर अपना अधिकार नहीं बनाये रख सके।

प्रश्न : क्या आप समझते हैं कि मुक्तिवाहिनी का वर्तमान रूप सुसंगठित है ?

उत्तर : हाँ, पिछले महीनों में उनके सेनाधिकारियों ने घनघोर परिश्रम कर अपने दस्तों का काफी अच्छा संगठन किया है और उसे गुरिल्ला युद्ध की अच्छी शिक्षा भी दी है।

प्रश्न : मुक्तिवाहिनी की वर्तमान गतिविधि को क्या आप संतोषजनक मानते हैं ?

गुरिल्ला रणनीति के प्रमुख लक्ष्य हैं, दुश्मनों को परेशान करते रहना, संचार व्यवस्था को पंगु बना देना, नागरिक शासन को नाकाम बना देना, उद्योग-धंधों को ठप कर देना और फिर आखिरी चोट कर दुश्मन को परास्त कर देना। यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि मुक्तिवाहिनी इन लक्ष्यों को सिद्ध करने के लिए तत्पर है और उसे काफी सफलता मिली है, मिल रही है। 'रीडर्स डाइजेस्ट' के संपादक डेविड ली ने मुझे बताया है कि जनता का

पूरा सहयोग मुक्तिवाहिनी को मिल रहा है। खुद ढाका में रात के समय प्रतिदिन गुरिल्लों की तोड़-फोड़ चलती रहती है। उन लोगों ने रेल के यातायात को काफी हद तक निष्क्रिय बना दिया है। शायद १५ प्रतिशत रेलगाड़ियाँ ही चल पा रही हैं। नदियों में भी संचार दिनोंदिन मुश्किल होता जा रहा है। चाय का उद्योग बिलकुल नष्ट हो गया है। सिलहट के सभी चाय-बागानों की फैक्टरियाँ बंद हैं, क्योंकि मशीनें तोड़ दी गयी हैं। जूट की फैक्टरियाँ भी। मुश्किल से १० प्रतिशत काम कर पाती हैं। बहुत बड़े-बड़े इलाकों को मुक्त क्षेत्र बनाने में मुक्तिवाहिनी समर्थ हुई। ये सब लक्षण बांगला देश की स्वतंत्रता के लिए बहुत शुभ हैं।

प्रश्न : मुक्तिवाहिनी का मनोबल कैसा है ?

उत्तर : बहुत ऊँचा। सारी जनता उनके साथ है। बंगाली बहुत सचेत हैं। राजनीति की दृष्टि से इस गुरिल्ला युद्ध की तुलना अल्जीरिया या क्यूबा आदि से नहीं की जानी चाहिए। उन लोगों को इतना जनसमर्थन प्राप्त नहीं था।

प्रश्न : मुक्तिवाहिनी के मुकाबिले पाकिस्तानी फौज का मनोबल कैसा है?

उत्तर : उनका मनोबल अच्छा नहीं है। पाक फौज में अनुशासनहीनता बहुत बढ़ गयी है। लूट के माल के प्रश्न पर बलूची और पंजाबी सिपाहियों में आपसी मुठभेड़ों के संवाद आते रहते हैं। वे किसी के प्रति उत्तरदायी नहीं हैं। उन्हें हत्या और बलात्कार करने की खुली छूट है। इससे अनुशासन को बहुत हानि पहुँचती है।

फिर इतनी बड़ी फौज को दो हजार मील की दूरी से साज सरंजाम पहुँचाते रहना बहुत मुश्किल है। पाक की आर्थिक स्थिति दिनोंदिन बिगड़ती जा रही है क्योंकि वह बांगला देश पर ही मुख्यतः निर्भर थी। कोई विदेशी सरकार भी खुल्लमखुल्ला पाक को इतनी आर्थिक सहायता नहीं दे सकती कि वह अनिश्चित काल तक युद्ध चलाता रह सके। अतः मुझे इसमें कोई संदेह नहीं है कि पाकिस्तानी शासन का पतन अवश्यंभावी है, सवाल केवल समय का है। उसके पूर्व लक्षण प्रकट भी होने लगे हैं। निहत्थी जनता को मारते रहने पर भीतर का विवेक भी तो कचोटता है। बाहर से कोई समर्थन न मिलने पर नैतिक बोध डगमगाने लगता है। पाक फौज में उत्साहभंग की स्थिति आने लगी है। कुछ लोगों के सैन्य त्याग के समाचार भी मिले हैं। मुक्तिवाहिनी की संगठित मार ज्यों-ज्यों तेज होती जायेगी त्यों-त्यों पाक फौज में भ्रांति बढ़ती जायेगी। हाल ही में मुक्तिवाहिनी को जहाजों के डुबाने में

जो सफलता मिली है, उससे अंतर्राष्ट्रीय जहाजरानी पर प्रभाव पड़ा है। पाक जानेवाले जहाजों की इंश्योरेंस दरें काफी चढ़ गयी हैं और स्थिति यदि और संगीन हुई तो बहुत-सी कंपनियाँ वहाँ अपने जहाज भेजने से इंकार कर देंगी। उससे पाक की सामरिक तैयारी और लड़खड़ा जायेगी।

प्रश्न : पाकिस्तानी फौजी नेता क्या इस स्थिति को स्वीकार कर लेंगे? वे इससे उबरने के लिए क्या कर सकते हैं?

उत्तर : मेरा ख्याल है कि अभी तक पाक नेताओं ने इस स्थिति को नहीं स्वीकारा है कि अंततोगत्वा उन्हें बांगला देश से जाना ही पड़ेगा। वे हर संभव उपाय से यथास्थिति बनाये रखने की चेष्टा करेंगे। यह हो सकता है कि मामले को और पेचीदा बनाने के लिए वे भारत पर हमला भी कर दें। उनकी दृष्टि में इससे उन्हें तात्कालिक लाभ हो सकता है क्योंकि तब विश्व का ध्यान बांगला देश की समस्या से हट कर भारत-पाक युद्ध की ओर चला जायेगा। पाकिस्तानी नेताओं की धारणा है कि बड़े देश भारत के विरुद्ध छोटे देश के रूप में उन्हें अतीत की तरह फिर विश्व सहानुभूति प्राप्त हो सकेगी। यह यदि न भी हो तो भी वर्त्तमान विश्व कूटनीति के अनुसार संयुक्त राष्ट्रसंघ में अपने सहयोगियों द्वारा यथास्थिति बनाये रखने का प्रस्ताव पारित करवा कर वह बांगला देश पर अपना अधिकार कायम रख सकेगा। इतिहास बतायेगा कि धारणाएँ मिथ्या हैं। यदि पाकिस्तान ने ऐसा दुःस्साहस किया तो उसका पतन और शीघ्र होगा। छल, बल, कौशल किसी भी साधन से अब पाकिस्तान बांगला देश को अधिक समय तक गुलाम नहीं बनाये रख सकता।

७ सितम्बर, १९७१।

१४.

कूटनीतिक मोर्चों पर बांगला देश के बढ़ते कदम

बांगला देश कूटनीतिक मिशन के अध्यक्ष श्री हुसेन अली पहले प्रदूत थे, जिन्होंने साहसपूर्वक पाकिस्तानी दुश्मन की अवहेलना कर बांगला देश को अपनी सेवाएँ अर्पित करने का साहस किया। उसके बाद संसार के अनेकानेक देशों में पाकिस्तानी दूतावासों के बंगाली अधिकारियों ने बांगला देश के पक्ष में अपने को घोषित किया।

बांगला देश की यात्रा के पहले हम उनसे मिले और उन्होंने बड़े स्नेह से स्वागत करते हुए धर्मयुग के बांगला देश संबंधी प्रयासों के प्रति आभार प्रकट किया। पूर्व नियोजित न होते हुए भी बातें शुरू हो गयीं और अनेक व्यस्तताओं को टाल कर वे हमारे प्रश्नों का समाधान करते रहे। प्रस्तुत है वह वार्ता—स्थान बांगला देश कूटनीतिक मिशनः ८ सितंबर' ७१, प्रातःकाल।

प्रश्न : पाकिस्तान की विदेश सेवा में आप लंबे समय से काम करते रहे हैं। क्या आप बतायेंगे कि बंगाली अधिकारियों के प्रति पश्चिम पाकिस्तानी अधिकारियों का व्यवहार कैसा रहा है ?

उत्तर : हमें जिस परिवेश में काम करना पड़ता था वह हमारे अनुकूल नहीं था। राजधानी पश्चिम पाकिस्तान में थी। वहाँ के लोगों का साधारण रवैया हमारे प्रति उपेक्षा का था। हम स्वागत योग्य नहीं माने जाते थे।

हमारे सभी वरिष्ठ अधिकारी गैर-बंगाली होते थे, मुख्यतः पंजाबी। अतः हमें अपनी दृष्टि के अनुसार सोचने, मत व्यक्त करने और काम करने की छूट नहीं थी। हमें उनकी इच्छाओं के आगे झुक जाना पड़ता था। नहीं तो क्षति ग्रस्त होना पड़ता था। स्वतंत्र विचारधारा के व्यक्तियों की पदोन्नति नहीं होती थी। हम देखते थे कि विदेशों में हमारे दूतावासों के माध्यम से जो भी काम होता था, जो भी विदेशी सहायता मिलती थी, उद्योग-धंधों में विदेशी सहयोग आदि की व्यवस्था होती थी, उन सबका लाभ पश्चिम पाकिस्तान को होता था।

प्रश्न : क्या आप लोगों के कार्यकलाप के द्वारा इन अंतर्विरोधों एवं भीतरी तनावों का प्रभाव पाकिस्तान की अंतर्राष्ट्रीय प्रतिमा पर भी पड़ता था ?

उत्तर : नहीं। हम लोग सुशिक्षित, समर्पित, निष्ठावान देशभक्त थे। अतः हम लोग पूरी चेष्टा करते थे कि पाकिस्तान की कोई क्षति न हो। हम अपने विरोधों को अपने देश के भीतर ही सीमित रखते थे। पर हम लोग संख्या में बहुत कम थे और तुलनात्मक दृष्टि से छोटे पदों पर थे। आज तक कोई भी बंगाली पाकिस्तान का विदेश सचिव नहीं बनाया गया। पदोन्नति नियुक्ति अधिकार आदि के प्रश्नों को लेकर बंगालियों में सदैव तीव्र असंतोष रहा है। पश्चिम पाकिस्तानियों की नियुक्ति यदि न्यूयॉर्क, लंदन, पेरिस आदि में होती थी तो हमारी नियुक्ति अफ्रीका या लैटिन, अमरीका या एशिया के किसी पिछड़े देश की राजधानी में।

प्रश्न : बंगालियों के प्रति अन्याय एवं हीनभाव के प्रतिवादस्वरूप जिस प्रकार श्री महबूब आलम (संप्रति बांगला देश के विदेश सचिव) ने पाक विदेश सेवा से त्यागपत्र दे दिया था वैसे क्या कुछ अन्य राजनयिकों ने भी अपना सक्रिय प्रतिवाद किया था ?

उत्तर : जी हाँ, ऐसे कई स्वाभिमानी बंगाली राजनयिक रहे हैं जिन्होंने पश्चिम पाकिस्तानी अधिकारियों के अन्यायपूर्ण रवैये के विरोधस्वरूप त्यागपत्र दिया था। मि० रज्जाक, मि० मेहताव, मि० कैसर रशीद (जो जनाब भुट्टो के निजी सचिव रह चुके थे) ने भी त्यागपत्र दिया था। २५ मार्च के बाद जिस पैमाने पर बंगाली राजनयिकों ने बांगला देश के प्रति अपनी निष्ठा घोषित की है और अब भी कर रहे हैं। वह इस बात का प्रमाण है कि बंगाली चाहे वह राजनयिक के पद पर हो, चाहे साधारण किसान-मजदूर हो, अपनी स्वतंत्रता के प्रश्न पर एक मत है।

प्रश्न : विश्व की कूटनीति में ऐसे कई उदाहरण हैं कि क्रांति के बाद सरकार की विधिवत् स्थापना तो देर में हुई है किंतु किसी-न-किसी बड़ी शक्ति ने क्रान्ति का प्रयास करने वाले दल को सरकारी मान्यता पहले ही दे दी है। आप को अभी तक किसी बड़ी शक्ति ने मान्यता भी नहीं दी है। इस संदर्भ में कृपया बतायें कि आपकी कूटनीतिक व्यवस्था की रूपरेखा क्या रहेगी ?

उत्तर : यह आप कैसे कहते हैं कि हमें किसी बड़े देश का समर्थन प्राप्त नहीं है। हमारे लिए भारत बड़ा देश है। भारत की जनता, भारत की संसद, भारत की सरकार की पूरी सद्भावना हमारे साथ है। हाँ, हमें अधिकृत रूप

से मान्यता अभी नहीं मिली है, पर हमारा विश्वास है कि वह भी शीघ्र मिलेगी।

हमारे राजनयिक बांगला देश के लिए बहुत लगन से, बहुत निष्ठा और सूझ-बूझ से काम कर रहे हैं। हमने इस बात का ध्यान रखा है कि गंभीर राजनयिक उत्तरदायित्व प्रशिक्षित राजनयिकों को ही सौंपा जाये। केवल राजनीतिक कार्यकर्त्ताओं या नेताओं को नहीं। हमारे देशभक्त साथियों ने कठिन परिस्थितियों में बांगला देश के प्रति विश्व जनमत को करने का शानदार प्रयास किया है और जहाँ तक जनता का सवाल है, वे बहुत दूर तक सफल रहे हैं। हम काम कर रहे हैं और इसका सुफल हमें जरूर मिलेगा।

प्रश्न : स्वतंत्र बांगला देश की कूटनीतिक महत्वाकांक्षा क्या होगी? अविकसित देशों···या यों कहें अन्य विकासशील देशों की कूटनीति से आपकी कूटनीति कहाँ तक समान या भिन्न होगी ?

उत्तर : देखिए, हमारा देश छोटा है, गरीब है। हमारे प्रमुख साधन हैं हमारी जनता और हमारी प्राकृतिक क्षमता। हमारी शुरुआत विनम्र होगी किन्तु निश्चय ही वह सतत विकासोन्मुख होगी। हमारे प्राकृतिक साधन हैं धान, चाय, पाट की खेती, चमड़ा, भूगर्भ स्थित कोयले की राशि, गैस आदि। हम दूसरे देशों के सहयोग से इस क्षमता की समुन्नति करना चाहेंगे। निश्चय ही हम बड़े देशों के अधीन नहीं होना चाहेंगे, पर उसके सहयोग का लाभ उठा कर अपना विकास जरूर करना चाहेंगे। भारत के साथ हमारे संबंध घनिष्ठतम होंगे। दोनों देशों के विकास के लिए पारस्परिक सहयोग एवं समन्वित अर्थनीति आवश्यक है। इसी तरह विदेश नीति में भी दोनों का सहयोग दोनों के लिए हितकर होगा।

अन्य देशों से भी हम सहयोग की अपेक्षा रखते हैं। जब वे देखेंगे कि हमारे देश में राजनीतिक स्थिरता और आर्थिक विकास की क्षमता है, तो वे हमारी मदद करेंगे। आज भी उनकी सहानुभूति हमारे साथ है। औरों की बात जाने दीजिये, जो अमरीकी यहाँ की वास्तविकता देख गये हैं, उन्होंने भी पाकिस्तान की कठोर भर्त्सना की है। अमरीकी कांग्रेस एवं सिनेट के अधिकांश सदस्य भी हमारे पक्ष में हैं।

प्रश्न : किन्तु अमरीकी सरकार तो खुल्लमखुल्ला पाकिस्तान का समर्थन कर रही है, उसे शस्त्रास्त्र दे रही है···।

उत्तर : हाँ, यह ठीक है कि अमरीका ने पाकिस्तान को सहायता और समर्थन देना जारी रखा है। इसका एक कारण तो पुराने गहरे संबंध हैं। पिछले २३ वर्षों से पाकिस्तानी फौज को मुख्यतः अमरीका ही शस्त्र-सज्जित करता रहा है। पाक फौजी अधिकारियों और पेंटागन के अधिकारियों में बहुत घनिष्ठता है। पर जरा सोचिए कि अमरीका ने ऐसा क्यों किया था ? मुख्यतः चीन के विरुद्ध मोर्चाबंदी करने के लिए। अब जब अमरीका और चीन के आपसी संबंध बदलते जा रहे हैं तब पाक को लगातार समर्थित करने की आवश्यकता भी अमरीकियों के लिए क्रमशः कम होती जायेगी। यह सचमुच नियति का व्यंग्य है कि दुनिया में लोकतंत्र का अपने को सबसे बड़ा समर्थक मानने वाला देश क्रूर, बर्बर, फौजी तानाशाही का समर्थन लोकतंत्र के स्पष्ट फ़ैसले के खिलाफ कर रहा है। पर हम अब भी निराश नहीं हैं। हमारा विश्वास है कि वह अपनी गलती महसूस करेगा और एक दिन हमारा समर्थन करेगा।

प्रश्न : समाजवादी देशों का रुख बांगला देश के प्रति आपकी दृष्टि में कैसा रहा है ?

उत्तर : सामान्यतः समाजवादी देशों ने बांगला देश के प्रति गहरी सहानुभूति व्यक्त की है। भारत की बांगला देश के प्रति जो नीति रही है उसे काफी दूर तक रूस तथा अन्य समाजवादी देशों का समर्थन मिला है।

प्रश्न : पर क्या चीन ने समाजवादी मुखौटे के बावजूद पाकिस्तान का खुला समर्थन नहीं किया है ?

उत्तर : मेरा खयाल है कि चीन पाकिस्तान का समर्थन इसलिए और ज्यादा कर रहा है, क्योंकि वह भारत के प्रभाव को बढ़ने नहीं देना चाहता। चूंकि भारत बांगला देश के साथ है, अतः उसको नीचा दिखाने की योजना के कारण चीन पाकिस्तान का पूरा समर्थन कर रहा है; किन्तु उसने बांगला देश के जन-आंदोलन की कटु निंदा या भर्त्सना भी नहीं की है। मुझे तो लगता है कि जिस क्षण चीन को लगेगा कि यह क्रांति उसके अनुकूल होगी उसी दिन वह पाक का समर्थन करना बन्द कर देगा। दक्षिण-पूर्व एशिया में अपने प्रभाव-क्षेत्र के विस्तार के लिए और अपनी क्रांतिकारी प्रतिमा की रक्षा के लिए चीन सतत प्रयासशील है। अतः वह जनता के आंदोलन का सक्रिय, उग्र विरोध नहीं कर सकता।

प्रश्न : ऐसा लगता है कि बात इतनी सीधी नहीं है। चीन के अंध अनुयायी नक्सलपंथियों ने भारत और बांगला देश दोनों में शेख मुजीब और

उनके दल अवामी लीग की घृणित निंदा की है। क्या यह इस बात का सबूत नहीं कि चीन शेख मुजीव और उनके आंदोलन का केवल व्यावहारिक स्तर पर या भारत की सहानुभूति के कारण ही नहीं···सैद्धांतिक स्तर पर भी विरोध करता है ?

उत्तर : हाँ, आपकी यह बात ठीक है कि नक्सलपंथी शेख मुजीब के खिलाफ गंदा अपप्रचार करते रहते हैं, पर एक तो बांगला देश में उनकी संख्या बहुत कम है, दूसरे वे भी बांगला देश की आजादी की माँग के खिलाफ नहीं हैं। चीन अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में भले पाक का समर्थन अपने स्वार्थ के कारण करता रहे किन्तु भीतर-भीतर वह अच्छी तरह जानता है कि पाक का शासन बंगाली जनता स्वीकार नहीं करेगी। इसलिए चीन ने बांगला देश के नक्सलपंथियों को हथियारों से लैस करना शुरू कर दिया है। वे लोग भी अपने क्षेत्र में रजाकारों या पाकिस्तानी पचमाँगियों का वध करते रहते हैं। इस दृष्टि से वे बांगला देश की आजादी का समर्थन कर रहे हैं। पर हाँ, उनके राजनीतिक आदर्श हमारे आदर्शों से भिन्न हैं। उनकी टकराहट अवामी लीग के कार्यकर्त्ताओं से भी होती रहती है। यह संघर्ष नेतृत्व का संघर्ष है, पर हमारा विश्वास है कि अंतिम विश्लेषण में नक्सलपंथी भी पाकिस्तानी शासन का अवश्य ही खुला विरोध करने के लिए बाध्य होंगे। अन्यथा वे जनता से बिल्कुल कट जायेंगे।

प्रश्न : क्या आप इसे और स्पष्ट करेंगे कि इन लोगों का बांगला देश की जनता पर प्रभाव किस मात्रा तक है और क्यों कर है ?

उत्तर : देखिए, सच कहा जाये तो अवामी लीग संगठित राजनीतिक दल से कहीं अधिक व्यापक जन आंदोलन के सदृश विकसित हुई थी। जनता ने पिछले चुनाव में अनेक राजनीतिक दलों में से एक राजनीतिक दल के रूप में नहीं, बांगला देश की मुक्ति के लिए शेख मुजीब के नेतृत्व में चलने वाले व्यापक आंदोलन के माध्यम के रूप में अवामी लीग को अपना वोट दिया था। बर्बर पाकिस्तानी अत्याचार का मुकाबला करना किसी निश्शस्त्र राजनीतिक दल के लिए संभव नहीं था। वास्तव में जनता और नेता दोनों इस स्थिति के लिए तैयार नहीं थे। अवामी लीग के बहुत से नेता पाक फौज के अत्याचार के शिकार हुए, बहुतों को बांगला देश से चले आना पड़ा। सामान्य जनता कुछ समय के लिए नेतृत्व विहीन-सी हो गयी। उस समय एक-दो अंचलों में नक्सलियों ने प्रभाव विस्तार करने में अंशतः सफलता पाई। पर अब अवामी लीग पुनः संगठित हो कर काम कर रही है और बांगला देश की सर्व सामान्य जनता उसी का नेतृत्व स्वीकार करती है। नक्सलियों को

अभी पाक फौज ने भी नहीं छेड़ा है, संभवतः चीन के दबाव के कारण, किंतु नक्सली और पाक फौज ये दोनों परस्पर विरोधी शक्तियाँ हैं, सहयोगी नहीं।

प्रश्न : क्या नक्सलियों के अधिक शक्तिशाली होने की सम्भावना आपको लगती है ?

उत्तर : साधारणतः नहीं। पर यदि तर्क के लिए एक सम्भावना के रूप में थोड़ी देर मान लिया जाये कि हमारा संघर्ष सफल नहीं हो पाता, तब जरूर हमारे नौजवान कुण्ठित हो कर अन्य शिविरों में जा सकते हैं, दूसरे रास्ते अपना सकते हैं। अभी भी हमारे नौजवान बहुत ही विक्षुब्ध हैं। उनमें से जितनों ने सैनिक शिक्षा ली है या जो ले रहे हैं, सबको हम शस्त्र-सज्जित नहीं कर पाते। भारी हथियारों की कमी के कारण हम सीधे मोर्चे खोल नहीं पाते। अतएव वे सब जवान असन्तुष्ट हैं। उन्हें यथेष्ठ शस्त्र और युद्ध में सम्मिलित होने का मौका मिलना चाहिए, अन्यथा यह स्थिति एक हद के बाद समस्यापूर्ण बन सकती है।

प्रश्न : कहा जाता है कि कूटनीति युद्ध जीतने का बहुत कारगर हथियार है। अपने संदर्भ में क्या आप बतायेंगे कि किस कूटनीतिक करिश्मे से आप अपनी लड़ाई जीत सकते हैं ?

उत्तर : यदि हमारी कूटनीति अमरीका को पाकिस्तान का समर्थन करने से विरत करने में सफल हो जाये, तो हम तुरन्त युद्ध जीत सकते हैं। वैसे भी हम कूटनीतिक करिश्मा दिखा सकते हैं, यदि हम किसी गुट के साथ पूरी तरह हो जायें। किन्तु वैसा करने से हमारी स्वतन्त्रता सीमित होगी। जिसका अर्थ होगा, जनता के द्वारा दिये गये 'आदेश' (मैण्डेट) का उल्लंघन करना। हम ऐसा कभी नहीं करेंगे। हमारी जीत में देर हो सकती है, पर जीतेंगे हम अवश्य।

प्रश्न : मान्यता प्राप्त न होने के कारण आपको अपने मिशन के संचालन में कोई कठिनाई तो नहीं होती ?

उत्तर : नहीं, नहीं। हमें किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती। अब हम लोग पहले से ही भी बहुत अच्छी तरह से काम कर पा रहे हैं, क्योंकि न केवल सरकार से हमें सब सुविधाएँ प्राप्त हैं, बल्कि भारतीय जनता का भी हमें पूरा सहयोग मिल रहा है। मैं कह सकता हूँ कि अन्य देशों में हमारे मिशनों को इतनी सुविधाएँ नहीं मिलतीं। हम लोग भारत के बहुत आभारी हैं।

१५.
रक्त : मुक्ति

गहराता अंधेरा, पहाड़ी टीलों के ऊँचे-नीचे घूम-घुमौवे रास्ते पर दौड़ती हुई जीप। सहमे हुए-से चुप खड़े जंगल के बीच से हम लोग जा रहे थे। लेफ्टि० कर्नल खालिद मुशर्रफ से मिलने। अनगढ़ कच्चे रास्ते के हचकोलों पर हचकोले। अचानक पूरा ब्रेक लगाना पड़ा ड्राइवर को। दो फौजी संतरी संगीन ताने खड़े थे। उनके मुंह से 'हाल्ट' निकला ही था कि पथदर्शक ने चिल्ला कर कहा, 'मुक्ति!' वही था उस दिन का सांकेतिक शब्द! संतरी हट गये, जीप आगे बढ़ी। दो-तीन और मोड़ों पर हमें ललकारा गया, पर मित्र जान कर रास्ता दे दिया गया।

अब हम लोग पैदल चल रहे थे। सिर्फ एक टार्च और पांच-छह आदमी! अंधेरी रात में फौजी छावनी के जंगली रास्ते पर पैदल चलना सचमुच रोमांचक अनुभव है। इधर का जंगल करीने से, छिपाव के लिए आवरण बनाये रख कर साफ कर दिया गया है। छोटे-छोटे तंबू और लंबी-लंबी बैरकें। बीचोबीच लेफ्टि० कर्नल खालिद मुशर्रफ का प्रशस्त हेडक्वार्टर! ढाका, कुमिल्ला, फरीदपुर, नोआखाली में चलने वाले प्रत्यक्ष एवं गुरिल्ला संग्राम का सूत्र संचालन यहीं से होता है।

मुस्कराते हुए लेफ्टि० कर्नल खालिद मुशर्रफ ने हम लोगों का स्वागत किया। फौजी पोशाक में वे भव्य लग रहे थे। छरहरा लंबोतरा शरीर, गेहुँआ-रंग, चपल, सजग आंखें, मुख पर आभिजात्य की छाप। युद्ध के इन कठोर दिनों की छाप उनकी मुखाकृति पर उतनी नहीं पड़ी है, जितनी वाणी पर, कर्म पर पड़ी है। फिर भी बाल झड़ने लगे हैं। चिंता की छाया शरीर पर कहीं न कहीं तो पड़ती ही है। इतिहास का बोझ बहुत भारी होता है, पर उसका आह्वान भी तो उतना ही प्रेरक उतना ही प्राणप्रद होता है।

खालिद मुशर्रफ ईस्ट बंगाल रेजिमेंट के उन थोड़े से सेनानायकों में हैं, जिन्होंने २५ मार्च के बाद तुरंत अपने पाकिस्तानी अधिकारियों को कैद कर

या समाप्त कर अपनी रेजिमेंट का नेतृत्व अपने हाथों में ले लिया था। उस नेतृत्व की कुशलता का प्रमाण यही है कि ई० बी० आर० उर्फ बंगाल टाइगर्स संपूर्ण रूप से अपने सैनिकों और शस्त्रास्त्रों के साथ मुक्ति युद्ध के पक्ष में हो गये थे। आज वे लोग ही विशाल मुक्तिवाहिनी के केंद्रीय वृत्त हैं। जब मुक्तिवाहिनी सुसंगठित नहीं हो पायी थी, उसकी विच्छिन्न टुकड़ियों में तालमेल नहीं बैठ पाया था, केंद्रीय नेतृत्व नहीं उभरा था, तब भी अपने साथी लेफ्टि० कर्नल जिया के साथ मिल कर खालिद ने दुश्मन को कड़ी चोटें पहुँचायी थीं। अखौरा-विलौनिया की लड़ाई बांगला देश में लड़ी गयी अब तक की लड़ाइयों में सबसे बड़ी लड़ाई है, जिसमें दुश्मन के १५०० आदमी मारे गये थे। खालिद और जिया के अधीन कुल ६०० जवान थे और हमलावर पाक फौज का एक पूरा का पूरा डिवीजन उनके विरुद्ध था। फिर भी २५ मई से २० जून तक वे दोनों बहादुर सेनानायक उस क्षेत्र में अड़े रहे। बाद में जब टैंकों, बड़ी तोपों और हेलीकॉप्टरों का हमला हुआ, तो उन्हें हटना पड़ा था।

खालिद की प्रकृति राजसी है। अपनी कीमती विदेशी सिगरेट का कश लगाते हुए बड़े आत्मविश्वास के साथ बातें कर रहे थे और बीच-बीच में आवश्यक आदेश भी अपने सहकारियों को देते जा रहे थे। उस कक्ष में टेलीफोन तो था ही; संभवतः वेतार का तार भी था। विभिन्न क्षेत्रों से लगातार सूचनाएँ आ रही थीं और इधर से आदेश भेजे जा रहे थे। लालटेन की रोशनी में सारा वातावरण रहस्यमय लग रहा था।

हम लोगों की बातचीत शुरू हुई। खुले दिल से खालिद ने हम लोगों के प्रश्नों के उत्तर दिये।

प्रश्न : आप अपना सबसे बड़ा संबल किसे मानते हैं ?

उत्तर : हमारा सब से बड़ा संबल सामान्य जनता का समर्थन ही है। यह समर्थन बीच में जरूर कुछ डगमगाया था पर अब कई गुना बढ़ गया है और उसी अनुपात में हमारी शक्ति भी बढ़ गयी है।

प्रश्न : क्या आप इसे स्पष्ट करेंगे कि बीच में यह समर्थन क्यों कर डगमगा गया था और अब कैसे बढ़ता चला जा रहा है ?

उत्तर : शुरू-शुरू में जब पाक फौज ने असंगठित मुक्तिवाहिनी के हाथ से एक के बाद एक बड़े शहर छीन लिये तब हमारी जनता को लगा था कि सब कुछ समाप्त हो गया और अब हमें लंबे अरसे तक गुलाम रहना पड़ेगा। उस दुर्बल मनःस्थिति में वे हमसे सहयोग करने में हिचकिचाने लगे थे। जो

पंचमागी तत्व थे, उनकी हिम्मत बढ़ गयी थी और वे खुल्लमखुल्ला पाक फौजों को हमारे गुरिल्लाओं की खबरें देने लगे थे। पर जैसे-जैसे हमने अपनी स्थिति संभाली, हम पुनः संगठित हुए, केन्द्रीय नेतृत्व में दूरगामी दृष्टि से योजना बनी, अपनी-अपनी जगहों पर पाक फौजों के खूँखवार हमलों के बावजूद हम अड़े रहे, हमारे मुक्त क्षेत्र सीमा और संख्या में बढ़ते चले गये, रजाकारों और पंचमागियों को हम बड़े पैमाने पर प्राणदंड देने में समर्थ होते गये, खास ढाका, चटगाँव, रंगपुर, दिनाजपुर, राजशाही आदि नगरों में हमारी तोड़फोड़ की कार्रवाई बढ़ती गयी, वैसे-वैसे जनता का अधिकाधिक समर्थन हमें प्राप्त होता गया और पंचमाँगी तत्व भी दबते चले गये।

प्रश्न : क्या आप समझते हैं कि जब लड़ाई शुरू हुई थी तब से आपकी स्थिति अब अधिक सुदृढ़ है ?

उत्तर : जी हाँ, तब से अब हम सौगुना अधिक मजबूत हैं। पहले पाक फौज आती थी गर्व से फूली हुई और खुले खजाने आगे बढ़ती हुई। यहिया खाँ ने तो हमें मच्छर कहा था मच्छर···अब उन लोगों को मालूम पड़ रहा है कि बंगाली मच्छर हैं या रायल बंगाल टाइगर। हम लोगों की मार से अब वे इस कदर आतंकित हैं कि प्रचंड गोलाबारी के बाद ही आगे बढ़ते हैं और ५०० गज आगे बढ़ कर ही बंकर बनाने लगते हैं। भीतर-भीतर उनकी हिम्मत पस्त होती जा रही है।

प्रश्न : ई० बी० आर० के बाद मुक्तिवाहिनी में आप किसे सबसे अधिक महत्व देते हैं ?

उत्तर : अपने विद्यार्थियों को ई० बी० आर० को 'बंगाल टाइगर्स' कहा जाता था। मैं अपनी स्टूडेंट बटालियन को 'पैंथर्स' कहता हूँ। सचमुच हमारे विद्यार्थियों में हिम्मत और जोश नियमित फौजी जवानों से भी ज्यादा है। ढाका, चटगाँव तथा दूसरे शहरों में पाकिस्तानी फौज की नाक के नीचे हम लोगों की गुरिल्ला लड़ाई मुख्यतः उन्हीं के बलबूते पर चल रही है।

प्रश्न : क्या इसलिए कि वे तरुण और राजनीतिक दृष्टि से अधिक सचेत हैं ?

उत्तर : हाँ, इसलिए भी और इसलिए भी कि···अचानक उनका स्वर बहुत कड़ुवा हो गया, गुस्से से काँपती हुई आवाज में वे बोले···और इसलिए भी क्योंकि उन्होंने पाकिस्तानी बर्बरता को उसके नंगे रूप में अधिक निकटता से देखा है। जानते हैं, ये पाकी दरिंदे हमारी बहिनों, बहू-बेटियों पर

बलात्कार कर उनके भाइयों, पतियों और माता-पिताओं से कहते हैं कि अगली पीढ़ी सच्ची पाकिस्तानी होगी। मेरी इच्छा होती है यह सुन कर कि एक-एक पाकिस्तानी फौजी का गला काट कर धर दूँ। जिन्होंने इसे देखा या भोगा है, उनके मनोभावों की आप कल्पना कीजिये। समझ रखिये हम लोग दुनिया की सबसे प्रतिहिंसा परायण लड़ाई लड़ रहे हैं। इसकी कोई क्षमा नहीं है। इस बारे में कोई समझौता नहीं हो सकता। आपको मालूम है, पाक फौज के साथ देने वाले बाप को दंड उसी के बेटे ने दिया! ऐसी कई घटनाएँ घट चुकी हैं।

प्रश्न : पर फिर भी तो टिक्का खाँ की जगह एक बंगाली डॉ० मलिक ही आजकल यहाँ का पाक गवर्नर है।

उत्तर : हाँ, यह लज्जाजनक सत्य है फिर घृणापूर्वक उन्होंने कहा, हाँ डॉ० मलिक और उनकी मंत्रि परिषद के हर सदस्य को वही सजा मिलेगी, जो एक गद्दार को मिलती है।

प्रश्न : अब तो वर्षा समाप्त हो चली है और जमीन सूखते ही पाक फौज की नीयत होगी समस्त मुक्त क्षेत्रों पर पुनः कब्जा कर लेने की, तब क्या आप लोग टिक सकेंगे ?

उत्तर : हाँ, सामने कठिन दिन आने वाले हैं। पर अब हम लोग यानी हमारे नये मुक्ति योद्धा और जनता भी युद्धदीक्षित हो चुके हैं। लंबी लड़ाई में थोड़े से समय के लिए आगे बढ़ना या पीछे हटना उतना महत्व नहीं रखता। महत्वपूर्ण यह सत्य है कि बंगाली जनता ने पाक राज को समाप्त करने के लिए हथियार उठा लिया है। अपने मन में हम लोग अब किसी प्रकार की दुविधा का अनुभव नहीं करते। मारेंगे, मरेंगे और लड़ाई चाहे जितनी लंबी हो, अंत में स्वतंत्र हो कर रहेंगे।

प्रश्न : सवाल आपकी भावना का नहीं, दुश्मन की और आपकी शक्ति का है। क्या आप समझते हैं कि दुश्मन की युद्धशक्ति क्षीण हो चली है ?

उत्तर : नहीं, इसमें कोई संदेह नहीं कि दुश्मन की युद्धशक्ति में कोई विशेष कमी नहीं आयी है। उनके हजारों फौजियों कम-से-कम ३८ हजार फौजियों के हताहत होने के बावजूद। इस समय पाक सेना में १७ डिवीजन हैं जिनमें पांच यहाँ हैं और बारह पश्चिम पाकिस्तान में हैं। मेरी सूचना के अनुसार वे लोग दो डिवीजन और तैयार कर रहे हैं। उनकी जो फौजी परंपरा रही है और जितनी आबादी है, उसे दृष्टिगत रखते हुए मैं यह भी मान लेता हूँ कि

जीवन-मरण का प्रश्न आ जाने पर वे ६ डिवीजन और तैयार कर सकते हैं। फिर यह भी है कि अमरीका तथा पश्चिम एशिया के देशों से उन्हें आवश्यक हथियार भी मिलते रहेंगे। इस संबंध में हमें कोई मुगालता नहीं है।

प्रश्न : फिर आप कैसे कहते हैं कि जीत आपकी होगी ही ?

उत्तर : तस्वीर का दूसरा पहलू भी है। आर्थिक दृष्टि से यह युद्ध दुश्मन की कमर तोड़े दे रहा है। चाय, पटसन का उत्पादन करीब-करीब बंद है। पटसन का सामान तो फिर भी कुछ···किंतु १० प्रतिशत से अधिक नहीं तैयार हो पाता है, पर चाय तो बिल्कुल नहीं बन रही है। आमदनी बंद होती जा रही है और खर्च बढ़ता जा रहा है। तीन हजार मील दूर से दुश्मन को अपनी सप्लाई की सभी सामग्री लानी पड़ रही है। गेहूँ तक वे पश्चिम पाकिस्तान से लाते हैं। डेढ़ साल और यदि यह लड़ाई चली तो पाकिस्तान निश्चय ही दिवालिया हो जायेगा।

राजनीतिक दृष्टि से विचार करने पर यह स्पष्ट हो जायेगा कि अब दुश्मन के लिए यह असंभव है कि वह बांगला देश में पाकिस्तान के प्रति निष्ठा उत्पन्न कर सके। थोड़े से देशद्रोहियों को छोड़ कर सब बंगालियों के लिए पाकिस्तान मर चुका है और अब उसे जिंदा नहीं किया जा सकता। इस लाश को संगीन के बल पर वे कब तक ढो पायेंगे ?

सैनिक दृष्टि से हमारी शक्ति दिनोंदिन बढ़ती जा रही है और बढ़ेगी। उसी परिमाण में उनके हताहतों की संख्या बढ़ती जा रही है और बढ़ेगी। इस संख्या की वृद्धि के साथ-साथ पश्चिम पाकिस्तान में असंतोष बढ़ता जायेगा। आर्थिक संकट के समय हजारों नौजवानों को। एक न जीते जा सकनेवाले युद्ध में कटाते रहने की मूढ़ता को वहाँ की जनता लंबे समय तक बर्दाश्त करेगी, ऐसा नहीं लगता। इसीलिए हम कहते हैं कि अंततः पाकिस्तान इस युद्ध को जीत नहीं सकता।

प्रश्न : क्या आपकी धारणा है कि कुछ ही महीनों में बांगला देश स्वतंत्र हो सकेगा ?

उत्तर : इस संबंध में निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। इतना हम जानते हैं कि बांगला देश की मुक्ति आसानी से नहीं होगी। दुश्मन पगला गया है और वह यह भी जानता है कि बांगला देश की स्वतंत्रता का अर्थ है वर्त्तमान फौजी गुट की शासन-सत्ता की समाप्ति। अतः वह गुट अंतिम दम तक लड़ेगा। हम भी सिर पर कफन बाँध कर युद्ध कर रहे हैं, करते

रहेंगे। हो सकता है कि स्वतंत्रता की प्राप्ति तक हमारी आधी जनता गोलियों से भून दी जाये, या अकाल के कारण मौत की शिकार हो जाये। पर मैं आप लोगों को आश्वस्त कर सकता हूँ कि जैसे धड़ाके के साथ बांगला देश का मुक्ति युद्ध आरंभ हुआ है, वैसे ही उससे भी बड़े धड़ाके के साथ वह सफल होगा। बांगला देश जरूर स्वतंत्र होगा।

लेफ्टि० कर्नल खालिद मुशर्रफ अपने जवानों से मिलाने हम लोगों को उनकी छावनियों में ले गये। उनका मनोबल सचमुच बहुत ऊँचा था। अपने 'किले' का परिदर्शन करवा कर वे हम लोगों को पहुँचाने जीप तक आये। मुक्तिवाहिनी की विजय कामना कर हम लोगों ने उनसे विदा ली।

चलते-चलते उन्होंने कहा—रात का समय है हर जगह हमारे गार्ड आपको रोकेंगे। आप 'पासवर्ड' जान लें। आज का गुप्त संकेत है—रक्त मुक्ति। यानी रक्त दो तो मुक्ति मिलेगी।

हमारी जीप देखते ही राइफलें तन जाती थीं—'हाल्ट' हम बोलते थे—'रक्त', वे 'मुक्ति' बोलते थे और फिर हमें राह दे दी जाती थी। हम लौटे, तो रात को १२ बज चुके थे।

सितम्बर, १९७१।

१६.
बांगला देश के फौजी अस्पताल में

बांगला देश की मुक्तिवाहिनी का फौजी अस्पताल एक करिश्मे से कम नहीं है। ऊँचे-नीचे टीलों के घुमावों पर रुकते, मुड़ते, वढ़ते जब हम लोगों की जीप एक ऊँचे प्रशस्त मैदान के सामने जा खड़ी हुई, तो पहली झलक में यही दिखा कि सामने बांस और टट्टरों का वना, फूस से छाया एक लंवा-सा दालाननुमा झोंपड़ा है। पानी न टपके शायद इस खयाल से फूस की छाजन के ऊपर हरे पॉलीथीन का एक कैनवास डाल दिया गया है। बनावट में सुघड़ता और परिवेश में स्वच्छता लगी। हम लोगों के साथ अवामी लीग के एम० एन० ए० करीम भाई थे। उन्होंने कुछ गौरव के साथ कहा, "यही है हम लोगों का फौजी अस्पताल, जिसका एक कर्मचारी भी पहले कभी फौज में नहीं रहा। मुक्तिवाहिनी के पीछे बांगला देश की पूरी जनता है, इसका जीता-जागता सबूत है यह अस्पताल! अब आप लोग खुद ही देख कर अपना मत स्थिर कीजिए।"

× × ×

थोड़ी ऊँचाई चढ़ कर हम लोग अस्पताल के द्वार पर पहुँचे। हम लोगों को सबसे पहले मिले लुंगी, गंजी पहने, दुबले-पतले, छात्र से लगने वाले डॉ० नजीम। जब उन्हें मालूम पड़ा कि हम लोग ले० कर्नल खालिद मुशर्रफ के आमंत्रण पर यह अस्पताल देखने आये हैं, तो उन्होंने बड़ी स्निग्ध आत्मीयता भरी मुस्कराहट से हम लोगों का स्वागत किया। भीतर से अस्पताल तीन भागों में विभक्त था। बीच की जगह में डॉक्टरों, नर्सों के बैठने के लिए एक मेज के चारों ओर कई कुर्सियाँ थीं, रोगियों की जाँच के लिए शैया थी, दवाइयों की आल्मारियाँ थीं। उसके एक ओर सर्जिकल वार्ड था, दूसरी ओर मेडिकल वार्ड। एक-एक में चालीस-चालीस शैयाएँ थीं। ये। शैयाएँ बाँस की ही थीं। अभी तक उन पर समुचित बिस्तरे भी नहीं थे शैयाएँ दो कतारों में लगी हुई थीं, जिनके बीच में काफी चौड़ी जगह छोड़ी

हुई थी गलियारे के रूप में। नर्सें घायलों, रोगियों की शुश्रूषा में लगी हुई थीं। स्पष्टतः सुविधाएँ बहुत कम थीं। फिर भी शिकायत करने वाला एक भी घायल या रोगी नहीं मिला। हर एक जानता है कि अभावों की छाया में ही यह अस्पताल चल रहा है और उनके बावजूद हर एक के लिए ज्यादा-से-ज्यादा जो किया जा सकता है, किया जा रहा है। जो नहीं हो सकता, उसके लिए धीरज धरना ही सही काम है। युद्ध का अनुशासन यहाँ भी लागू है। हम लोग एक-एक घायल और रोगी के पास गये। अपने कष्टों के बावजूद वे दृढ़प्रतिज्ञ थे। अच्छा होते ही फिर मोर्चे पर जाने के लिए कमर कसे हुए थे। सामान्य अस्पतालों से कितना भिन्न वातावरण था। अभावों को चुनौती देता हुआ मानव मनोबल कितना महनीय हो जाता है, इसका आभास इस अस्पताल में मिला।

हम लोगों के आने की खबर सुन कर अस्पताल के सर्वोच्च अधिकारी डॉ० मोबिन मिलने आये। मुश्किल से २५-२६ वर्ष के होंगे। चटगाँव मेडिकल कॉलेज से एम० बी० बी० एस० पास करके इंग्लैंड गये थे। एफ० आर० सी० एस० करने। उसकी पहली परीक्षा ससम्मान पास कर आखिरी परीक्षा की तैयारी कर रहे थे, किन्तु बांगला देश की पुकार ने उन्हें विवश कर दिया कि वे पढ़ाई छोड़ कर अपने देश लौट जायें और अपनी सेवाएँ मुक्तिवाहिनी को अर्पित कर दें। उनके साँवले मुँह पर कुछ संकोची, कुछ लजीला-सा भाव था, जो उन्हें और प्रिय बना देता था। मई के दूसरे सप्ताह में उन्होंने इस अस्पताल की योजना बनायी और धीरे-धीरे उसे मूर्त्तरूप दिया।

उन्होंने बताया कि अस्पताल में इस समय डॉक्टर कुल तीन हैं। एक वे स्वयं, दूसरे डॉ० शमसुद्दीन, एम० डी० (यू० एस० ए०) जो २७ जून को इस अस्पताल में आये और इस समय मेडिकल वार्ड के इंचार्ज हैं। वे भी हम लोगों से मिले। कुछ नाटे-से, कुछ मोटे-से हँसमुख और मिलनसार। डॉ० शमसुद्दीन अपने रोगियों को प्रसन्न रखने की कला में प्रवीण लगे।

तीसरे थे डॉ० नजीम एम० बी० बी० एस० जो मैमनसिंह मेडिकल कालेज अस्पताल में असिस्टेंट सर्जन थे। इस अस्पताल में वे शुरू से रहे हैं। अधूरे साधनों से पूरे ऑपरेशन करने में दक्ष डॉ० नजीम ही मुझे अपने साथ सर्जिकल वार्ड दिखाने ले गये थे।

उन्होंने बताया कि जो उपकरण हम लोगों के पास हैं, उन्हीं के सहारे हम कठिन-से-कठिन ऑपरेशन कर डालते हैं। क्या करें और कोई चारा ही नहीं है। जब मैंने वहाँ किये गये कुछ कठिन ऑपरेशन के बारे में

जानना चाहा, तो वे मुझे मतीन की शैया के निकट ले गये। मोतीनगर क्षेत्र में युद्ध करते समय मतीन आहत हुआ था। एक गोली उसके दाहिने जवड़े में लगी थी, जो बायें जवड़े को भी तोड़ती हुई निकली। दूसरी गोली बायें कंधे में लगी थी, उसके कंधे का जोड़ बिल्कुल टूट गया था। इसी अस्पताल में दो ऑपरेशन उसके किये गये। आशा है, तीन हफ्तों तक वह बिल्कुल ठीक हो जायेगा। मतीन के चार भाई लड़ाई में मारे गये थे। वे लोग स्वयंसेवक थे, नियमित सैनिक नहीं। मतीन की अब एकमात्र आकांक्षा यही है कि वह जल्द अच्छा हो और फिर रणक्षेत्र में अपने भाइयों की हत्या का बदला ले सके।

दूसरा बड़ा ऑपरेशन उन्हें खालिक का करना पड़ा था। वह ई० बी० आर० के पहले बटालियन का सिपाही है। तोप के गोले का एक टुकड़ा उसके दाहिने पाँव की एड़ी में लगा था। एक गोली उसके बायें घुटने में लगी थी और दूसरी पीठ में। तीन ऑपरेशन के बाद अब वह खतरे से बाहर है।

ऑपरेशन थियेटर के नाम पर एक चौकोर झोपड़ा है, जिसके बीचो-बीच ऑपरेशन टेबुल के रूप में है एक साधारण ऊँची-सी काठ की मेज। लालटेन की रोशनी में ही वे लोग अब तक रात को भी ऑपरेशन करते रहे। दो-तीन दिन हुए उन्हें एक पेट्रोमैक्स मिला है। बिजली की रोशनी की तो कोई बात ही नहीं उठती।

डॉ० मोबिन और डॉ० नजीम की सबसे बड़ी असुविधा यह है कि रक्त-परीक्षण और रक्तदान की समुचित व्यवस्था अभी तक नहीं हो पायी है। हम लोगों से उन्होंने बहुत आग्रहपूर्वक कहा कि यदि आप लोग इन यंत्रों की मदद करवा सकें, तो बहुत बड़ा काम हो। भारती जी ने और मैंने उन्हें आश्वासन दिया कि हम लोग इसकी भरपूर चेष्टा करेंगे।

तीन डॉक्टरों के अलावा मेडिकल कॉलेज के चौथे, पांचवें वर्ष के तीन छात्र भी हैं, जो उनकी सहायता करते रहते हैं। प्रशिक्षित नर्स एक भी नहीं है, किंतु ढाका के एक कॉलेज की प्राध्यापिका तथा ढाका विश्वविद्यालय की आठ-दस छात्राएँ नर्सिंग के लिए अपना घरबार छोड़ कर वहाँ आ गयी हैं। इन लड़कियों में हिंदू-मुसलमान दोनों हैं। प्रसिद्ध कवयित्री बेगम सूफिया कमाल की दो लड़कियाँ सईदा कमाल और सुलताना कमाल भी इसी अस्पताल में नर्स का काम कर रही हैं।

इनके अलावा नर्सिग असिस्टेंट, वार्डबॉय, रसोइया, जमादार आदि मिला कर बीस जन और हैं।

इस छोटे-से अस्पताल ने चार-साढ़े चार महीनों में अत्यंत बहुमूल्य सेवा की है। ले० कर्नल खालिद मुशर्रफ इसे अपने देश की जीवंतता का एक छोटा-सा किंतु गौरवोज्ज्वल प्रमाण मानते हैं। उन्होंने बार-बार इन डॉक्टरों और विद्यार्थियों की प्रशंसा हम लोगों से की थी। रात-दिन निष्ठापूर्वक परिचर्या करना कितना कठिन काम है? इसे भुक्तभोगी हीं जान सकते हैं। अस्पताल की उपयोगिता और आवश्यकता का एक निदर्शन यह भी है कि साठ शैयाओं का एक ब्लॉक और बन रहा है। तरुण इंजीनियर नूरुल हुदा एवं ताज उल इस्लाम उस काम पर जी-जान से जुटे हुए हैं। उन्होंने मुझे बताया कि एक पखवारे में उसका काम पूरा हो जायेगा।

ऑपरेशन थियेटर और डॉक्टरों, नर्सों के आवास के बीच खुला-सा मैदान है। डॉ० मोबिन के अनुरोध से हम लोग वहीं कुछ कुर्सियों पर कुछ मूढ़ों पर, कुछ जमीन पर बैठ गये। बातचीत भी होती रही और लड़कियों की कृपा से चाय की प्यालियाँ भी चलती रहीं। बालकृष्ण जी ने अपने भानुमती के पिटारे से बिस्कुट और लेमनचूस निकाल कर सबको चकित कर दिया।

× × ×

यह कैसे संभव होता कि दस-पंद्रह बंगाली लड़के-लड़कियाँ हों और गीत न हों। सईदा कमाल और रेशमा आलम ने बांगला देश का राष्ट्रगीत गाया 'आमार सोनार बांगला, आमी तोमाय भालोबाशी'। वहाँ उपस्थित सभी लोगों ने अपने आचरण द्वारा प्रमाणित किया था कि वे लोग सचमुच अपने सोने के बंगाल को प्यार करते हैं। इसलिए यह गाना उस परिवेश में और अधिक सार्थक लगा।

उन्होंने दूसरा गाना गाया :—

आजि बांगला देशेर हृदय हते कखन आपनि।
तुमि एइ अपरूप रूपे बाहिर हले जननी।
ओ गो मा, तोमाय देखे-देखे आंखिना फिरे।
तोमार दुआर आजि खुले गेछे सोनार मंदिरे।

अर्थात् ओ माँ, आज बांगला देश के हृदय से न जाने कब अपने आप ही तुम इस अपूर्व सुंदर रूप में प्रकट हो गयीं, ओ माँ तुम्हें देखते रहने पर भी आँखें नहीं भरतीं। तुम्हारे सोने के मंदिर का द्वार आज खुल गया है।

रवींद्रनाथ ने इसी गीत में आगे कहा है :—

डान हाते तोर खड्ग ज्वले, बाँ हात करे शंकाहरण।
दुइ नयने स्नेहेर हासि, ललाट नेत्र आगुन बरण।
ओ गो मा तोमार की मूरति आजि देखी रे
तोमार दुआर आजि खुले गेछे सोनार मंदिरे।

दुर्गा के रूप में बंगजननी की वंदना करते हुए कविगुरु ने लिखा है—तेरे दाहिने हाथ में खड्ग झलकता रहा है, तेरा बायाँ हाथ शंकाओं को दूर कर रहा है, तेरे दोनों नयनों में स्नेह का हास है, किंतु तीसरा ललाट नेत्र अग्निवर्ण है। ओ माँ तुम्हारी यह कैसी मूर्ति आज देख रहा हूँ ? तुम्हारे सोने के मंदिर का द्वार आज खुल गया है।

गानेवाली लड़कियाँ मुसलमान थीं, सुनने वाले अधिकतर मुसलमान ही थे, पर किसी को कोई आपत्ति न थी, उल्टे भक्ति का भावभीना वातावरण सबके हृदय को पवित्र कर रहा था।

मुझे याद आयी सन् १९४६ की बात। तब मैं प्रेसीडेंसी कॉलेज का छात्र था। एक उत्सव के अवसर पर 'वंदे मातरम्' गाने पर मेरे एक सहपाठी एवं मुस्लिम स्टूडेंट फेडरेशन के कार्यकर्त्ता हाफिज ने इस आधार पर आपत्ति की थी कि इसमें मूर्तिपूजा की भावना भरी हुई है, जो इस्लाम के विरुद्ध है। हाफिज भी बंगाली था, ये भी बंगाली हैं। मनोभाव में आज कितना जबर्दस्त परिवर्तन आ गया है। माँ के रूप में देश की वंदना करना बंगाली संस्कृति है, इसमें हिन्दू-मुसलमान का सवाल क्यों उठे ?

× × ×

करीम भाई के अनुरोध पर मैंने सिकंदर अबू जफर की कविता सुनायी—'चलबेइ, चलबेइ, आमादेर संग्राम चलबेइ।' फिर तो बाकायदा कविगोष्ठी हो गयी। भारती जी चाहते थे कि जो इस संग्राम में भाग ले रहे हैं, यदि वे कविता भी लिखते हों या साहित्य की किसी अन्य विधा में रचना करते हों, तो उनकी कृतियों के हिन्दी अनुवाद को धर्मयुग में प्रकाशित किया जाये। एक मेडिकल छात्र ने अपनी कविता सुनायी। सईदा कमाल ने शमसुर्रहमान

की नयी कविता सुनायी 'प्रवेशाधिकार नेई'। वह मुझे इतनी अच्छी लगी कि मैंने उसका अनुवाद करने का जिम्मा ले लिया। मैंने फिर नसीमुन आरा की कविता सुनायी—"तिमिर हननेर गान आमार कंठे। आमार हाते ई चाबी आगामी दिनेर।" मुझे यह जान कर बहुत खुशी हुई कि इसकी कवयित्री छात्रा है और उसे पहिचानने वाली दो-तीन लड़कियाँ वहाँ थीं। बेगम सूफिया कमाल की कविता सुनाने में सईदा को संकोच हो रहा था। उसने वह कविता यों ही भारती जी को थमा दी। रवींद्रनाथ की सुप्रसिद्ध कविता 'प्रश्न' की आवृत्ति करते समय मुझे लगा कि यह प्रश्न आज बांगला देश का है अपनी संपूर्ण जनता से :—

जाहारा तोमार विषाइ छे वायु
निभाइ छे तब आ लो।
तुमि कि तादेर क्षमा करिया छो
तुमि कि वेसे छो भालो।

अर्थात् जो तुम्हारी वायु को विषाक्त कर रहे हैं, तुम्हारे प्रकाश को बुझा रहे हैं, तुमने क्या उन्हें क्षमा कर दिया है? तुम क्या उन्हें प्यार करने लगे हो? इसका एक ही जवाब हो सकता है, इस गणहत्या की कोई क्षमा नहीं है, हत्यारों से भाई का रिश्ता नहीं जुड़ सकता, उनको प्यार नहीं किया जा सकता।

अँधेरा हो चला था, अतः हम लोग उठ खड़े हुए। ऑपरेशन थियेटर में पेट्रोमैक्स के प्रकाश में डॉ० मोबिन और डॉ० नजीम किसी ऑपरेशन की तैयारी में जुटे हुए थे। युद्ध क्षेत्र से कुछ घायल सिपाही अभी-अभी वहाँ लाये गये थे।

ऑपरेशन, चिकित्सा, सेवा, देखरेख उसी के बीच गीत, कविता, हँसना, मुस्कुराना भी। विनाश की शक्तियों को चुनौती देनेवाली निर्माण की शक्तियाँ गमगीन और निराश नहीं हैं। यही उनकी जीत की पूर्वसूचना है। गोलों की गड़गड़ाहट के बीच आदमी को बचाने की साधना में कुछ आदमी लगे हुए हैं। हैवानियत जीत नहीं सकती। उस अस्पताल से विदा होते समय बच्चन की ये पंक्तियाँ बार-बार याद आ रही थीं।

एक चिड़िया चोंच में तिनका लिये जो जा रही है,
वह सहज ही में पवन उंचास को नीचा दिखाती।

१७.

कर्नल उस्मानी के साथ एक शाम

युद्धरत देश के प्रधान सेनापति को तो पहाड़ की तरह अडिग, सुदृढ़ और कठोर होना चाहिए। किन्तु जैसा कि दिनकर ने कहा है, 'क्या न व्याकुल निर्झरों का गिरि हृदय में वास है?' मेरा सौभाग्य कि मुझे कर्नल उस्मानी के दोनों रूपों के एकत्र दर्शन हुए २४ नवम्बर, ७१ की शाम को। उस पर तुर्रा यह कि इस भेंट की न तो पूर्व योजना थी, न संभावना ही। मैं जानता था कि कर्नल उस्मानी दौरे पर गये हुए हैं युद्धक्षेत्र के अग्रिम मोर्चों के परिदर्शन के लिए। उनके पी० आर० ओ० (जन सम्पर्क अधिकारी) श्री नजरुल इस्लाम ने मुझसे अनुरोध किया था कि धर्म-युग में प्रकाशित कर्नल उस्मानी तथा ले० कर्नल खालिद मुशर्रफ की भेंट-वार्ताओं के बंगला अनुवाद 'बांगलार वाणी' तथा अन्य पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशनार्थ मैं उन्हें दे जाऊँ। मैं मुजीब नगर गया था श्री इस्लाम को उन भेंट-वार्ताओं का बंगला अनुवाद देने।

कर्नल उस्मानी के कार्यालय के ठीक सामने मुझे नजरूल दिखायी पड़े। मैंने उमग कर उन्हें आवाज दी और उनकी तरफ लपका, पर वे मुझे देख कर भी मर्यादा पूर्वक खड़े रहे। एक क्षण के लिए मैं ठिठका, क्या बात है, क्या ये मुझे पहचान ही नहीं पा रहे हैं? या मुझसे ही भूल हो रही है। पर वे नजरूल ही थे, मैंने फिर हाँक लगायी 'व्यापार टा कि, चीन्तेइ पाच्चेन ना जे' (बात क्या है? आप तो मानो पहिचान ही नहीं पा रहे हैं।) उन्होंने संयमपूर्वक सामने संकेत किया, मैंने देखा उनसे थोड़ी ही दूर सामने की ओर स्वयं कर्नल उस्मानी खड़े थे। मैं सकपकाया, पर उन्होंने बड़े स्नेह से कहा• 'आइये, आइये शास्त्री जी, थोड़ी देर बैठ कर बात चीत करें।' वे मुझे अपने साथ अपने दफतर में ले गये। नजरूल साहब भी पीछे-पीछे आकर वहीं बैठ गये।

बात चीत शुरू हुई। कर्नल कुछ ही समय पहले तीन दिनों के दौरे के बाद लौटे थे। मोर्चों के अलावा वे घायल सिपाहियों···मुक्तियोद्धाओं को देखने अस्पताल भी गये थे। मुक्तिवाहिनी के जवानों के साहस और मनोबल से वे

बहुत प्रसन्न और उत्साहित थे। मुझसे बोले कि 'मैं गया था उन लोगों को धीरज बँधाने, पर हाथ कट जाने पर, पाँव कट जाने पर, विकलांग हो जाने पर भी मेरे जवानों के चेहरे पर हँसी थी। मैं एक-एक से मिला। मेरे लिए यह प्रसंग एक ही साथ पीड़ादायक और प्रेरणादायक दोनों था। कितनी बड़ी संख्या में हमारे जवान अपने देश के लिए खून बहा रहे हैं? घायल हो रहे हैं, प्राण दे रहे हैं···और कितनी दृढ़ता के साथ?

इकतीस वर्ष पुराने मेरे एक भारतीय साथी मुझसे हाल ही में मिले। उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या यह बात तुमने कही थी कि यदि भारत सरकार से मदद मिलती तो अप्रैल में ही बांगला देश स्वाधीन हो जाता, मेरे हाँ कहने पर उन्होंने कहा कि तब वह स्वाधीनता तुम्हारी उपार्जित स्वाधीनता नहीं होती। आज इतना खून बहाने के बाद जो स्वाधीनता तुम्हें मिलेगी, वह तुम्हारी होगी, स्थायी होगी। मैं स्वीकार करता हूँ कि उनकी बात

कर्नल स्पष्टतः थके-थके लग रहे थे। इतनी बड़ी जिम्मेदारी और बढ़ती उम्र···दोनों ने उन पर गहरी छाया छोड़ी है। फिर तीन दिनों का कठिन दौरा। पर फिर भी उनका मन जोश से भरा हुआ था। मुक्तिवाहिनी ने गुरिल्ला युद्ध के स्थान पर अब खुले युद्ध और आक्रमण की नीति अपनायी है, यह बताते-बताते वे उत्साह के आवेग में उठ खड़े हुए, दीवार पर लगे बांगला देश के बड़े से फौजी नक्शे में बताने लगे कि कहाँ-कहाँ मुक्तिवाहिनी ने जोरदार हमला किया है और कौन-कौन से अंचलों को मुक्त कर लिया है? उन्होंने बताया कि हमारी रणनीति इस समय अधिक स्थानों पर अधिकार करने की उतनी नहीं है, जितनी पाक फौज को उलझाने और उनका पारस्परिक सम्बन्ध छिन्न कर उन्हें समाप्त करने की या आत्म समर्पण के लिए विवश करने की है।

मेरे परिचित तथा मन्द भाग क्षेत्र के नायक कैप्टेन गफ्फार की वे बड़ी तारीफ कर रहे थे। उन्होंने बताया कि 'कै० गफ्फार ने बड़ी बहादुरी से कस्बा पर दखल कर लिया है, उन्हें वीरता का पदक दिया गया है। बांगला देश की सीमा पर पूर्व, उत्तर, पश्चिम तीनों दिशाओं से हम लोग बढ़ रहे हैं और काफी आगे बढ़ गये हैं। हम लोगों को शीघ्र ही पूरी विजय मिलेगी, इसमें कोई सन्देह नहीं है।'

मैंने कहा, 'स्वाधीन ढाका में मैं आपकी भेंट-वार्ता लेने आऊँगा।' वे हँसे, बोले 'जरूर, आप मेरे अतिथि रहियेगा।' बात चीत इतनी आत्मीयता के

साथ हो रही थी कि मैं चकित था। लग रहा था कि कर्नल अपने मानसिक तनाव से मुक्ति पाने के लिए सहज भाव से कुछ देर बातें करते रहना चाह रहे थे। आखिर वे भी मनुष्य हैं, सहृदय भावुक मनुष्य। लगातार लड़ाई के वातावरण में युद्ध-संचालन करते-करते बीच-बीच में ऐसे स्नेह भाजन श्रोता से बातें करना जो बांगला देश की स्वाधीनता का पक्का हामी है, उन्हें अच्छा लग रहा होगा। मैं भी उन्हें सहज भाव से सुनता रहा, बीच-बीच में ऐसे प्रश्न अवश्य कर देता था जिनसे वे अपनी बात का और खुलासा कर सकें।

उन्होंने बड़ी संजीदगी से, पीड़ा से कहा, 'लड़ाई जीतना फिर भी आसान नहीं है, शान्ति में जयी होना बहुत कठिन है। जैसे लक्षण दिख रहे हैं, उनसे यही लगता है कि इस लड़ाई का फल हम लोगों के अनुकूल रहेगा···कब तक ? यह तो अभी नहीं कहा जा सकता, पर बहुत विलम्ब नहीं होगा, यह कहा जा सकता है। पर जीतने के बाद। जीतने के बाद हम लोगों को मिलेगा करीब-करीब विध्वस्त हो गया अपना देश···घायल, गरीब, शिक्षाहीन। उसका पुनर्निर्माण करना, जन जीवन को पुनः आशान्वित और कर्मठ बनाना, दिये हुए वचनों को पूरा करना···बहुत-बहुत कठिन काम है, लड़ाई जीतने से कहीं अधिक कठिन। भगवान की कृपा से···इंशा अल्ला हमारे नौजवान कर्मठ साथी उस काम को भी पूरा करेंगे पर मैं अब थक चला हूँ, जीत के बाद मैं सेवा निवृत्त होकर एकान्तवास करूँगा, संभव हुआ तो कुछ लिखूँगा।

फिर बोले, आप जानते ही हैं कि एक बार मैं सेवानिवृत्त हो चुका था। वंग वन्धु मुजीब के आग्रह पर मैंने चुनाव लड़ना स्वीकार किया था। मैंने उसी समय उनसे कह दिया था कि मैं राजनीति में नहीं, गणनीति में विश्वास करता हूँ। राजनीति का अर्थ है, शक्ति प्राप्त करने की लड़ाई जब कि गणनीति का अर्थ है जनता की सेवा में आत्मनियोग। स्वतंत्र बांगला देश में कोई प्रशासनिक अधिकार मुझे मिले, ऐसी मेरी कत्तई इच्छा नहीं है। भगवान ने जो काम मुझे सौंपा, उसे अपनी शक्ति भर मैंने निभाया, निभा रहा हूँ, अब नौजवानों को आगे आना चाहिए।

मैंने पूछा, क्या आप कुछ लिखते रहे हैं ? बड़ी विनम्रता से वे बोले हाँ, मैंने ईस्ट बंगाल रेजिमेन्ट का इतिहास लिखा था। सन् १९५० में मुझ पर उसके गठन का उत्तरदायित्व सौंपा गया था। बात तो थी कि मैं अपने जवानों को प्रोत्साहित करूँगा, पर सच यह है कि उन्होंने ही मुझे प्रोत्साहित

किया अपनी विनम्रता, सरलता और निष्ठा से। मैंने ईस्ट बंगाल रेजिमेंट को सचमुच बंगाली बनाने का प्रयास किया था। हम लोगों का प्रयाण गीत था नजरूल इस्लाम का सुप्रसिद्ध गीत :—

ऊर्ध्व गगने वाजे मादल
निम्ने उतला धरणी तल
अरुण प्रातेर तरुण दल
चल रे चल रे चल।

हम लोग अपने उत्सवों पर बराबर कवि को सम्मानपूर्वक निमंत्रण-पत्र भेजते रहे। मुझे नहीं मालूम कि वे पत्र उन तक पहुँचते रहे या नहीं। उनके गीतों ने मुझे बड़ी प्रेरणा दी है।

मैंने कहा, 'इस समय तो उनका वह विख्यात गीत बहुत ही सार्थक है आप लोगों के लिए :—

दुर्गम गिरि कान्तार मरु दुस्तर पारावार हे
लंघिते हवे रात्रि निशीथे यात्री रा हुशियार।

कर्नल बच्चों की तरह उत्साहित हो गये, बोले 'हाँ, हाँ यह गीत मुझे बहुत ही अच्छा लगता है। फिर अपने पी० आर० ओ० से बोले कि कवि के दर्शन के लिए मैं उनके घर जाना चाहता हूँ, जरा-सा अवकाश मिले तो तुम उसकी व्यवस्था करना।

मैंने बताया कि कवि के पुत्र सव्यसाची इस्लाम से मेरा परिचय है। बांगला देश की स्वतंत्रता की लड़ाई में वे अपना सहयोग दे रहे हैं। कलकत्ता विश्वविद्यालय में इसी प्रसंग में आयोजित एक प्रदर्शनी और सभा में उन्होंने अपने पिता की कविताओं की आवृत्ति की थी। पी० आर० ओ० बोले—जी, मैं समय मिलते ही इसकी व्यवस्था करूँगा।

कर्नल कहने लगे, जानते हैं, जब पहली बार मैंने नजरूल को देखा था तब मैं बच्चा था हम लोग गो आलन्दो जाने वाले स्टीमर पर सफर कर रहे थे। उसी में कवि नजरूल इस्लाम भी थे। उनके लम्बे घुँघराले वाल, साजन्सज्जा, हाव-भाव को देख कर मैंने अपनी माँ से कहा था वह आदमी कुछ-कुछ पागल लगता है। उन्होंने मुझे समझाया कि ऐसा नहीं कहना चाहिए, ये बहुत बड़े कवि हैं, इनका नाम है नजरूल इस्लाम। तभी से मैं उनकी कविता का प्रेमी हो गया। रवीन्द्रनाथ की चयनिका और नजरुल की कविता पुस्तकें मैं प्रायः अपने साथ रखता हूँ।

फिर जरा सा मुस्कुरा कर बोले, क्या आप जानते हैं ? एक बहुत बड़ा अंग्रेज सेनापति बहुत अच्छा कवि भी था। मैं अनुमान भिड़ाने लगा पर वे सही नहीं निकले। उन्हें पहली बुझौवल का सा आनन्द आ गया। उन्होंने बताया कि मेरा संकेत लार्ड वेवेल की ओर है, उनका पुत्र मेरा सहपाठी था। उसने अपने पिता का काव्य संग्रह मुझे भेजा था। उनकी कविताएँ सचमुच अच्छी हैं।

अलीगढ़ विश्वविद्यालय में छः साल रहने के कारण उर्दू कविता के प्रति उनका अनुराग स्वाभाविक ही कहा जायेगा। उन्होंने बताया कि 'गालिब का दीवान अपने छात्र जीवन में मैंने कई बार पढ़ा पर अब जीवन इतना व्यस्त और भिन्न हो गया है कि कविता की चर्चा छूट सी गयी है। फिर कभी समय मिला तो कविता में रमूँगा।'

मेरे मुँह से बेसाख्ता गालिब का शेर निकल गया :—

दिल ढूंढ़ता है फिर वही फ़ुर्सत कि रात दिन
बैठे रहे तसव्वरे जाना किये हुए।

कर्नल मुस्कुरा कर रह गये।

लेखन की बात फिर उठी तो उन्होंने जैसे भेद प्रकट करते हुए कहा, 'मैं अपने जीवन का इतिवृत्ति भी लिख रहा था। मेरे पुरखों ने अपना परिचय लिख छोड़ा था, उन सबको समेट कर मैं पुस्तक का आकार दे रहा था। बर्बर पाक फौजियों ने मेरे घर को लूट कर जला कर खाक कर दिया है। उसी ध्वंसलीला में मेरी रचनाएँ भी जल कर खाक हो गयी होंगी, भला उनको उन लोगों ने क्यों छोड़ा होगा ? मुझे आत्मकथा के अंशों के नष्ट होने का उतना अफसोस नहीं है, जितना ईस्ट बंगाल रेजीमेंट के इतिहास के नष्ट हो जाने का है। अब फिर न तो उतनी सामग्री ही जुट पायेगी, न मैं उतना बड़ा इतिहास ही लिख पाऊँगा खैर खुदा की मर्जी।'

ईस्ट बंगाल रेजिमेन्ट के अधिकारियों के सम्पर्क में आने का सौभाग्य मुझे भी मिला है। मैंने कर्नल को बताया कि ले० कर्नल खालिद मुशर्रफ और कैप्टेन गफ्फार ने किस आत्मीयता के साथ हम लोगों का स्वागत शालदा नदी के मन्द भाग क्षेत्र में किया था। खालिद मुशर्रफ के सहपाठी बैरिस्टर सुवेद अली मेरे साथ उत्तर भारत के विश्वविद्यालयों के दौरे पर गये थे, वे भी वहाँ मौजूद थे अतः खालिद साहब ने हम लोगों की खातिरदारी और भी प्रेम से की थी।

कर्नल को जब पता चला कि बांगला देश के प्रतिनिधियों के साथ हम लोग अलीगढ़ विश्वविद्यालय भी गये थे और कुछ साम्प्रदायिक तत्वों के

विरोध के बावजूद वहाँ भी बांगला देश के प्रति पर्याप्त सहानुभूति है तो वे बहुत खुश हुए। उनकी पुरानी स्मृतियाँ जाग उठीं। वे उसी विश्वविद्यालय में छः साल तक विद्यार्थी रहे थे। अलीगढ़ विश्वविद्यालय के प्रति उनकी ममता और जिज्ञासाओं का पार न था।

सबसे पहले उन्होंने पूछा, 'आजकल वहाँ के वाइस चांसलर कौन हैं ? मैंने बताया, अरबी के प्रख्यात विद्वान डॉ० अलीम।' वे बोले 'ओ हो हो, अलीम साहब वाइस चांसलर हो गये। उनकी फ्रेंच कट दाढ़ी वैसी ही है ?' मैंने कहा, 'हाँ, अब सफेद हो गई है, पर उनके चेहरे पर बहुत फबती है।' वे बोले, मेरे जमाने में वे नये-नये लेक्चरर लगे थे। उन दिनों अरबी के प्रोफेसर हेड एक जर्मन विद्वान थे, रीडर भी एक जर्मन थे और संस्कृत के हेड एक मुसलमान सज्जन थे। थीन, मजे की बात। मुझे लगा कर्नल उस्मानी कुछ समय के लिए फिर युवा छात्र हो गये हैं। उनके पके चेहरे पर यौवन की झलक और आँखों में शरारत की चमक सी आ गई। फिर तो देर तक व अपने छात्र जीवन के बारे में बताते रहे।

हम लोग बड़े नटखट भी थे और पढ़ने-लिखने में तेज भी। अपने गुरुओं की इज्जत करते थे लेकिन उनसे छेड़खानियाँ करने से भी बाज नहीं आते थे। कैसा पारिवारिक सा लगता था विश्वविद्यालय का वातावरण। कालेज, लाइब्रेरी, हास्टल की बिल्डिगें पास-पास थीं। सेमिनार लाइब्रेरी में बैठ कर देर-देर तक मैं किताबें पढ़ता रहता था और दो मिनट में अपने हास्टल भी आ-जा सकता था। हमारे प्रोफेसर अपने घर में शाम के समय सेमिनर क्लास लेते थे। क्या खाली पढ़ाई-लिखाई की बातें होती थीं, दुनियाँ भर की बातें पूछ-पूछ कर हम लोग उनको परेशान कर देते थे। चार-पाँच से ज्यादा विद्यार्थी तो कभी सेमिनार में होते ही न थे। हम लोग वहीं चाय पीते बहस करते, अपनी दिक्कतें पेश करते और हमारे प्रोफेसर प्यार से हम लोगों को समझाया करते। प्रोफेसर हबीब तो अपने घर खाना खिला कर ही हम लोगों को बिदा करते। कैसे हैं प्रो० हबीब आजकल ? मैंने जब उन्हें बताया कि चार-पाँच महीने पहले ही उनका स्वर्गवास हो गया तो कुछ समय के लिए वे उदास हो गये।

'और नवाब छतारी के बारे में आप कुछ जानते हैं ?'

'जी हाँ ? वे हम लोगों के स्वागत में दिये गये डिनर में पधारे थे। बूढ़े हो गये हैं, पर अभी चुस्त हैं।'

'हम लोगों के समय वे टेनिस खेलने के लिए भी विश्वविद्यालय आते थे, गवर्नर हो जाने के बाद भी। अलीगढ़ विश्वविद्यालय के विकास में

उनका बहुत बड़ा योगदान है।

वहाँ की डिबेटें बड़ी जानदार हुआ करती थीं। चूँकि अलीगढ़ विश्व-विद्यालय का मत एक तरह से सारे मुस्लिम भारत का मत होता था अतः उन्हें सुनने बड़े-बड़े लोग भी आया करते थे। फिर जरा गौरव भाव से बोले, 'जानते हैं सन् १९३७ के यू० पी० के चुनाव में कांग्रेस जीती थी फिर भी मंत्रिमंडल नहीं बना रही थी क्योंकि उसके नेताओं का कहना था कि गवर्नर के विशेषाधिकार के कारण हम लोग प्रभावी ढंग से कुछ कर ही नहीं सकते हैं तो सरकार बनाने से क्या लाभ ? इस समस्या पर विचार करने के लिए जो डिबेट हुई थी, उसमें मैंने ही प्रस्ताव रखा था कि कांग्रेस को सरकार बनानी चाहिए। यदि गवर्नर अपने विशेषाधिकार का प्रयोग करेंगे तो सरकारी अपरिवर्तनवादिता का पर्दा फाश हो जायेगा। मुझे बखूबी याद है कि उस डिबेट को सुनने के लिए श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित और डॉ० सम्पूर्णानन्द भी आये थे। उस डिबेट में मेरा प्रस्ताव स्वीकृत हुआ था और मुझे इस बात की भी खुशी है कि उसके बाद कांग्रेस ने सरकार भी बनायी थी।

ओह ! कुछ लड़के कितने शैतान थे ? एक बार श्रीमती सरोजिनी नायडू आयी थीं हम लोगों के बीच भाषण देने। कुछ लड़कों ने पीछे से शोर गुल करना शुरू किया। वे तमक कर बोलीं, यह कैसा दुस्साहस है ? तुम लोगों का। समझ रखो जब तुम लोगों के पिता यहाँ विद्यार्थी रहे होंगे तब भी मैं यहाँ व्याख्यान देने आती थी और कोई चूं भी नहीं करता था। इस पर एक लड़के ने पीछे से कह ही तो दिया, मैडम तब आप जवान रही होंगी। इस पर हँसी का वह तूफान आया कि कुछ न पूछिये, श्रीमती नायडू ने कहा, तुम लोग बिलकुल लाइलाज हो गये हो और फिर वे भी हंस पड़ीं।

अलीगढ़ विश्वविद्यालय के पुराने भवनों, उद्यानों, खेल के मैदानों के बारे में वे पूछते रहे। मुझे जितना मालूम था, मैंने बताया। यह जानकर वे बहुत खुश हुए कि इन दिनों विश्वविद्यालय का बहुत विस्तार हुआ है। बड़ी हसरत से बोले, एक बार जाऊँगा मैं अपना पुराना विश्वविद्यालय देखने। मैंने कहा, स्वतंत्र बांगला देश के प्रधान सेनापति के रूप में अपने पुराने छात्र का स्वागत करते हुए अलीगढ़ विश्वविद्यालय को माता जैसा गर्व और गौरव होगा।' वे बोले, हाँ, मेरी मातृ विधासंस्था आल्मामेटर तो वही है। मैं उसी की देन हूँ। सर सैयद अहमद की स्मृति में उन्होंने नमस्कार किया।

बात चीत घूमकर फिर उन पर उनके परिवार पर आ गयी। मैंने पूछा आखिर आपने विवाह क्यों नहीं किया ? वे मेरा प्रश्न टाल गये, बोले, मैं तो जहाँ गया, वहाँ ही समरस हो गया। मेरे बड़े भाई के बच्चे मुझे अपने बच्चों जैसे ही लगते हैं। उनके बड़े भाई इस समय भी पश्चिमी पाकिस्तान में हैं और उनके बड़े भतीजे जो इंग्लैंड में प्रोफेसर हैं, उनकी लाख चेष्टाओं के बावजूद उनके बारे में कुछ पता नहीं चल सका। न जाने वे कैद में हैं या मुक्त हैं।

अपने परिवार की चर्चा करते हुए उन्होंने अपने दादाजी के बारे में एक मजेदार बात बतायी उन्होंने कहा, मेरे दादाजी बड़े ही दीनदार ईमानदार मुसलमान थे। वे स्वास्थ्य की दृष्टि से बकरी का दूध पिया करते थे। एक बार उनकी बकरी किसी और के खेत में चर आयी, उनको जब इस बात का पता चला तो उन्होंने उसका दूध पीना छोड़ दिया क्योंकि उनके लिए दूसरे के खेत में चरना चोरी करने के बराबर था। बकरी की चोरी का पाप तो उसके मालिक को ही भोगना पड़ेगा। अतः उन्होंने उसका दूध पीने से इन्कार कर दिया। आजकल के लोगों को यह व्यवहार सिली लग सकता है किन्तु इसका भी अपना गौरव है। अपने परिवार के ऊँचे आदर्शों के प्रति उनके मन में बड़ी श्रद्धा है।

बातचीत तो और लम्बी हो सकती थी किन्तु एक तो मुझे यह अहसास बराबर हो रहा था कि मैं कर्नल का बहुमूल्य समय लिये चला जा रहा हूँ दूसरे उनके कर्तव्यनिष्ठ पी० आर० ओ० नजरुल इस्लाम साहब विचलित हो रहे थे। जब खाँसने, खखारने, घड़ी देखने-दिखाने कुर्सी से उठने, उठने की मुद्रा बनाने का भी कोई प्रभाव कर्नल पर पड़ता उन्हें नहीं दिखा तब वे बोल ही पड़े, सर को अब आराम करने दीजिये, कई दिनों के दौरे के बाद वे आज शाम को ही लौटे हैं। 'कर्नल बोले', नहीं-नहीं, मैं आराम ही तो कर रहा हूँ। शास्त्री जी से बातें करके मेरा मन हरा हो गया। कैसी अच्छी यादगारें हैं ? पर हाँ, अब इनको काम होगा। कर्नल उठे, मैं भी उठ खड़ा हुआ।

मैंने उठते-उठते उन्हें याद दिलाया कि स्वतंत्र ढाका में मैं जरूर आऊँगा। वे तपाक से बोले, 'हाँ ? आप जरूर आइयेगा और मेरे अतिथि के रूप में रहियेगा। "जय बांगला"।

१८.
जैसोर-खुलना-यात्रा

सैकड़ों घावों को झेलकर भी स्वाधीन बांगला देश उठ खड़ा हुआ है। राजनीतिज्ञों की वाणी ने नहीं, जाग्रत जनता की हुंकारों ने, हजारों, लाखों व्यक्तियों की किलकारियों ने, उनकी आँखों की चमक और चेहरों की दमक ने मुझे यह संदेश दिया, जब विजय के ठीक दूसरे दिन १७ दिसम्बर को स्वदेशी और विदेशी पत्रकारों के साथ मैंने भारतीय सेना के संरक्षण में जैसोर-खुलना की यात्रा की।

पिछली यात्राओं से कितना भिन्न थी यह यात्रा ? प्रत्येक चौराहे पर खड़ी मुक्त ग्रामीणों और नागरिकों की भीड़ स्वतःस्फूर्त भाव से जयकारों-पर-जयकार लगा रही थी। कैसे आंतरिकता भरे स्वरों में ये नारे गूँज रहे थे—

भारत-बाँगला मैत्री, जिंदावाद, जिंदाबाद। जैलेर ताला भांगबो, शेख मुजीब के आनबो (जेल का ताला तोड़ेंगे, शेख मुजीब को लायेंगे)

श्रीमती इंदिरा गांधी, जिंदाबाद जिंदावाद जय बांगला, जय हिंद।

बांगला देश की स्निग्ध हरियाली, नारिकेल कुंजों और कदली वनों की छाया आज जैसे स्निग्धतर हो उठी थी। यशोहर (जैसोर) जिले की प्राकृतिक सुषमा अपनी उदारता के लिए विख्यात है। उसके निवासियों की यह गर्वोक्ति सच ही है :—

खर्जूर वीथि, नारिकेल तरु, माठ, घाट मनोहर,
कीर्ति महान, सीमांत जेला, आमादेर यशोहर।

युद्ध की पहली बड़ी निशानी दिखी बेत्रवती (वेतना) नदी पर। भागती हुई पाक फौज ने उसके दोनों पुल—रेल पुल तथा सामान्य सड़क पुल—तोड़ दिये थे। वेत्रवती के किनारे बसे नाभारन गाँव के श्री एस. एम. नजीबुर्रहमान ने बताया कि भागने के पहले 'खानसेना' (यहियाखान की सेना—पाक फौज के लिए बांगला देश में प्रचलित नाम) ने बाजार में लूट-मार की थी।

लेकिन उस लुटे हुए बाजार की हर दूकान पर बांगला देश का झंडा लहरा रहा था। हरा कपड़ा न मिला, तो उससे मिलता-जुलता नीला कपड़ा ही झंडे के लिए काम में लाया गया था।

× ×

झीकरगाछा ! जैसोर पर अधिकार करने के लिए बड़ी लड़ाइयां चौगाछा, गरीबपुर और झीकरगाछा में ही हुई थीं। झीकरगाछा कपोताक्ष नदी पर बसा एक छोटा-सा कस्बा है। हार कर भागती पाक फौज ने यहाँ के दोनों पुल भी तोड़ दिये थे। ये पुल वेत्रवती नदी के पुलों से दुगुने बड़े होंगे। हमारी फौजों ने कुल दो घंटों में स्थानापन्न 'क्रुपमान' पुल बनाकर यह नदी पार की थी। यह 'क्रुपमान पुल' आज भी यातायात का साधन बना हुआ है। बांगला देश की दुर्दम्य नदियों पर पुल बनाने का काम मुख्यतः भारतीय सेना के 'बांबे इंजीनियरिंग ग्रुप' ने किया है और पर्याप्त कुशलता का प्रमाण देकर बांगला देश की मुक्ति को सहज बनाया है।

झीकरगाछा को चार दिसम्बर को मुक्त कराया गया था। अब यहाँ का जन-जीवन बिल्कुल सामान्य हो चुका है। स्थानीय अवामी लीग के नेता श्री शमसुल हक ने बताया कि यहाँ पाक फौज की काफी तैयारी थी, किंतु मुक्ति-वाहिनी के जवानों द्वारा पीछे से आक्रमण कर दिये जाने के कारण वे लोग घबड़ा गये। मुक्तिवाहिनी के कैप्टन रफीकुर इस्लाम अपने ६० जवानों के साथ अब भी झीकरगाछा में भारतीय जवानों के साथ डटे हुए थे।

मुझे झीकरगाछा में यह देखकर बहुत खुशी हुई कि भारत की वास्तुहारा सहायता समिति के तत्वावधान में यहाँ एक बड़ा 'टी स्टाल' चलाया जा रहा है, जिसमें फौजी जवानों और अधिकारियों को सेवाभाव से चाय पिलायी जाती है, नाश्ता कराया जाता है। उसमें काम करनेवाले बहुत से नौजवान मेरे परिचित थे। कमलेंदु, रवींद्र पालित, अनंत मजुमदार आदि ने मुझे देखते ही घेर लिया। हम लोगों के दल में करीब १४ विदेशी और ४ स्वदेशी पत्रकार थे। हमारे अनुरक्षक (एस्कॉर्ट) थे कैप्टन आर० डी० प्रधान। हम सबों को उनके अनुरोध से वहाँ चाय पीनी पड़ी। कैप्टन प्रधान से अब तक मेरी पटरी बैठ चुकी थी, अब और घनिष्ठता हो गयी। उन्होंने कहा, "आपके विद्यार्थी बहुत उत्साही और देशभक्त हैं। बांगला देश के भीतर आ कर जवानों के लिए टी स्टाल चलाना, सचमुच बहुत ही प्रशंसनीय कार्य है।" मेरा उत्तर था, "हम अपने विद्यार्थियों पर रच-

नात्मक संस्कार डालने का प्रयत्न किये बिना उन्हें दोषी करार देने के आदी हो गये हैं । हमारे विद्यार्थी अब भी बहुत अच्छे हैं । ज्यादा खराबी हमारे नेताओं में, हमारी व्यवस्था में है, नयी पीढ़ी में नहीं ।"

कैप्टन प्रधान बंबई के थे । धर्मयुग बंबई से निकलता है, अतः उन्हें वह अपना ही पत्र लगता है । फिर पूरे दल में मैं ही एक ऐसा व्यक्ति था, जिससे वे स्वदेशी भाषा में बातचीत कर सकते थे । चाय साथ-साथ पीने के बाद हम लोग साथ-साथ ही चलने लगे । हमारे जवानों के चेहरे गौरव और विजयबोध से दमक रहे थे । क्रूपमान पुल हम लोगों ने पैदल ही पार किया । उसकी रक्षा के लिए दोनों ओर तैनात जवानों से हम लोगों ने पूछा कि "लड़ाई कैसी हुई ?" वे मुस्करा कर बोले, "लड़ाई हुई ही कहाँ ? दुश्मन तो हम लोगों के गोलों की आवाज सुनकर ही भाग निकला ।" हम लोगों ने 'जय हिंद', 'जय बांगला' का नारा लगाया, तो उन्होंने भी उल्लास भरे स्वरों में दुहराया । 'जय हिंद, जय बांगला !'

× ×

जैसोर ! कलकत्ता की ओर से भारतीय सेनाओं के बढ़ाव को रोकने के लिए पाकिस्तान द्वारा बनायी गयी सबसे बड़ी रक्षा पंक्ति यहीं थी । जैसोर छावनी के ऊपर पाकिस्तानी फौजों को नाज था । मुक्तिवाहिनी के प्रधान सेनापति कर्नल उस्मानी ने मुझे स्वयं बताया था कि ढाका के पहले सबसे बड़ी लड़ाई जैसोर के लिए ही होगी । किन्तु पाक फौज का मनोबल गरीब-पुर के टैंक युद्ध की पराजय के बाद इतना टूट गया कि जैसोर को करीब-करीब बिना लड़े ही उन्होंने छोड़ दिया । जैसे ही उन्हें पता चला कि मुक्तिवाहिनी की सहायता से भारतीय फौजों ने उन्हें तीन तरफ से घेर लिया है और अब उन्हें बाद देकर ढाका की ओर बढ़ना शुरू कर दिया है, वैसे ही पाक अधिकारियों ने निश्चय किया कि वे जैसोर में घिरे रहने के स्थान पर खुलना को बचाने के लिए जी-जान से लड़ेंगे । इस हड़बड़ी के साथ पाक फौज जैसोर छावनी से भागी थी कि भारतीय जवानों को मेसों में उबलती दाल और सब्जियाँ भी ज्यों-की-त्यों मिली थीं । भारतीय सैनिक सूत्रों के अनुसार जैसोर में हम लोगों को पाक शस्त्रास्त्रों का इतना बड़ा भंडार मिला कि उन्हें लाने के लिए दो हजार ट्रकों की आवश्यकता होगी ।

जैसोर सात दिसंबर को मुक्त हुआ था। इन दस दिनों में और खासकर कलों के ढाका के आत्मसमर्पण के कारण शहर में आनंद का ज्वार आ गया था। कई छोटे-बड़े जुलूस शेख मुजीब, श्रीमती इंदिरा गांधी के चित्रों और बांगला देश के झंडों से सुसज्जित हो कर शहर की सड़कों पर घूम रहे थे। हम लोगों को देखते ही उनके स्वरों में और तेजी आ जाती। विदेशी पत्रकार स्वागत की इस भंगिमा से अभिभूत थे। वहाँ के बच्चे-बच्चे की आंखों में भारत बांगला देश का मित्र है। फ्रांसीसी टी० वी० कैमरामैन रिचार्ड सबसे अधिक खुश था, क्योंकि टी० वी० के द्वारा वह अपने देशवासियों को इन जुलूसों को प्रत्यक्ष रूप से...जीवंत रूप से दिखा सकता था।

जैसोर शहर या छावनी में एक भी गोला नहीं गिरा...युद्ध का कोई चिह्न वहाँ हम लोगों को नहीं दिखा, सिवाय इसके कि मुक्तिवाहिनी की जीप पर सवार सशस्त्र मुक्ति योद्धा शहर में गश्त लगा रहे थे। सरकिट हाउस इस समय मुक्तिवाहिनी का स्थानीय हेडक्वार्टर है, हम लोग वहाँ गये और लोग कमांडरों से बात करने भीतर गये, मैं बाहर साधारण मुक्ति योद्धाओं से ही गपशप करता रहा। १४ साल का मुशीर रहमान अपनी ऑटोमेटिक राइफल को लिये गर्व से खड़ा था। मेरे मन में तो कहावत फूटी 'अंगुल भर के बालम मिया गज भर की पूंछ' किंतु अपने कौतूहल को दबा कर मैंने उससे पूछा, "क्यों भाई? क्या तुम भी लड़े थे?" वह बोला "क्यों नहीं? मैंने बोयरा और गरीबपुर की लड़ाइयों में हिस्सा लिया था, गरीबपुर में मैंने पाँच पाकियों को मार गिराया"। मुक्तिवाहिनीं में भर्ती होने के पहले वह केवल नवीं कक्षा का विद्यार्थी था। उसका परिवार पाक अत्याचार की चपेट में आ गया। उसके पिता और बड़े भाई मार डाले गये, बहिन का क्या हुआ? पता नहीं। उसी दिन अपने चाचा के साथ वह मुक्तिवाहिनी में भर्ती हो गया। उसे ३५ दिनों की ट्रेनिंग मिली थी...बाकी ट्रेनिंग उसने युद्ध के मोर्चों में पायी है। मैं उसका मुँह ही ताकता रह गया। स्वाधीनता के युद्ध की अग्निदीक्षा ने बांगला देश की नयी पीढ़ी को आमूल बदल दिया है।

जैसोर शहर की अधिकांश दूकानें खुली थीं। सड़कें लोगों से भरी थीं, केवल रिक्शा और स्कूटर रिक्शा ही नहीं, बसें भी चल रही थीं। बीच-बीच में जरूर कुछ ताले जड़े मकान, कुछ बन्द दुकानें दिख रही थीं। पूछने पर पता चला, ये इमारतें, दुकानें गैर बंगाली मुसलमानों की हैं, जो बड़ी संख्या में

पाकिस्तानी फौज के साथ खुलना भाग गये हैं। इन वन्द तालों से प्रमाणित होता है कि गैर वंगाली मुसलमानों के मनों में भले वंगाली मुसलमानों के प्रति विश्वास न हो, वंगालियों ने उनकी सम्पत्ति को सुरक्षित रख छोड़ा है कि वे वापस आयें और वांगला देश के स्वतन्त्र नागरिक की हैसियत से निर्भय रहें।

जैसोर छावनी में पूरी शांति थी। हमारी फौज परित्यक्त छावनी का पूरा सदुपयोग कर रही थी। कमांडिंग ऑफिसर कर्नल देशपांडे खुलना गये हुए थे। कैप्टन प्रधान को आदेश था कि जैसोर से आगे जाने के लिए स्थानीय कमांडर की अनुमति लेना आवश्यक है। हम लोगों के सौभाग्य से मेजर शिंदे खुले दिल से बोले, "आप लोग निर्भय खुलना जा सकते हैं। हम लोगों ने रास्ता एकदम साफ कर दिया है। किसी भी प्रकार की माइन आदि फूटने का खतरा नहीं है।" फिर भी कैप्टन की दिलजमई नहीं हो रही थी कि विना कर्नल की आज्ञा के खुलना की ओर जाना उचित होगा या नहीं! मगर अंत में मेजर शिंदे की अनुमति और हम लोगों के आग्रह की विजय हुई।

अब हम लोग खुलना की ओर जा रहे थे। खुलना ढाका के बाद बांगला देश का सबसे बड़ा और समृद्ध नगर है। ढाका के पतन के वाद भी खुलना की पाक फौज ने लड़ाई जारी रखी थी। बाद में रात को उन्होंने आत्मसमर्पण का संदेश भेजा था। आत्मसमर्पण का विधिवत समारोह आज ही १–३० पर होने वाला था। सवा वारह बजे हम लोग जैसोर से विना खाये-पिये इस आशा से रवाना हुए कि शायद आत्मसमर्पण समारोह तक हम लोग खुलना पहुँच जायें। जैसोर से खुलना ३८ मील दूर है, किन्तु फौजी गाड़ियों का काफिला आगे-आगे चल रहा था, अतः हम लोगों को धीमी गति से ही वढ़ना पड़ा।

फूलतला गाँव में हम लोगों की बहुत बड़ी छावनी थी। जवानों ने वताया कि कल दोपहर तक हम लोग यहाँ से मोर्टार और मशीनगन दुश्मन के ऊपर चलाते रहे। दुश्मन दौलतपुर में मोर्चा वाँधे रास्ता रोके खड़ा था। यहाँ जम कर लड़ाई हुई थीं। फूलतला के आगे दोनों ओर की बस्तियाँ सुनसान थीं। गाँव के लोग अभी तक लौटे नहीं थे। बीच के कई मकानों पर गोलियों की वौछार के दाग थे। कुछ मकानों पर गोले भी गिरे थे, किंतु कुल मिला कर क्षति बहुत कम हुई थी। भारतीय सेना ने असैनिक क्षेत्रों पर गोलावारी की नहीं और भागती पाक फौजों ने अधिकतर पुल ही

तोड़े । अतः सामान्यतः नागरिक सम्पत्ति को इस युद्ध में बहुत कम नुकसान पहुँचा है ।

खुलना की समृद्धि का आभास दौलतपुर से ही मिलने लगा । एजेक्स, सोनाली, आफिल आदि कई जूट मिलों की इमारतें ज्यों-की-त्यों थीं । सभी मिलें बन्द थीं । दौलतपुर खुलना का औद्योगिक उपनगर है । कई ऊँची-ऊँची इमारतें, कई खूबसूरत बंगले···पर सब बंद । मालूम पड़ा, ये सबकी सब इमारतें पश्चिम पाकिस्तानियों की हैं । वे लोग खुलना के सुरक्षित गैर-बंगाली मुहल्लों में जा छिपे हैं । बांगला देश सरकार, मुक्तिवाहिनी तथा भारतीय फौज के आश्वासनों के बावजूद चौबीस वर्षों के शोषण और पिछले एक वर्ष के बर्बर अत्याचार के सहयोगी होने के कारण पश्चिम पाकिस्तानी पूंजीपति आज स्वयं संत्रस्त हैं ।

खुलना ! चौराहों पर सड़क के दोनों ओर गंभीर आनंद मुखर नागरिकों की जबर्दस्त भीड़ । भारतीय फौज की गश्ती टुकड़ियों पर फूल बरसाती हुई, स्वागत में गीत गाती हुई, नारे लगाती हुई । यहीं मैंने पहली बार वह अपनायत भरा नारा सुना, 'आमार दीदी, तोमार दीदी, इंदिरा दीदी जिंदाबाद !' मैं मुग्ध हो गया । इंदिरा जी सबकी बहन हैं । अत्याचार से पिसती हुई मानवता के पक्ष में संघर्ष करने वाली इंदिरा जी वास्तव में इन सद्यःमुक्त बांगला देशवासियों को अपनी बड़ी बहन जैसी लगें, ये उनकी जय मनायें, यही तो स्वाभाविक है । विदेशी पत्रकार चमत्कृत रह गये । नूरुल अमीन, भुट्टो और निक्सन तथा उनकी थैली के चट्टे-बट्टे जिसे आक्रामक मानते हैं, बांगला देश की स्वाधीन जनता उसे बड़ी बहन···अपनी रक्षिका मानती है ।

× × ×

हमें पहुँचने में एक घंटा देर हो गई थी। आत्मसमर्पण समारोह हो चुका था । प्रत्यक्षदर्शियों ने हमें बताया कि सर्किट हाउस के प्रशस्त मैदान में पाक फौज के स्थानीय नायक ब्रिगेडियर हयात खाँ ने काँपते हाथों से मेजर जनरल दलबीर सिंह के आदेश पर आत्मसमर्पण पत्र पर सही की । अपनी पिस्तौल की गोलियाँ निकाल कर मेजर जनरल के सामने की मेज पर रख दीं । चारों तरफ मुक्तिवाहिनी एवं भारतीय सेना से घिरी पाक फौज के जवानों के मुँह पर हवाइयाँ उड़ रही थीं ।

हम लोग फेरी घाट के चौराहे पर रोक दिये गये। वहाँ तैनात भारतीय सेना के मेजर ने बताया कि आगे जाना फिलहाल सुरक्षित नहीं है। कल रात को पाकिस्तानी फौज ने टेलीग्राफ-टेलीफोन भवनों, रेडियो स्टेशन को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। स्टेट बैंक ऑफ पाकिस्तान के खजाने को खाली कर दिया, अनुमानतः बीस करोड़ रुपयों के पाक करेंसी नोट जला कर छार-खार कर दिये। केवल यही नहीं, कुछ बर्बरों ने श्री अमीनुल इस्लाम तथा कुछ अन्य प्रमुख बंगाली अधिकारियों एवं नागरिकों की पाशविक हत्या भी कर दी, जिनके शरीर अभी-अभी मिले हैं और सारे शहर में गहरी तनातनी व्याप गयी है। पाक समर्थक तत्त्व दंगा करवाने की पूरी चेष्टा कर रहे हैं। परिणामस्वरूप सारे शहर में इस समय कुछ-कुछ अनिश्चितता है। भारतीय सेना के टैंक महत्त्वपूर्ण नाकों पर तैनात भी हैं और बड़ी संख्या में सड़कों पर गश्त भी लगा रहे हैं। आशा है शाम तक या कल तक स्थिति पूरी तरह काबू में आ जायेगी, पर इस समय आप लोगों को खतरे में डालना हम लोगों के लिए संभव नहीं है। हम लोगों ने बहुत कहा कि सेना के संरक्षण में हम लोगों को उन ध्वस्त भवनों तक ले जाया जाये, किंतु मेजर टस से मस नहीं हुआ। हमारे अनुरक्षक कैप्टन प्रधान ने उनको बाकायदा सलाम ठोंका और गाड़ियों के मुँह फेर दिये गये।

× × ×

जयदेवपुर का विराट बंदी शिविर! लौटते समय हम लोगों ने युद्धबंदियों को देखने की, उनसे बातचीत करने की इच्छा प्रकट की। कैप्टन प्रधान को लगा कि खुलना के परिदर्शन में जो कसर रह गयी, उसकी आंशिक क्षति-पूर्ति इसके द्वारा हो सकती है। उन्होंने वचन दिया कि यदि स्थानीय अधि-कारी आपत्ति नहीं करेंगे, तो वे हम लोगों को शिविर के भीतर ले चलेंगे। द्वार पर तैनात अधिकारी मान गये। हम लोग भीतर घुसे।

विराट परिदृश्य था। खुलना में दस-बारह हजार पाकिस्तानी फौजियों ने आत्मसमर्पण किया था। उनके हथियारों का स्तूप सा लगा हुआ था। ओलिवग्रीन वर्दी पहने भारतीय अधिकारी तथा सैनिक खाकी वर्दीधारी पाकिस्तानी फौजियों को यथास्थान भेजने, रखने की व्यवस्था में जुटे हुए थे। गिरफ्तार फौजियों को व्यूहबद्ध कर के छावनियों की ओर ले जाया जा रहा था। जिन्हें किसी अन्य शिविर में भेजना था, उन्हें ट्रकों पर चढ़ाया जा रहा था। सामने कुछ पाक फौजी अधिकारी थे। मैं उनसे बातचीत करने के

इरादे से उनकी ओर बढ़ा। अभी दुआ-सलाम ही कर पाया था कि एक भारतीय मेजर ने मुझे रोक दिया। कहा, "बिना अनुमति के इस प्रकार इंटरव्यू नहीं लिया जा सकता।" मैंने कहा, "आप अनुमति दे दीजिए।" वे बोले, "नहीं, इस समय हम लोग बहुत व्यस्त हैं। आज ही इन लोगों के निकास आदि की व्यवस्था करनी है। आप कल-परसों आइये तो इंतजाम हो जायेगा, अब कृपया आप सब लोग तुरन्त बाहर चले जायें।" कैप्टन प्रधान बड़ी मुश्किल में पड़े। वे एक पत्रकार को पकड़ कर लाते, तो दूसरा गायब हो जाता। विदेशी पत्रकारों के टी० वी० कैमरे, मूवी कैमरे और स्टिल कैमरे एक सेकंड के लिए भी नहीं थमे। एक मैं ही था, जिसके पास कैमरा नहीं था।

पर चित्र क्या कैमरे से ही उतारा जाता है? मेरी आँखों में, मेरे मन में जो चित्र अंकित हो गया है, स्वाधीनता के लिए प्राणों की बाजी लगा देने वाले बांगला देश का, वह न केवल अमिट रहेगा, बल्कि जीवन भर स्वाधीन मनुष्य की तरह आचरण करने की प्रेरणा देता रहेगा।

१६.

विजय की रणनीति

ले० जेनरल जगजीत सिंह अरोड़ा के शब्दों में

बांगला देश के मुक्तियुद्ध का सफल सैनिक नेतृत्व करने के लिए भारत के प्रधान सेनापति जनरल मानेकशा ने जिनकी सर्वाधिक प्रशंसा की है, वे हैं पूर्वी कमान के जी० ओ० सी० ले० जनरल जगजीत सिंह अरोड़ा। विदेशी युद्ध विशेषज्ञों के अनुसार उनकी दक्ष रणनीति और कुशल सेनापतित्व के कारण ही पाक रणनीति और सेनापतित्व को इतनी जल्दी मुँह की खानी पड़ी। आखिर पाकिस्तान के युद्ध-तंत्र ने बांगला देश को गुलाम बनाये रखने की कम तैयारी तो नहीं की थी। पाक सेनापति ले० जनरल नियाजी के अनुसार उनके अधीन ९३,००० सैनिक थे; जैसोर, खुलना, रंगपुर, दिनाजपुर, जमालपुर, चटगांव और सर्वोपरि ढाका की सैनिक छावनियों में शस्त्रास्त्र, खाद्यान्न। पेट्रोल आदि का इतना बड़ा भंडार था कि पश्चिम पाकिस्तान की सहायता के बिना कम-से-कम छः महीने तक पाक फौजें अनायास लड़ सकती थीं। फिर ऐसा चमत्कार क्यों कर संभव हो सका कि कुल बाहर दिनों की लड़ाई के वाद ही दुश्मन को घुटने टेक देने फड़े। इसी रहस्य के स्पष्टीकरण के लिए और व्यक्तिगत रूप से अपनी तथा भारतीय जनता की श्रद्धा और कृतज्ञता निवेदित करने के लिए मैंने २१ दिसंबर' ७१ की शाम को ले० जनरल जगजीत सिंह अरोड़ा से भेंट की।

फोर्ट विलियम में पूर्वी कमान के जी० ओ० सी० का प्रशस्त प्रशासनिक कक्ष। कर्नल रिखी के साथ मैंने उसके भीतर पाँव रखा ही था कि पल भर लिए ठिठक गया। वीचोंवीच खड़े थे जनरल अरोड़ा। लंबा कद छरहरा बदन, साफ गेहुँआ रंग, गौरव और संयम से प्रदीप्त मुखमंडल, सधी हुई दाढ़ी, ऊपर को ऐंटी हुई रोवीली मूंछ, चमकती हुई भेद देनेवाली आंखें, चेहरे पर प्रतिभा और मानवीयता की छाप…फौजी पोशाक और साफे में वे भव्य लग रहे थे। उन्होंने तपाक से मुझसे हाथ मिलाया और मुस्करा कर स्वागत किया। मैंने कहा, "बांगला देश को आजाद करानेवाले अपने बहादुर सेनानायक का मैं देश की जनता की ओर से अभिनंदन करता हूँ।" वे हँसे

बोले, "अच्चा बहादुर तो जवान होता है, जो लड़ता है और अपनी जान पर खेल कर देश का मान बढ़ाता है। जहाँ तक बांगला देश को आजाद कराने की बात है, वह जरूर बहुत बड़ा काम है, किंतु वह बड़े पैमाने पर किया गया सहकारी प्रयास है, जिसमें बहुतों ने हिस्सा बंटाया है। उसका श्रेय केवल एक व्यक्ति को नहीं देना चाहिए···मुझे तो नहीं ही; यदि आप भारत में किसी एक व्यक्ति को श्रेय देना ही चाहें तो उसकी पूरी हकदार हमारी प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी हैं। निर्णय और नेतृत्व उन्हीं का था। हम लोगों ने तो, जो काम हमें सौंपा गया, उसे पूरा करने की कोशिश की और मुझे खुशी है कि अपने सहयोगियों और जवानों की मदद से मैं अपनी जिम्मेदारी निभा सका। यह मेरी खुशकिस्मती है कि भगवान की कृपा से मुझे कामयाबी हासिल हुई, पर मैं इसे उनकी और बड़ी कृपा समझता हूँ कि मुझे अपने बारे में कोई गलतफहमी नहीं है। बांगला देश की मुक्ति का श्रेय बांगला देश की वीर जनता, जवानों और नेताओं को तथा हमारे देश की जनता की एकता, हमारे जवानों की बहादुरी तथा हमारे नेतृत्व को मिलना चाहिए।"

एक संवेदनशील शक्तिपुंज

तब तक उनके इशारे पर चाय आ गयी थी और बहुत ही आत्मीयतापूर्ण वातावरण में हम लोगों की बातें होती रहीं। मैंने लक्ष्य किया कि जनरल अरोड़ा में सैनिक दृढ़ता और स्पष्टता तो है ही उच्चकोटि की कल्पनाशीलता भी है। शक्ति के साथ विनम्रता का योग बहुत दुर्लभ है, किंतु जनरल अरोड़ा में वह भरपूर मात्रा में है। न वे अपने क्षेत्र के बाहर अपनी विशेषज्ञता प्रदर्शित करना चाहते हैं, न अपनी तारीफ सुनना पसंद करते हैं, जिस बात को वे गहराई से महसूस करते हैं, उसे खुले शब्दों में कह भी सकते हैं अपने देश की गरिमा के प्रति वे जितने सचेत हैं, अपनी जातिगत दुर्बलताओं के प्रति उतने ही जागरूक भी हैं। उनसे बातें करते समय मुझे बराबर लगता रहा कि मैं एक ऐसे शक्तिपुंज से बातें कर रहा हूँ, जिसके वक्ष में संवेदनशील हृदय धड़क रहा है। प्रस्तुत है हमारी बातचीत का संक्षिप्त विवरण :—

प्रश्न : बार-बार कहा गया है कि रणनीति और सेनापतित्व में मात खा जाने के कारण ही पाक फौजों को इतनी जल्दी आत्मसमर्पण करना पड़ा। इस मंतव्य की व्याख्या करते हुए कृपया बतायें कि बांगला देश में भारतीय सेना की विजय के प्रमुख कारण आपकी दृष्टि में क्या हैं ?

उत्तर : सेनापतित्व की श्रेष्ठता की बात मैं कैसे कहूँ ? हाँ, मैं आपको अपनी रणनीति समझाने की चेष्टा जरूर करूँगा। आपको मालूम ही है कि बांगला देश में नदियों की संख्या बहुत अधिक है और सड़कों तथा पुलों की कम। दुश्मन ने सोचा था कि हम प्रमुख सड़कों का उपयोग करते हुए उस पर सीधा हमला करेंगे। उसने हमारा मुकाबला करने के लिए जबर्दस्त नाकेबंदी की थी। बांगला देश और भारत की सीमाओं पर तीनों तरफ महत्त्वपूर्ण रास्तों और पुलों को छेंक कर उसने अपनी सेना का बड़ा हिस्सा उनकी हिफाजत के लिए मुस्तैद कर रखा था। हम इसको जानते थे और यह भी जानते थे कि यदि हम इन सभी छावनियों को जीत कर प्रमुख रास्तों से आगे बढ़ने की चेष्टा करेंगे, तो हम लंबी लड़ाई में उलझ जायेंगे। वे रास्तों को काट कर और पुलों को उड़ा कर हमारी प्रगति को रोक देंगे।

इसलिए हमने तय किया कि हम जाने-पहचाने और बड़े रास्तों का इस्तेमाल नहीं करेंगे। पर हम उनके भरम को बनाये रखना चाहते थे। अतः हम पहले उनकी छावनी पर सीधे रास्ते से हमला करते, उन्हें अपनी थोड़ी-सी फौज से उलझाये रखते और अपनी फौज के बड़े हिस्सों को कच्ची सड़कों तथा नावों और सेना द्वारा बनाये गये अस्थायी पुलों से पार कर दोनों तरफ से उनकी छावनियों के पीछे पहुँच जाते। इस तरह हम दुश्मन की संचार-व्यवस्था को काट कर उसे अपनी छावनी में सीमाबद्ध रहने के लिए विवश कर देते। एक बार ऐसी स्थिति उत्पन्न होते ही दुश्मन की सारी व्यवस्था भंग हो जाती। चारों तरफ से हमारे दबाव को झेलने में अपने को असमर्थ पा कर या तो दुश्मन भाग निकलता या अपने बिलों में बन्द हो जाता। उनकी मजबूत छावनियों को तत्काल जीतने का मोह रोक कर हम ढाका की ओर बढ़ते जाते थे। हमारी इस रणनीति ने दुश्मन को पंगु कर दिया। उसे अपनी मुख्य कमान से काट कर अलग-अलग द्वीपों में बदल दिया। दुश्मन हमारी रणनीति से भौंचक्का रह गया और उसे अपने को संभालने का मौका ही नहीं मिला।

किंतु रणनीति ही सब कुछ नहीं होती। जीत तो उसकी सफल क्रियान्विति से होती है। युद्ध में अनुकूल स्थितियों का यदि हम सही उपयोग करें, तभी जल्दी सफलता मिलती है, नहीं तो बहुत देर लग जाती है। यहीं अपने युद्धक्षेत्रीय सेनानायकों (फील्ड कमांडरों) की व्यक्तिगत वीरता और कल्पनाशीलता की मैं प्रशंसा करना चाहता हूँ, जिन्होंने खुद ज्यादा-से-ज्यादा

खतरा उठा कर जवानों का हौसला बढ़ाया और मौके का पूरा फायदा उठा कर दुश्मन को कड़ी शिकस्त दी।

हमारी वायुसेना और नौसेना ने हमारी भरपूर मदद की। पहले दो दिनों की हवाई लड़ाई के बाद ही बांगला देश के आकाश पर हम लोगों का पूरा अधिकार हो गया। हमारे हवाई हमलों ने दुश्मन के फौजी ठिकानों को बेतरह नुकसान पहुँचाया। हमारी नौसेना ने न केवल उसकी संभरण-शृङ्खला (सप्लाई लाइन) काट दी, बल्कि उसके भाग निकलने का रास्ता भी बंद कर दिया। इससे उसका मनोबल टूट गया और उसने घुटने टेक दिये।

प्रश्न : ले० जनरल हरबख्श सिंह ने लिखा है कि यदि हम लोग आशुगंज पुल और हार्डिंग पुल को सही सलामत हथिया लेते, तो हम लोगों की जीत और जल्दी हो सकती थी। क्या आप समझते हैं कि उन पुलों पर ऐसे कब्जा किया जा सकता था ?

उत्तर : नहीं, यह नामुमकिन था कि हम उन पुलों के साबित रहते उन पर कब्जा कर पाते। मैं ले० जनरल हरबख्श सिंह की इज्जत करता हूँ, उनके अधीन काम कर चुका हूँ और मानता हूँ कि वे बड़े दुर्धर्ष योद्धा और दूरदर्शी सेनानायक हैं। पर मुझे लगता है कि उन्हें इस बात की पूरी जानकारी नहीं है कि इन पुलों के मुताल्लिक पाकिस्तानी फौज की क्या तैयारी थी ? इन पुलों तक मैदानी रास्ते से हम जैसे ही पहुँचते, हमारी गतिविधि की जानकारी दुश्मन को हो ही जाती और वह अपने को कमजोर पाते ही इन पुलों को उड़ा देता, जैसा कि उसने किया। यदि कहा जाये कि हमें इन पुलों के इर्द-गिर्द अपने छाताधारी सैनिकों को उतार कर इन पर कब्जा करना चाहिए था, तो मेरा उत्तर यही है कि इस कार्य के लिए जितने छाताधारी सैनिकों और साधनों की आवश्यकता थी, उतनी संख्या और मात्रा में वे हमें उपलब्ध नहीं थे। टूटी हालत में ही आशुगंज पुल पर कब्जा करते समय हमारी फौज को साढ़े तीन हजार से अधिक पाकिस्तानी सैनिकों का सामना करना पड़ा। पाकिस्तानी सेनानायक और सिपाही इतने अनाड़ी तो नहीं हैं कि इन पुलों को सही सलामत हमारे कब्जे में आ जाने देते।

मुक्तिवाहिनी का प्रशंसनीय सहयोग

प्रश्न : बांगला देश की मुक्तिवाहिनी ने इस युद्ध में कैसी भूमिका अदा की ?

उत्तर : मुक्तिवाहिनी की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण रही। उसके सहयोग ने हमारा काम बड़ी सीमा तक आसान बना दिया। मुक्तिवाहिनी को अपने देश की जनता का व्यापक समर्थन और संरक्षण प्राप्त था, अतः वह पाक अधिकृत इलाकों में भी छापे मारती रहती थी। उसकी हलचल के कारण दुश्मन निश्चिंत नहीं हो पाता था। उसे भय बना रहता था कि न जाने कब और कहाँ से मुक्तिवाहिनी के छापामार सैनिक उस पर आ टूटेंगे। उसकी इस अरक्षा की भावना ने उसे कमजोर बनाया।

दूसरी तरफ मुक्तिवाहिनी के कारण हमें बहुत-सी सूचनाएँ मिलती रहती थीं। दुश्मन की गतिविधि की पूरी जानकारी उसके द्वारा हमें होती रहती थी, अतः दुश्मन कभी हमें असावधान रख कर हम पर चोट नहीं कर सका। इससे हमारी सेना में सुरक्षा की भावना बनी रही।

फिर मुक्तिवाहिनी के कारण हमें जनता का पूरा सहयोग मिला। नौकाओं, बैलगाड़ियों, रिक्शों, खाद्य सामग्री आदि की हमारी आवश्यकता के अनुरूप पूर्ति करने में जनता पीछे नहीं रही। शत्रु को अचानक पीछे से घेर लेना इसी जनसहयोग के कारण संभव होता रहा।

और बांगला देश की नियमित वाहिनी···विशेषतः ईस्ट बंगाल रेजिमेंट की टुकड़ियाँ हमारे कंधे से कंधा मिला कर दुश्मन से मोर्चा लेती रहीं। मुक्तिवाहिनी के जवानों और सेनानायकों का काम सचमुच प्रशंसनीय रहा है।

प्रश्न : पाकिस्तानी फौज के जवानों और सेनापतियों के बारे में आपकी क्या धारणा है ?

उत्तर : निस्संदेह वे लोग अच्छे योद्धा हैं। उनके संकल्प की दृढ़ता और मरने-मारने की हिम्मत में कोई कोर कसर नहीं है। जहाँ वे लड़े वहाँ जम कर लड़े, किंतु उनके सेनापतियों की रण-योजना त्रुटिपूर्ण थी और हमने उनकी गलतियों का पूरा फायदा उठाया।

पाकिस्तानियों का आत्मसमर्पण

प्रश्न : यदि पाकिस्तानी सिपाहियों को आप इतना कट्टर लड़ाका मानते हैं तो फिर ले० जनरल नियाजी ने एक प्रकार से बिना लड़े ही ढाका में आत्मसमर्पण क्यों कर दिया ?

उत्तर : क्योंकि उन्हें इस बात का एहसास हो गया था कि ढाका पर हमारा शिकंजा कसता चला जा रहा है। उनकी फौज के बड़े-बड़े हिस्से

दूरदराज के इलाकों में थे। ढाका की सुरक्षा के लिए दृढ़ रक्षापंक्ति बनाने के स्थान पर पाक सेनापति ने सीमावर्ती छावनियों को ही रक्षापंक्ति के रूप में मजबूत बनाया था। अपनी सफल रणनीति के कारण हमारी फौजों ने उन्हें जीत कर या लांघ कर ढाका को घेर लिया। यह साफ था कि ढाका में घिरी पाक फौज अधिक समय तक लड़ते रहने की स्थिति में नहीं थी। अतः बड़ी संख्या में अपने जवानों और अधिकारियों को कटवा कर हारने की जगह आत्मसमर्पण कर उनकी जानों को बचा लेना जनरल नियाजी ने उचित समझा।

प्रश्न : आत्मसमर्पण के पहले और उसके बाद पाक फौज का व्यवहार आपकी दृष्टि में कैसा रहा ?

उत्तर : आत्मसमर्पण के पहले पाक फौज ने निहत्थी बंगाली जनता के साथ जो व्यवहार किया, उसे मैं किसी भी सभ्य देश की सेना के लिए बहुत बड़ा कलंक समझता हूँ। उसके संबंध में अधिक न कहना ही अच्छा है।

हाँ, आत्मसमर्पण के बाद उनका व्यवहार अच्छा रहा है। युद्धबंदी के रूप में वे हमारे निर्देशों को उचित ढंग से मान रहे हैं। बहुतों का कहना है कि बंदी पाक फौज के प्रति हमारा रवैया बहुत नरम है। यह अभियोग नासमझी से भरा है, इन लोगों को स्मरण रखना चाहिए कि हम लोग एक सम्माननीय देश की सम्माननीय सेना के अंग हैं। युद्धबंदियों ने आत्म-समर्पण के पहले बुरा व्यवहार किया था, इसके आधार पर हम उनसे वैसा ही व्यवहार करें, यह तो नीचताभरी बात है। हम उनके साथ जेनेवा कनवेंशन के नियमों के अनुसार ही व्यवहार कर रहे हैं और यही हमारी गरिमा के अनुरूप है।

भारतीय सेना का नया दायित्व

प्रश्न : बांगला देश में फिलहाल हमारी सेना क्या कर रही है ? आपकी समझ में उसे कब तक वहाँ रहना होगा ?

उत्तर : फिलहाल हमारी सेना बड़ी संख्या में बनाये गये पाक बंदियों को वहाँ से हटाने में व्यस्त है। चूँकि बहुसंख्यक पुल युद्ध के दौरान तोड़ डाले गये हैं, अतः इस काम में काफी समय लगेगा। हमें कुछ अत्यावश्यक पुल बनाने पड़ेंगे। बांगला देश सरकार को भी अपने नियंत्रण को शहरों, कस्बों और गाँवों तक प्रभावी ढंग से स्थापित करने में कुछ समय लगेगा। उनका अनुरोध है कि तब तक हमारी सेना वहाँ बनी रहे। जैसे ही वे अपना

घर सँभाल लेने की स्थिति में आ जायेंगे, वैसे ही हमारी सेना वापसी कूच कर देगी। हम वहाँ आवश्यकता से एक दिन अधिक नहीं रहना चाहते।

प्रश्न : क्या वहाँ बंगालियों-गैरबंगालियों में बहुत तनातनी है? क्या आप समझते हैं, इसके फलस्वरूप वहाँ कोई बड़ा दंगा हो सकता है?

उत्तर : देखिए, पिछले चौबीस वर्षों से पश्चिम पाकिस्तानियों ने बंगालियों के ऊपर लगातार अत्याचार किये हैं। पिछले दस महीनों के हत्याकांड की घृणित स्मृति भी अत्यंत पीड़ादायक है। दुर्भाग्य से बांगला देश में बसे बिहारी मुसलमानों को पश्चिम पाकिस्तानियों ने बंगालियों के खिलाफ अपने मोहरों की तरह इस्तेमाल किया है। स्वाभाविक है कि बंगालियों के मन में अपने प्रति किये गये अत्याचारों के प्रति घृणा और क्रोध हो। उसके बावजूद मैं अधिकारपूर्वक कह सकता हूँ कि सामूहिक रूप से बंगालियों का व्यवहार बहुत अच्छा रहा है। उनकी सरकार ने भी कड़ी चेतावनी दे दी है कि किसी प्रकार की प्रतिशोधात्मक कार्यवाही में जनता को प्रवृत्त नहीं होना चाहिए। इसके लिए उन्होंने कठोर दंड की भी घोषणा की है। मैं नहीं समझता कि बांगला देश में बंगाली-गैरबंगालियों के बीच कोई बड़ा दंगा-फसाद होगा।

प्रश्न : क्या आप समझते हैं कि पाकिस्तान का पक्ष ले कर चीन निकट भविष्य में हम पर हमला कर सकता है?

उत्तर : मूलतः यह राजनीतिक सवाल है। अच्छा हो, आप दिल्ली के अधिकारियों से यह सवाल करें। मेरी राय में पूरी जानकारी के बिना चीन के संबंध में अटकलें लगाना बुद्धिमत्तापूर्ण कार्य नहीं है।

प्रश्न : क्या आप अमरीका के अंध पाक-समर्थन और भारत-विरोध के कारणों के बारे में कुछ कहना चाहेंगे?

उत्तर : आप फिर राजनीतिक सवाल पूछ रहे हैं। मैं राजनीतिज्ञ नहीं हूँ, हो सकता है, इसके कई कारण हों। एक कारण यह भी हो सकता है कि अमरीका दुनिया के देशों को दिखाना चाहता है कि वह अपने दोस्तों के प्रति वफादार है। हाल ही में ताइवान के मामले में उसकी बहुत अप्रतिष्ठा हुई। पाकिस्तान का पोषण वह १९५० से ही करता रहा है अतः उसका साथ दे कर वह अपने पर निर्भर अन्य देशों की दिलजमई भी करना चाहता होगा। फिर यह भी संभव है कि विश्वराजनीति के अन्तर्गत अमरीका-रूस

के द्वंद्व का भी प्रभाव अमरीकी निर्णय पर पड़ा हो। जो भी हो अमरीका का रवैया बहुत पक्षपातपूर्ण और अविवेकी था, इसमें कोई संदेह नहीं।

प्रश्न : श्री जुल्फिकार अली भुट्टो की धमकियों को देखते हुए क्या यह आशंका आपको सही लगती है कि पाकिस्तान निकट भविष्य में फिर भारत पर हमला कर सकता है ?

उत्तर : श्री भुट्टो के बारे में निश्चित रूप से कुछ भी कहना असंभव है। यदि वे सत्तारूढ़ होने के बाद अब समझदारी से काम लेंगे, तो हमला नहीं करेंगे और यदि पाकिस्तानी जनता की भावनाओं को भड़का कर ही गद्दी पर बने रहना चाहेंगे, तो कुछ भी कर सकते हैं। आखिरकार यहिया खाँ ने भी भारत पर हमला कर समझदारी का सबूत तो नहीं दिया। लेकिन भुट्टो यदि आक्रमण करेंगे भी तो उसका फल भोगेंगे। गर्मागर्म व्याख्यान देने मात्र से तो लड़ाई नहीं जीती जा सकती। पाक फौज पहले से बहुत कमजोर हो गयी है और निकट भविष्य में भारत पर आक्रमण करना उसके लिए आत्मघाती होगा।

उच्च वर्ग की निराशापूर्ण उदासीनता

प्रश्न : भारतीय सेना और भारतीय जनता के पारस्परिक संबंधों का आदर्श रूप आपकी दृष्टि में क्या होना चाहिए ?

उत्तर : मैं समझता हूँ, हमारी जनता और सेना के पारस्परिक संबंध बहुत अच्छे हैं। हमें बराबर अपनी जनता का स्नेह-सद्भावपूर्ण समर्थन मिलता रहा है। पर हाँ, मुझे पिछले कुछ वर्षों से लगता रहा है कि समाज का नेतृत्व करनेवाले वर्ग की मनोवृत्ति में क्रमशः शोचनीय परिवर्तन आ रहा है, जिसे मैं अपनी सेना और अपने देश के लिए हितकर नहीं मानता। हमारा उच्च वर्ग चरम बलिदान देने की जिम्मेदारी से कतराने लगा है।

कुछ चौंक कर मैंने प्रश्न किया "क्या आप अपने इस वक्तव्य को अधिक स्पष्ट करने की कृपा करेंगे ?"

वे कुछ देर तक मेरी आँखों में देखते रहे। फिर बोले, "देखिए, सिद्धांततः यह बात मैं भी मानता हूँ कि सभी मनुष्य समान हैं, पर व्यवहारतः इसे नकारा नहीं जा सकता कि कुछ लोग अधिक बुद्धिमान, अधिक साहसी, अधिक दूरदर्शी होते हैं। हमारा व्यावहारिक अनुभव यह भी है कि अधिकतर ऐसे लोग उस वर्ग से आते हैं, जो लंबे समय से उत्तरदायित्वपूर्ण स्थितियों पर

रहने के कारण इन गुणों का अधिकाधिक विकास करने के मौके पाता रहा है। आप इससे सहमत होंगे कि सेना के प्रभावी होने के लिए यह अनिवार्य है कि उसके अधिकारी उच्चतम कल्पनाशीलता, दूरदर्शिता, साहस और चरित्रबल से युक्त हों। यह तभी संभव है जब हमें लगातार उस वर्ग से अधिकाधिक संख्या में युवक मिलते रहें, जिसमें इन गुणों की संभावना अधिक है। खेद है कि पिछले कुछ वर्षों से समाज का उच्च वर्ग···अर्थात् वह वर्ग जो अपने गुणों के कारण देश का नेतृत्व कर रहा है, मेरा मतलब केवल पैसेवालों से नहीं है—अपनी नयी पीढ़ी को फौज में भर्ती कराने में संकोच करने लगा है। यह भविष्य के लिए अच्छा नहीं है।

प्रश्न : आप क्या कुछ और खुल कर कहेंगे कि आप चाहते क्या हैं ?

उत्तर : मैं चाहता हूँ कि सेना के बड़े अधिकारियों, ऊँचे नागरिक अधिकारियों, बड़े-बड़े डॉक्टरों, इंजीनियरों, कुशल प्रशासकों और बुद्धिजीवियों आदि के लड़के, भतीजे बड़ी संख्या में सेना में भर्ती होते रहें, देश के लिए रणक्षेत्र में घायल होते रहें, प्राण तक देते रहें। तभी देश का नेतृत्व करनेवाला वर्ग सेना की समस्याओं को अच्छी तरह समझ सकेगा, सेना के साथ व्यक्तिगत लगाव का सक्रिय अनुभव करेगा, जो केवल भावुकतापूर्ण उच्छ्वास से कहीं अधिक ठोस होगा। तभी हमें अच्छे सुयोग्य अफसर मिलते रहेंगे और हमारी सेना अधिक शक्तिशाली बनी रहेगी। आप जानते हैं कि ब्रिटिश फौज में वहाँ के अभिजात वर्ग के युवक बड़ी संख्या में भर्ती होते रहे हैं और प्रत्येक संकटकाल में बड़ी संख्या में प्राणोत्सर्ग करते रहे हैं, तभी छः सौ वर्षों तक उनकी उत्तरोत्तर उन्नति होती रही है। भारत में भी पहले अभिजात वर्ग के युवक बड़ी संख्या में फौज में भर्ती होते रहे। पिछले कुछ वर्षों से ही उनकी संख्या में उत्तरोत्तर कमी आती जा रही है।

प्रश्न : क्या आप बतायेंगे कि आपके मतानुसार इस कमी के कारण क्या हैं ?

उत्तर : मनुष्य को किसी कठिन काम की प्रेरण देनेवाले दो ही प्रमुख बाहरी तत्त्व हैं—धन तथा प्रतिष्ठा। किसी काम में यदि धन कम भी मिले, किंतु उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा अधिक हो, तो मनुष्य उसे करने में गौरव का बोध करता है। हमारे देश की परंपरा रही है कि हम धन की तुलना में सद्गुणों को अधिक महत्त्व देते रहे हैं। पर इधर के कुछ वर्षों में उत्तरोत्तर धन का महत्त्व बढ़ता जा रहा है। आज समाज में उसी का आदर अधिक होता है, जिसके पास

धन है, भले ही उसमें श्रेष्ठ मानवीय गुण हों या न हों। इसीलिए अब नेतृवर्ग की नयी पीढ़ी बड़ी-बडी कंपनियों, उद्योग-धंधों की ओर अधिक आकृष्ट हो रही है। इन नवयुवकों की लालसा है कि अधिक धन कमा कर आराम और सम्मान की जिंदगी बसर की जाये, फिर वे सेना के कठोर और खतरनाक जीवन को क्यों अपनाने की बात सोचें ? आज जब देश की सुरक्षा का चरम प्रश्न हमारे सामने है, इस प्रकार की दुर्बल और हीन मनोवृत्ति घातक हो सकती है। आज देश की सर्वश्रेष्ठ प्रतिभा और क्षमता के अधिकारी युवकों पर पहला हक सेना का माना जाना चाहिए। मैं चाहता हूँ कि आप 'धर्म-युग के माध्यम से इस राष्ट्रीय आवश्यकता को उभार कर देश के सामने रखें।

हमारी बातचीत प्रायः एक घंटे तक चल चुकी थी। बगल के कमरे से दो बार आकर मेजर जनरल जैकब किसी आवश्यक परामर्श के लिए जनरल अरोड़ा के कमरे में झाँक चुके थे। मैंने उठते-उठते उनसे इस वार्तालाप का आखिरी प्रश्न पूछा—

"इस विजय के अवसर पर क्या आप देश के नाम कोई विशेष संदेश देना चाहेंगे ?" वे मुस्करा कर बोले, "देश के नाम विशेष संदेश तो बड़े लोग देते हैं, मैं अपने को उस कोटि का नहीं समझता। पर हाँ, इतना जरूर कहना चाहता हूँ कि इस खुशी की घड़ी में हमें भगवान के प्रति कृतज्ञ होना चाहिए और यह याद रखना चाहिए कि हमारी विजय हमारी जनता की एकता के कारण ही संभव हुई है। मेरी कामना है कि हमारी जनता की यह एकता सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रों में भी झलके, ताकि हमारा देश सचमुच महान बन सके।"

२०.

मुक्ति के बाद पुनर्निर्माण की ओर

विजय की बेला में सचमुच बड़ा व्यक्ति (और देश भी) अहंकार का आस्फालन न कर विनम्र हो उठता है, इस सत्य का आभास मुझे २२ दिसम्बर को बांगला देश के प्रधान सेनापति कर्नल उस्मानी से बातचीत करने पर हुआ। मुक्ति-युद्ध के अन्तिम दौर में कर्नल लगातार दौरे पर रहे। विजय के बाद मुक्तिवाहिनी के योद्धाओं को व्यवस्था बनाए रखने की नई जिम्मेदारी निभाने के लिए स्वयं पूर्णतः अनुशासित व्यवहार करने का सख्त आदेश उन्होंने दिया। उस आदेश का समुचित पालन हो, इस के लिए उन्होंने प्रमुख केन्द्रों का निरीक्षण किया। उन्हें जीत की बधाई देने और स्वाधीन बांगला देश में मुक्तिवाहिनी की भूमिका के सम्बन्ध में उनसे बातचीत करने के लिए मैं छटपटा रहा था। सौभाग्य से अपने हेडक्वार्टर को स्थायी रूप से ढाका स्थानान्तरित करने के सिलसिले में वह दो दिन के लिए मुजीबनगर पधारे। अपने व्यस्त कार्यक्रम में से कुछ समय उन्होंने मुझे दिया।

कर्नल उस्मानी की आन्तरिक प्रसन्नता उनके चेहरे की एक-एक रेखा से···सर्वोपरि चमकती हुई आँखों से मानो झड़ी पड़ रही थी। इससे पूर्व भी मैं तीन बार उनसे मिल चुका हूँ। कट्टर और खूँखार दुश्मन से जीवन-मरण के युद्ध में लिप्त देश की सेना के संचालन के ऐतिहासिक उत्तरदायित्व का बोझ जिन मजबूत कन्धों पर था वे उस समय भी···टूटने की सीमा तक पहुँच जाने पर भी झुकने से इनकार कर रहे थे, इसका मैं व्यक्तिगत साक्षी रहा हूँ। पर कितना गम्भीर, कितना संगीन वातावरण रहता था उन दिनों इस कक्ष का। आज तो यहाँ की हर चीज मानो मुसकरा रही थी। मैं कुछ कह सकूँ, इसके पहले ही कर्नल ने दोनों हाथों से मेरे हाथ को दबाते हुए कहा, "खुदा का शुक्र है, सत्य और न्याय की जीत हुई। आइए, बैठिए।"

मैंने न केवल अपनी तरफ से बल्कि भारत की ५५ करोड़ जनता की तरफ से उनका अभिनन्दन किया, उन्हें बधाइयाँ दीं। वह वृद्ध योद्धा शालीनतापूर्वक मुसकराता रहा। अपने सहायकों को आवश्यक निर्देश दे कर उन्होंने बिदा किया और मुझ से कहा, "झटपट जो पूछना हो पूछ लीजिए, इस समय मुझे वहुत काम है।"

मेरा पहला प्रश्न था, "मुक्तिवाहिनी का शुभ सम्वाद सुनते ही आपके मन में पहली प्रतिक्रिया क्या हुई ?"

वह कुछ गम्भीर हो गए, बोले, "पहली बात जो मेरे मन में उठी वह यही थी कि हमारा बलिदानी संग्राम सफल हुआ, हमारे ७.५ करोड़ भाई-बहन अब स्वाभिमान के साथ आजादी की सांस ले सकेंगे, इसके लिए हमें भगवान का कृतज्ञ होना चाहिए। ओह ! आप कल्पना नहीं कर सकते कि इन अत्याचारी, उपनिवेशवादी, पाकिस्तानी बर्बरों ने हमारे जीवन को किस हद तक नारकीय बना दिया था।"

फिर कुछ देर रुक कर बोले, "साथ-ही-साथ मेरा ध्यान लड़ाई के मैदान में जूझते हुए अपने जवानों और सेनानायकों की ओर गया। महीनों तक वे अकेले ही भयंकर बाधाओं से टकराते रहे। उन्होंने ही लगातार कठोर-से-कठोरतर आघात-पर-आघात पहुँचा कर दुश्मन को इस कदर बौखला दिया था कि पागल और निराश जुआरी की तरह आखिरी दाँव के रूप में उसने भारत पर हमला कर दिया। उसकी धारणा थी कि इस प्रकार वह पाक-बांगला देश की समस्या को पाक-भारत की समस्या बना कर अन्तर्राष्ट्रीय हस्तक्षेप करवा सकेगा। लेकिन उसे लेने के देने पड़ गए। सोवियत रूस की दृढ़ता के कारण उसकी दुरभिसंधि व्यर्थ हो गई। इधर हमें भारत के रूप में महान सहयोगी मिला। भारतीय सेना की दुर्धर्ष शक्ति का सहयोग पा कर हम अपराजेय वन गए। हमारी सम्मिलित सेनाओं की भीषण मार से विचलित हो कर दुश्मन को आत्मसमर्पण के लिए बाध्य होना पड़ा।"

मैंने प्रश्न किया, "क्या मुक्तिवाहिनी की अपनी वायु सेना भी थी ?"

"हाँ, संख्या और शक्ति में कम होते हुए भी हमारी वायु सेना थी और हमारे हवाबाजों ने दुश्मन के फौजी ठिकानों पर कई हमले किए थे। हमारी जल सेना ने तो दुश्मन के वहुत से जहाजों और गनबोटों को डुबाने में सफलता पाई थी। भगवान के बाद मैंने कृतज्ञतापूर्वक उन जवानों और

सेनानायकों को स्मरण किया जो इस आजादी की लड़ाई में शहीद हो गए, घायल हो कर जीवन भर के लिए अपंग हो गए। उन्होंने अपने वर्तमान की बलि चढ़ा कर बांगला देश के भविष्य का निर्माण किया है। उनकी स्मृति हमें सदा प्रेरणा देती रहेगी।

प्रश्न : क्या आप यह बताने की कृपा करेंगे कि इस युद्ध में पाकिस्तान को इतनी जल्दी हार क्यों माननी पड़ी ?

उत्तर : इसका सबसे बड़ा कारण भारत और बाँगला देश की शक्तिशाली मैत्री है। भारत और बांगला देश सरकार में हुए समझौते के अनुसार दोनों देशों की सेनाएँ ले० जनरल अरोड़ा के नेतृत्व में संयुक्त रूप से आगे बढ़ीं। हमारी जनता का पूरा सहयोग उन्हें प्राप्त था। हमारी रणनीति इतनी अच्छी थी और इतने सुव्यवस्थित, सुपरिकल्पित ढंग से हमारा प्रत्येक अभियान हुआ कि दुश्मन अपने विशाल शस्त्रभण्डार, सुरक्षित मोर्चों तथा प्रचण्ड सैन्यबल के बावजूद घुटने टेक देने के लिए लाचार हो गया।

प्रश्न : क्या आप अपनी रणनीति पर कुछ प्रकाश डालेंगे ?

उत्तर : मूलतः हमारी रणनीति की शत्रु को उसके गढ़ में थोड़ी सेना से सामने से उलझाए रख कर चक्कर काट कर उसके पीछे पहुँच जाना, उसे अपने मुख्य भाग से काट देना, उसकी सम्भरण-शृङ्खला (सप्लाई लाइन) को छिन्न-भिन्न कर देना, यातायात के प्रमुख केन्द्रों को···खास कर पुलों को यथासम्भव अक्षुण्ण रूप में हस्तगत करना, दुश्मन की गश्ती छोटी टुकड़ियों को औचक घेर कर साफ कर देना। आकाश पर हमारा पूरा अधिकार था, धरती हमारी थी, जनता हमारे साथ थी, समुद्री मार्ग को भारतीय जल सेना ने अवरुद्ध कर दिया था। दुश्मन अपने गढ़ में सर्वत्र घिर गया था और ढाका की ओर होने वाले हमारे बढ़ाव को रोकने में असमर्थ था। बड़े-छोटे पुलों को तोड़ कर ही दुश्मन ने हमारी प्रगति को मन्द करने में आंशिक सफलता पाई। भारतीय सेना के इंजीनियरों ने जिस योग्यता से बड़ी-बड़ी नदियों पर अस्थाई पुल बना दिए, उसकी जितनी प्रशंसा की जाए कम है।

प्रश्न : पाकिस्तान ने क्या रणनीति अपनाई ?

उत्तर : पाकिस्तानी सेनापति ने सोचा था कि पाक फौजें लम्बे समय तक हमारी सेनाओं को सीमावर्ती रक्षा पंक्ति में अटकाए रखने में समर्थ होंगी। जब हमारी श्रेष्ठतर रणनीति और सैन्यशक्ति के कारण पाक योजना व्यर्थ हो गई तो पाक सेनानायकों का मनोबल टूट गया। कुछ सेनानायकों ने

आत्मसमर्पण को बेहतर समझा, कुछ ने बंगाल की खाड़ी की ओर बढ़ने की योजना बनाई ताकि किसी विदेशी शक्ति की सहायता से वे भाग निकलें। स्पष्टतः लड़ते-लड़ते मरने का नैतिक साहस उनमें नहीं रह गया था क्योंकि वे जानते थे कि उनका पक्ष अन्याय और अधर्म का है, उसके लिए प्राण देना उन्हें मूर्खता लगी। भाग निकलने का कोई रास्ता न पा कर उन्होंने शर्मनाक ढंग से आत्मसमर्पण कर दिया। जिस फौज ने दुनिया का सबसे घृणित नरसंहार...निहत्थे, असहाय व्यक्तियों की गणहत्या करने में संकोच नहीं किया, उसे जान बचाने के लिए आत्मसमर्पण करने में क्या संकोच हो सकता था ?

प्रश्न : भारतीय सेना से मुक्तिवाहिनी का सम्बन्ध कैसा है ?

उत्तर : बहुत ही अच्छा, बहुत ही अच्छा। विजय के पहले और बाद भी भारतीय सेनानायकों और जवानों ने हम लोगों से बन्धुत्व और सौहार्द्र से परिपूर्ण समानता के स्तर पर भाईचारा बरता है। भारतीय सेना ने बांगला देश की जनता का मन अपने संयम और सेवा-भाव से जीत लिया है। हम उसके बहुत कृतज्ञ हैं।

प्रश्न : मुक्तिवाहिनी की भूमिका स्वतन्त्र बांगला देश में क्या रहेगी ?

उत्तर : इस विषय पर अभी गम्भीर विचार करना है कि मुक्तिवाहिनी का पुनः संगठन कैसे किया जाए ? फिलहाल नियमित वाहिनी को तो छावनियों में रहने की आज्ञा दी गई है। गणवाहिनी के ही पुनर्गठन की बात कुछ पेचीदी है। उसे रक्षा की दूसरी पंक्ति के रूप में निर्मित करना होगा। बांगला देश एक बड़ी सेना रखने की स्थिति में तो नहीं है। अतः छात्रों को पुनः अपने स्कूल, कालेजों में तथा किसानों को खेती के काम पर लौटना होगा। उन्हें जो शस्त्र-शिक्षा मिली है उसका वे देश के हित में संकट के समय उपयोग कर सकें, इसका भी ध्यान रखा जाएगा।

प्रश्न : कुछ ऐसी खबरें मिली हैं कि पाक समर्थक तत्त्वों को दण्ड देने का काम भी मुक्तिवाहिनी के कुछ सशस्त्र जवानों ने अपने हाथ में ले लिया है। इस सम्बन्ध में आपकी नीति क्या है ?

उत्तर : हम लोगों की नीति बिल्कुल स्पष्ट है। जिन लोगों ने देशद्रोह किया है उन पर बाकायदा मुकदमा चला कर उन्हें यथावत दण्ड दिया जाएगा। न्याय को अपने हाथ में लेने का अधिकार किसी को नहीं दिया जा सकता। हम इसके लिए कड़े हुक्म जारी कर चुके हैं और सावधानी बरत

रहे हैं कि देश को मुक्त करने के लिए दिए गए हथियारों का दुरुपयोग न हो। किन्तु आपको यह भी स्मरण रखना चाहिए कि पाक फौज ने भी बहुत हथियार बांटे हैं उनका दुरुपयोग होने की सम्भावना बहुत ज्यादा है। जो हो, मेरा विश्वास है कि ऐसी कोई स्थिति उत्पन्न नहीं हो सकती जो हमारे नियन्त्रण के बाहर हो। बांगला देश की जनता को अपनी सरकार पर भरोसा है और वह निश्चय ही न्याय के लिए धैर्य रखेगी, प्रतिशोध मूलक गैर जिम्मेदार कार्रवाई नहीं करेगी।

प्रश्न : श्री भुट्टो ने पाकिस्तान की बागडोर संभालते ही अखंड पाकिस्तान की रट लगानी शुरू कर दी है और पूर्वी पाकिस्तान के सच्चे नेताओं से बातचीत करने की इच्छा प्रकट की है। आप के मतानुसार उनकी इस चेष्टा का बांगला देश की जनता पर क्या असर पड़ेगा ?

उत्तर : पूर्वी पाकिस्तान की कल्पना भी २५ मार्च के बाद कोई बंगाली नहीं कर सकता। हम लोग यह कभी नहीं भूल सकते कि बंग बन्धु शेख मुजीब के प्रयास को व्यर्थ कर देने में सब से गन्दी और कुटिल चालें भुट्टो ने ही चली थीं। बांगला देश में हुई गण हत्या, बलात्कार, भयंकर दमन की जिम्मेदारी बहुत हद तक भुट्टो की ही है। भुट्टो ने उस समय कहा था कि फौजी कार्रवाई के सबब से पाकिस्तान बच गया। अब यदि वे अपनी खैर चाहते हैं तो जो पाकिस्तान उन्हें बचा हुआ मिला है, उसी में वे शान्ति-पूर्वक रहें। बांगला देश की ओर यदि उन्होंने आँख उठा कर भी देखा, तो हो सकता है कि पाकिस्तान का वह हिस्सा भी न बचे जो आज उनके कब्जे में है। बांगला देश का बच्चा-बच्चा अपनी स्वतन्त्रता को अपनी प्राणों से बढ़ कर प्यार करता है। दुनिया की कोई भी ताकत बल प्रयोग या छल और कौशल के द्वारा हमारी स्वतन्त्रता को नहीं छीन सकती। भुट्टो की मीठी-मीठी जहरीली बातों में फंसने की बात तो दूर सुनने के लिए भी हम तैयार नहीं हैं। हम अच्छी तरह जानते हैं कि भुट्टो अपने मतलब के लिए किसी भी प्रकार की कलाबाजी दिखा सकते हैं। जिसने व्यक्तिगत स्वार्थों की सिद्धि के लिए अपनी आत्मा कभी की बेंच दी हो, उसके प्रस्तावों के प्रति हम घृणा ही व्यक्त कर सकते हैं।

वह शान्त और संयत वृद्ध योद्धा भुट्टो के प्रति यदि इतना कटु है तो बांगला देश के नौजवानों की मनःस्थिति की कल्पना सहज ही की जा सकती है।

प्रश्न : इस समय आप के सामने सबसे बड़ी समस्या क्या है ?

उत्तर : इस समय हमारी सबसे बड़ी समस्या अपने देश के पुनर्निर्माण की है। अपने देश के सामाजिक-आर्थिक ढांचे में हमें मौलिक परिवर्त्तन करना होगा। अवामी लीग के घोषणा-पत्र में हमने जो वचन दिए हैं, उन्हें पूरा करके दिखाना होगा। भारत में पहले लाखों शरणार्थियों को उनके मूल निवास-स्थान में पुनः बसाना होगा। अपनी लोक संख्या को दृष्टि में रखते हुए हमें अपने विकास की ऐसी योजना बनानी होगी कि समता युक्त कल्याण-कारी राज्य की सही अर्थों में स्थापना हो सके। यह एक चुनौती भरा काम है। मेरा विश्वास है कि जिस लगन और एकता से हमने लड़ कर अपनी स्वाधीनता जीती है उसी लगन और एकता से काम कर हम अपने देश का पुनर्निर्माण भी कर सकेंगे।

प्रश्न : क्या आप को लगता है कि पाकिस्तान के मित्र आपके इस कार्य में बाधा पहुँचा सकते हैं ? चीन का आक्रामक रुख क्या वास्तविक आक्रमण का रूप धारण कर सकता है ?

उत्तर : निश्चित रूप से कुछ भी कहना मुश्किल है। किन्तु मेरा मन यह मानने के लिए तैयार नहीं होता कि चीनी नेता और जन साधारण भीतर-भीतर यह नहीं समझते होंगे कि बांगला देश का मुक्ति संग्राम सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय स्वतन्त्रता का जन युद्ध है। वे यदि आक्रमण पर उतारू हुए तो सारी दुनिया के सामने उन की क्रान्तिकारिता की पोल खुल जाएगी और यह साफ हो जाएगा कि वे अमेरिका के पिट्ठू सैनिकतन्त्र के पक्ष में जनता की वास्तविक अभिलाषाओं को कुचल डालना चाहते हैं। आक्रमण होने पर हम जरूर उनका मुकाबला करेंगे। परन्तु मुझे विश्वास है कि देर-सबेर चीन को बांगला देश के सम्बन्ध में अपनी नीति परिवर्तित करनी होगी।

प्रश्न : इस युद्ध के सन्दर्भ में अमेरिका की जो भूमिका रही है, उसे देखते हुए क्या आप को यह नहीं लगता कि भविष्य में भी वह बांगला देश के विरुद्ध पाकिस्तान का ही समर्थन करता रहेगा ?

उत्तर : सच कहा जाए तो मुझे राष्ट्रपति निक्सन द्वारा अपने सातवें वेड़े को बंगाल की खाड़ी में भेजने के निर्णय से बहुत ही बड़ा धक्का लगा। यह सोचना भी मुश्किल था कि व्यक्ति स्वातन्त्र्य एवं लोकतन्त्र की कसमें खाने वाला कोई देश अपनी शक्ति का ऐसा नंगा प्रदर्शन किसी सैनिक ताना-शाही के पक्ष में इस कदर करेगा। मुझे नहीं मालूम कि उनके निर्णय के

पीछे अमेरिकी जनता का कितना समर्थन था ? हम अमेरिका के भावी रवैये के प्रति आश्वस्त नहीं हैं। हम सिर्फ यही मना सकते हैं कि अमेरिका की जाग्रत जनता का विवेक अपनी सरकार को गलत आचरण से रोकने में सफल हो।

कर्नल उस्मानी ने बात करते-करते घड़ी की ओर देखा और मैं समझ गया कि उन्हें अब अधिक तंग करना उचित नहीं होगा। मैं उठा, उन्होंने मुझसे जनता और सरकार के प्रति बांगला हाथ मिलाते हुए कहा, "भारतीय जनता और सरकार के प्रति बांगला देश चिर ऋणी रहेगा। आप लोगों की सक्रिय-सहायता से ही हम स्वाधीन हो सके हैं। हमारा विश्वास है कि युद्धकाल का यह बन्धुत्व शान्तिकाल में और भी सुदृढ़ एवं पारस्परिक कल्याण करने में समर्थ होगा।"

२१.

ढाका में मुजीब परिवार से अंतरंग भेंट

शेख मुजीब ! पाक बर्बरता के विरुद्ध अडिग विश्वास और असीम साहस से लड़ते रहनेवाला अपराजेय योद्धा ! आज उसका नाम दुनिया के कोने-कोने में फैल गया है। बांगला देश में अल्लाह के बाद सबसे ज्यादा नाम लिया जाता है मुजीब का। मुजीब क्रमशः व्यक्ति से अधिक प्रतीक बनता चला जा रहा है। मुजीबवाद बांगला देश में बहुप्रचलित शब्द है। आज का बंगाली नौजवान, खासकर विद्यार्थी, अपने को मुजीबवादी कह कर गौरव का अनुभव करता है। निश्चय ही कल बड़े-बड़े विद्वान उनकी शत-शत वक्तृताओं से अंश चुन-चुन कर मुजीबवाद को विधिवत सामाजिक और राजनीतिक दर्शन के रूप में प्रतिष्ठित कर देंगे। आनेवाली पीढ़ियाँ मुजीब के महिमामंडित नेतृत्व और विप्लवी दर्शन की विरासत को गर्व के साथ अपनी-अपनी भूमिका के अनुरूप ग्रहण करेंगी। पर क्या वे, व्यक्ति मुजीब—पति, पिता, मित्र मुजीब को जानना नहीं चाहेंगी ? उनका मानवीय पहलू भी कम प्रेरणादायक नहीं है। क्यों न उनके परिवार वालों से मिल कर उनके घरेलू—सहज पारिवारिक रूप को उजागर करने की चेष्टा करूँ ! इसी उधेड़बुन में था मैं २८ दिसंबर, १९७१ की संध्या को, बांगला देश के राष्ट्रपति निवास 'बंगभवन' में अनुष्ठित तत्कालीन कार्यकारी राष्ट्रपति और प्रधान मंत्री की प्रेस कान्फ्रेंस के बाद !

अचानक मुझे कर्नल उस्मानी आते दिखाई पड़े। वे मुझे देखते ही प्रसन्नता भरे स्वर में बोले, "आ गये आप ढाका ? स्वागत है। अब अपनी आँखों से बांगला देश के प्राण-केंद्र ढाका को देख कर विस्तारपूर्वक इसके बारे में 'धर्मयुग' में लिखिए।" मैंने नमस्कार करते हुए कहा, "सबसे पहले मैं इस प्राणकेंद्र के प्राणकेंद्र को देखना चाहता हूँ। क्या आप बेगम मुजीब तथा उनके परिवार वालों से मेरी भेंट की व्यवस्था करा देंगे ?

उन्होंने मुस्करा कर अपने ए० डी० सी० (अंगरक्षक) की ओर देखा। वह आत्मीयता भरे स्वर में बोला, "आप किसी भी समय बेहिचक हम लोगों

के घर चले जाइये। हमारे यहाँ कोई फार्मेलिटी नहीं है। अम्मा हर समय घर में ही रहती हैं। वे आप से जरूर मिलेंगी। रहे हम लोग, सो हमीं लोग नहीं जानते कि कब कहाँ होंगे? उस समय परिवार में जो होगा आप से मिल कर बातचीत कर बहुत खुश होगा।" तो यही युवक है लेफ्टिनेंट शेख कमाल—मुजीब का ज्येष्ठ पुत्र! लंबा, छरहरा, सजीला, चुस्त नौजवान। सांवला रंग, पर पानीदार चेहरा। प्रशस्त ललाट, तीखी नाक पर चश्मा, छोटी-छोटी पर ऊपर को ऐंठी हुई मूंछें। मैंने उनसे हाथ मिलाया। कहा, "भाई तुमसे भी बहुत बातें करनी हैं।"

वह बोला, "मुझे भी बहुत खुशी होगी आप से मिल कर, पर देखिये…" कर्नल जल्दी में थे और अंगरक्षक उन्हें कैसे छोड़ता?

× × ×

दूसरे दिन ग्यारह बजे के करीब मैं बेगम मुजीब से मिलने गया। मेरे साथ थे बाबू और ज्योति—चटगांव विश्वविद्यालय के डॉ० अजीजुर्रहमान मलिक के दो नौजवान रिश्तेदार। बंगाली मुसलमानों ने अपने बच्चों के पुकारने के नाम अपनी बंगला भाषा में ही रखने शुरू कर दिये हैं। पाक बर्बरों को इस पर भी आपत्ति थी। ज्योति को इसीलिए पकड़ लिया गया था कि उसका नाम हिंदुओं जैसा क्यों है? बड़ी मुश्किल से फिर वह छूट पाया था। इस प्रवृत्ति को बढ़ावा देने में मुजीब का बहुत बड़ा हाथ है। बेगम मुजीब का नाम तो है बेगम फजिलतुन्निसा, किंतु शेख साहब उन्हें 'रेणु' कह कर पुकारते थे। आज वे इसी नाम से अपना परिचय देती हैं।

बेगम मुजीब को पाकिस्तानी अधिकारियों ने जिस मकान में नजरबंद रखा था, उस समय भी वे उसी में थीं। फर्क यह था कि वह कैदखाने से निवास में बदल गया था। पाक फौजियों ने बेगम को मुक्त करने के संभावित प्रयास को विफल कर देने के लिए उस बँगले में दो बड़े बंकर बनाये थे, एक सदर दरवाजे के बगल में और दूसरा छत पर। पाक फौज के आत्म-समर्पण की सूचना बेगम के पाक पहरेदारों को नहीं मिली थी और भारतीय सेना के मेजर तारा ने बड़ी हिम्मत से उन्हें घेर कर इन बंकरों पर कब्जा किया था। यह कथा आप धर्मयुग (२ जनवरी) में पढ़ ही चुके होंगे।

अद्‌भुत सादगी दिखी बेगम की वेशभूषा में, व्यवहार में, बोलचाल में, मकान की साज-सज्जा में। बैठने का कमरा काफी लंबा था, पर फर्नीचर

के नाम पर उसमें एक ओर काठ की दो चौकियाँ थीं, जिन पर चादरें बिछी हुई थीं। एक छोटी मेज थी और छः-सात कुर्सियाँ थीं साधारण-सी। दूसरी ओर एक बड़ा सा साधारण-सा टेबुल था, जिसका इस्तेमाल शायद डाइनिंग टेबुल के रूप में होता है। कुर्सियाँ तब इधर-से-उधर खींच ली जाती होंगी, क्योंकि उस ओर एक भी कुर्सी उस समय नहीं दिखी। एक कोने में एक फ्रिज जरूर था। अवामी लीग के कार्यकर्त्ता वहाँ लगातार आ-जा रहे थे। मुजीब वाहिनी के योद्धाओं का तो वह विश्रामस्थल था। शेख कमाल की बात अक्षर-अक्षर सच थी—उन लोगों के घर में कोई फार्मेलिटी, कोई औपचारिकता नहीं थी। प्रयोजन होने पर कोई भी आदमी किसी भी समय वहाँ आ सकता है ?

एक कोने में मैंने कम-से-कम छः-सात सूटकेस और तीन-चार बिस्तरे बँधे हुए देखे। अंतरंग कार्यकर्त्ता बाहर से आते हैं, सामान रख जाते हैं। दिन भर अपने काम पर जुटे रहते हैं, रात को वहीं फर्श पर बिस्तर बिछ कर सो भी जाते हैं। अत्यंत सहज आत्मीय परिवेश। शेख मुजीब के पुराने घर की परंपरा का ज्यों-का-त्यों पालन यहाँ भी हो रहा है। कितना अंतर है यहाँ के सहज और 'बंगभवन' के ऐश्वर्यपूर्ण सरकारी वातावरण में !

मेरे आने का समाचार सुन कर बेगम रेणु मुजीब मिलने आयीं। सरल मातृ रूप, घर में काम-काज करते समय पहनी जाने वाली साधारण सूती साड़ी, मंझोला कद, साफ गेहुँआ रंग, भरा चेहरा, चौड़ा माथा, ममता-भरी आँखें, मुखमंडल पर महिमा की आभा, पीड़ा की छाया, हाथों में दो-दो चूड़ियाँ—और कोई आभूषण नहीं, कोई शृङ्गार नहीं। गृहस्थिन तपस्विनी-सी वे मुझे लगीं। पाँव छू कर प्रणाम किया। उन्होंने मुस्करा कर पूछा "कहाँ से आये हैं ?"

मुझे पंत की पंक्ति याद आयी—'राहु ग्रसित शरदेंदु हासिनी···!' मैंने परिचय दिया, कहा, "आपसे विस्तार से बातें करना चाहता हूँ।"

वे बोलीं, "समय कहाँ है ? मेरे पास भीतर बाल-बच्चे हैं। मेहमान आये हुए हैं। उनको बैठा कर बाहर चली आयी हूँ, खाली आप से मिल लेने के लिए।"

मैंने कहा, "आज न सही, किसी और दिन सही।"

"वे बोलीं, "सभी दिन तो एक जैसे रहते हैं यहाँ···" परिवार के अंतरंग आत्मीय श्री हनीफ ने कहा, "परसों एक बजे आइये तो शायद कुछ दे

बैठ कर वे आपको कुछ बता सकें।"

मैंने कहा, "ठीक है।"

वे मुस्करा कर भीतर चली गयीं। मुझे लगा, कैसी अच्छी जोड़ीदार हैं ये शेख मुजीब की। शेख साहब बाहर के काम-काज में व्यस्त रहते, अपने को भूल कर, अपने परिवार को भूल कर पर बांगला देश के साथ एकात्म हो कर; और बेगम मुजीब—रेणु सिर्फ अपने परिवार की ही नहीं, अनवरत आते रहते कार्यकर्त्ताओं की भी आत्मीय स्वजन की तरह व्यवस्था करतीं। आज भी वह क्रम चालू है।

कैसे रहे होंगे पिछले नौ-दस मास उनके लिए? पति पाकिस्तानी पशुओं की जेल में पश्चिम पाकिस्तान में कहीं, दोनों बड़े लड़के मुक्तिवाहिनी के साथ बांगला देश में ही, किंतु मालूम नहीं कहाँ? शत्रुओं के साथ युद्ध करते हुए; खुद नाते-रिश्तेदारों–विश्वस्त साथियों से अलग··नजरबंद··ढाका और पूरे बांगला देश पर पाक फौज का घृणित अत्याचार। इसीलिए बेगम मुजीब की मुस्कराहट के ऊपर विषाद की गहरी छाया है।

ज्योति ने कहा, "चलिए, शेख साहब का अपना घर भी देख लीजिये, पास ही है।"

धानमंडी झील के सामने छोटा-सा दुतल्ला घर। सामने छोटी-सी बगिया। मुक्तिवाहिनी के जवान पहरा दे रहे थे। हम लोगों को उनमें से एक घर दिखाने ले गया। मकान की दीवारों पर जगह-जगह गोलियों के निशान बने हुए थे। हर एक कमरे को लूट कर, नोच-खसोट कर पाकिस्तानी फौज ने अपनी संस्कृति (?) का जो घिनौना परिचय दिया था, वह प्रत्यक्ष था। इस मकान को बांगला देश का प्रतीक ही समझना चाहिए। इसी तरह की लूट मार सारे देश में हुई थी। रवीन्द्रनाथ के चित्र पर दो गोलियाँ दागी गयी थीं। सारा सामान फर्श पर छितराया हुआ था। लोहे की आलमारी तोड़ कर गहने और रुपये लूट लिये गये थे। गहनों के खाली डिब्बे जमीन पर पड़े हुए थे। मेजें, कुर्सियाँ उल्टी और टूटी-फूटी पड़ी थीं। शेख साहब के कागज-पत्र, कमाल के कप, मेडल (जो उसने स्पोर्ट्स में पाये थे), बच्चों के खिलौने, घर की रोजमर्रा की जरूरत की चीजें······कुछ भी सही-सलामत नहीं था।

स्वतंत्र बांगला देश के नागरिक इस ध्वंसावशेष को देखते और उनकी

आँखों में खून उतर आता। यदि शेख साहब के घर में यह सब हुआ, तो औरों के घरों में क्या नहीं हुआ होगा ?

३१ दिसंबर को दिन के एक बजे फिर पहुँचा बेगम मुजीब से मिलने। वही कमरा, वही स्थिति। बेगम आयीं, उसी तरह व्यस्त। बोलीं, "लीजिये, आप आ भी गये। भाई, मैं क्या बताऊँ? सुबह से कितने लोग आये हैं ? उसी में घर का काम-काज। आप जानते ही हैं कि पिछले दिनों मैं नानी बन गई हूं। हसीना से तो बच्ची सँभलती नहीं, वह खुद अभी बच्ची है। मेरे ही पास रहती है। देखिए न, दुष्ट ने 'सू-सू' कर के मेरी सारी धोती गीली कर रखी है।" और फिर हँसने लगीं। मैं कागज-कलम लिये तैयार बैठा था। मैंने कहा, "आज तो कुछ देर बातचीत आप करेंगी न ?"

वे बोलीं, "मैं तो चाहती हूँ कि इतनी दूर से इतना कष्ट करके आप आये हैं, आप से जरूर बातचीत करूँ। लेकिन···अच्छा खैर, पूछिये, क्या पूछना है ?"

मैंने पूछा, "शेख साहब परिवार के लिए कितना समय दे पाते थे ? कैसे रहते थे घर में ?"

वे बोलीं, "उनके लिए अपना अलग से कोई समय था ही नहीं। जो था, सबका था। उसी में हम लोग भी थे। अपने परिवार के लिए बहुत ममता थी उनके मन में, पर उनका परिवार तो सारा देश ही था। घर में जब फ़ुर्सत से रहते तो स्नेही पति, पिता की तरह ही रहते थे। उनके लिए खास क्या बताऊँ ?"

मैंने पूछा, "अच्छा, २५ मार्च को क्या हुआ था ? कैसे वे गिरफ्तार हुए थे, यह तो बताइये।"

वे कुछ बोलने जा ही रही थीं कि भीतर से उनकी नवजात दोहती के रोने की आवाज आयी। उन्होंने विवशताभरी दृष्टि से मुझे देखा। कहा, "जमाल उस दिन घर में ही था। वह आपको यह सब बता देगा। मैं जा कर हसीना को भेज देती हूँ। वह अपने अब्बा के पारिवारिक जीवन के बारे में सब कुछ बता देगी। मैं जरा भीतर जाऊँ, बच्ची को देखूं। अच्छा भाई, सुख से रहना और फिर आना !"

वे चली गयीं तो मैंने शेख जमाल को पकड़ा। वह सोलह वर्ष का किशोर दुबला-पतला, किंतु बड़ा जीवट वाला है। स्कूल फाइनल की परीक्षा

देने वाला था कि संग्राम छिड़ गया। फिर किसे परवाह पड़ी थी ? परीक्षा की। अगस्त तक तो वह माँ के साथ इसी घर में बंदी रहा, किंतु अगस्त के दूसरे सप्ताह में पाकिस्तानी पहरेदारों की आँखों में धूल झोंक कर वह फरार हो गया। जव जो सवारी मिली, मोटर, नौका, रिक्शा उसी पर वह छिपे-छिपे मुक्तिवाहिनी के जवानों के साथ कालीगंज की ओर वढ़ता रहा। काफी पैदल भी चलना पड़ा। फिर एक महीने की ट्रेनिंग लेकर मेजर जलील (उनके वारे में आप ६ जनवरी के धर्मयुग में पढ़ चुके हैं) के अधीन नवें सेक्टर में उसने युद्ध में हिस्सा लिया। जव मैंने उससे पूछा कि उसका क्या रैंक था ? तो उसने पट से जवाब दिया, "किसी रैंक के लिए तो मैंने युद्ध किया नहीं था ? देश के लिए किया था। मैं साधारण जवान था।"

मैंने उससे पूछा, "अच्छा वताओ, शेख साहव को २५ तारीख को पाकिस्तानी फौज ने कैसे गिरफ्तार किया ?"

उसने बताया, "२५ मार्च को रात के एक बजे के करीव अम्मा ने मुझे जगाया। वाहर गोलियाँ चलने की आवाज आ रही थी। अब्बा भी सो रहे थे, वे भी उठे। तव तक हम लोगों के बेडरूम के भीतर गोलियाँ आने लगीं। एक गोली मेरे कान के पास से निकल गयी। हम लोगों के रोकते रहने पर भी अब्बा छज्जे पर चले गये और गरज कर बोले, 'स्टॉप फायरिंग !' जितने पाक सिपाही घर के भीतर आ गये थे, उन्होंने गोलियाँ चलाना बंद कर दिया। अब्बा ने उनके अफसर को ऊपर आने को कहा। कोई कर्नल साहव थे। अब्बा ने उनको फटकारा कि इस तरह गोलियाँ चलाने की क्या जरूरत थी ? मुझे अगर आपकी सरकार गिरफ्तार करना चाहती है, तो मैं फोन पर ही आपको आने के लिए कह सकता था।"

कर्नल ने जल्दी तैयार होने के लिए कहा। जल्दी-जल्दी अब्बा का थोड़ा-सा सामान बाँधा गया। जाते समय कर्नल ने मुझसे कहा, "मुझे दुःख है कि मैं तुम्हारे अब्बा को ले जा रहा हूँ।"

मैंने कोई जवाब नहीं दिया। उनके जाने के वाद पाकिस्तानी सिपाहियों ने सारे घर में लूट-मार और तोड़-फोड़ की। फिर हम लोगों को इस घर में ला कर रखा गया।"

मैंने पूछा, "अब्बा क्या तुम लोगों की देखभाल भी करते थे ? क्या तुम लोग साथ-साथ खाना खाते थे ?"

जमाल बोला, "हाँ, बीच-बीच में वे हम लोगों से पढ़ाई-लिखाई ठीक से करने को कहते रहते थे। एक साथ खाने का मौका वहुत कम मिलता

था, पर जब मिलता था तब बहुत अच्छा लगता था।"

तब तक हसीना भी वहीं आकर बैठ गई थी। सीधी-सादी शांत बिटिया-सी लगी वह मुझे। उसकी छोटी-सी दो-तीन महीने की बच्ची उसकी गोद में थी। एक चोटी, घरेलू साड़ी, दो चूड़ियाँ, मुँह पर प्रतिभा की छाप—अपनी माँ की तरह ही गृहस्थिन।

मैं उन लोगों को 'धर्मयुग' के अंक दिखाने लगा। बांगला देश विशेषांक को दोनों भाई-बहिन बहुत चाव से देखते रहे। मैंने वह अंक जमाल को यादगार के बतौर भेंट कर दिया।

फिर मेरे सवाल शुरू हुए। मैंने जमाल से पूछा, "तुम्हारे अब्बा तो कई बार जेल गये हैं? तुम उनसे जब जेल में मिलने जाते थे, तो वे क्या कहते थे?"

जमाल बोला, "यही कहते थे कि घर में अच्छी तरह रहना चाहिए। शैतानी नहीं करनी चाहिए। पढ़ने-लिखने में मन लगाना चाहिए आदि-आदि।"

मैंने पूछा, "क्यों, क्या घर में तुम बहुत शैतानी करते रहते थे?"

वह बोला, "नहीं, नहीं। मैं कहाँ शैतानी करता था? पर अब्बा को लगता होगा तभी तो कहते होंगे।"

हसीना उसकी बात काट कर बोली, "नहीं, यह बहुत दुष्ट था। इसीलिए तो अब्बा इसे डाँटते थे, प्यार भी करते थे। वैसे यह बड़ा जिद्दी है। थोड़ा-थोड़ा पगला भी है। बहुत स्पष्टभाषी है। किसी से नहीं डरता, अम्मा का बहुत दुलारा जो है।"

जमाल ने झुँझला कर कहा, "अब आप दीदी से ही बात कीजिए। मैं तो नटखट हूँ, ये तो बहुत अच्छी हैं। मैं चला! मुझे अपने कैप्टेन से मिलने भी जाना है।"

हम लोग उसे रोकते ही रहे, पर वह भीतर गया। फौजी पोशाक पहिन कर, अपनी राइफल ले कर आया और मुझसे 'भारत-बांगला मैत्री जिंदाबाद' कह कर अपने काम पर चला गया।

हसीना हँसने लगी। बोली, "देख लिया न आपने। कैसा तुनुक मिजाज है।" फिर बड़ी अपनायत से मुझसे बोली, "आप को एक भेद की बात बताऊँ। असल में हम लोगों के घर में दो दल हैं। अब्बा, मैं और रेहाना एक तरफ है···अम्मा, कमाल और जमाल एक तरफ। सबसे छोटा रसेल बहुत

सुविधावादी है। कभी अब्बा की तरफ हो जाता है, कभी अम्मा की तरफ। सबसे छोटा है न, इसलिए सबका दुलारा है।"

मैंने पूछा, "अब्बा तुम लोगों से कभी हँसते-बोलते भी थे या घर में भी गंभीर बने रहते थे ?"

उसने कहा, "नहीं-नहीं। अब्बा हम लोगों से बहुत 'फ्रेंडली' (दोस्त जैसे) थे। मुझे उन्होंने ही तो शतरंज खेलना सिखाया है। वैसे वे बैडमिंटन और ताश के भी प्रेमी थे। कभी-कभी, यद्यपि बहुत कम वे हम लोगों से लूडो भी खेलते थे। अब्बा घर में रहते थे, तो घर बहुत गुलजार रहता था।" उसकी उदास आँखें कमरे के चारों ओर घूम आयीं, मानो चाह रही हों कि अब्बा कहीं से निकल आयें।

मैंने पूछा, "तुम उनकी बहुत दुलारी थीं, उनसे खूब बातचीत करती थीं। कभी-कभी जिद भी करती थीं ?"

वह बोली, "नहीं। मैंने उनसे कभी जिद नहीं की, कभी उनकी कोई बात नहीं टाली, मैं डरती थी कि उन्हें दुःख न हो। बातचीत मैं उनसे बहुत करना चाहती थी और करती भी थी, किंतु उनका मूड देख कर।"

मैंने एक दूसरा सवाल किया—

"उनका शौक क्या था ? क्या करते थे वे अवकाश के समय ?"

हसीना बोली, "पहली बात तो यह कि उन्हें अवकाश मिलता ही बहुत कम था। वैसे किताबें पढ़ने और बागवानी का उन्हें काफी शौक था। उन्होंने अपनी बगिया में अच्छे-अच्छे फूलों के पौधे लगाये थे। सुनती हूँ, अब जंगल-सा हो गया है बाग !" मैं खुद परसों देख कर आया था कि देखभाल न होने के कारण सारी बगिया झाड़-झंखाड़ से भर गयी है। मैंने खेदपूर्वक उसकी बात का समर्थन किया।

मैंने फिर पूछा, "तुम्हारे अब्बा का स्वास्थ्य साधारणतः कैसा रहता था ? उनका रोजमर्रे का भोजन क्या था ? क्या वे भोजन के समय का ध्यान रखते थे ?"

वह बोली, "अब्बा का स्वास्थ्य साधारणतः अच्छा था। कभी-कभी सर्दी-खाँसी हो जाती थी, पर बहुत कम। वे बहुत सादा भोजन पसंद करते थे। सुबह-सुबह नींबू की चाय पीते थे। नाश्ते में थोड़ा-सा छेना, फल और अंडा खाते थे। दोपहर के भोजन में भात, मछली का झोल, तरकारी, साग पसंद करते थे। मांस उन्हें खास अच्छा नहीं लगता था। रात को भी यही भोजन रहता था। हाँ, वे आम, दही, मलाई और खजूर का गुड़ बहुत पसंद

करते थे। खाना वे ठीक समय पर कम ही खा पाते थे। दिन भर उनके पास लोग आते रहते थे। सब तरह के लोग अमीर भी, गरीब भी। उनकी बैठक में भीड़-सी लगी रहती थी। ज्यादा देर होने पर हम लोग जबर्दस्ती उन्हें पकड़ कर खाने के लिए ले आते थे।"

मेरा आखिरी सवाल था, "क्या अम्मा या तुम लोग भी राजनीति में भाग लेती थीं ? अब्बा क्या चाहते थे इस संबंध में ?"

वह बोली, "अम्मा ने राजनीति में प्रत्यक्षतः कोई भाग नहीं लिया किंतु वे अब्बा का सब समय पूरा समर्थन करती थीं। घर आये कार्यकर्त्ताओं और नेताओं की देखभाल भी वे ही करती थीं और अब भी करती हैं। हम लोगों ने जरूर राजनीति में भाग लिया है। स्कूल में और कालेज में भी होने वाली हड़तालों में मैं शामिल होती रही, जलूसों में भी जाती रही; पर हाँ, नेता-गिरी नहीं करती रही। वह काम तो कमाल के जिम्मे था। वह बड़ा छात्र-नेता था। जम कर स्टूडेंट लीग का काम करता था। अब्बा इसका पूरा समर्थन करते थे। हम लोगों की राजनीतिक गतिविधि से वे खुश होते थे। अम्मा ने भी हम लोगों को कभी नहीं रोका राजनीति में हिस्सा लेने से।"

इस आत्मीयता से बातचीत हो रही थी कि समय का पता ही नहीं चला। उस लोगों से बिदा लेते समय मैंने कहा, "भगवान की कृपा से आपके अब्बा अब जल्दी ही मुक्त हो कर अपने घर लौटेंगे। तब मैं फिर आऊँगा आप लोगों से मिलने।"

वह बोली, "आप जरूर आइएगा। हम लोगों को भी पूरा यकीन है कि वे जल्दी लौटेंगे। अब्बा को दृढ़ विश्वास था कि पाकिस्तानी चाहे जितना अत्याचार कर लें, बांगला देश स्वाधीन हो कर रहेगा। २५ मार्च को वे रह-रह कर गुन-गुना उठते थे, 'मानवेर तरे माटी पृथिवी, दानवेर तरे नय, जय हवे, जय हवे। हवे जय! (यह पृथ्वी मनुष्य के लिए ही बनी है, दानवों के लिए नहीं। जय होगी, जय होगी—होगी जय ! और जय हुई है जनता की और अब अब्बा भी जरूर जल्दी ही आयेंगे। जय बांगला !"

× ×

और इस भेंट-वार्ता के छपते-छपते शेख के रिहा होने और नयी दिल्ली होते हुए उनके ढाका पहुँच जाने के समाचार आ चुके हैं। हसीना और शेख के परिवार का ही नहीं पूरी मानवता का विश्वास आज सच हो चुका है।

२२.
ढाका-स्मृति

३० दिसंबर, ७१। स्वाधीन ढाका का न्यू मार्केट। चारों तरफ चहल-पहल, खुली, सजी दूकानों पर खरीदारों की भीड़। बड़ी संख्या में महिलाएँ रंगीन साड़ियों की इंद्रधनुषी छटा। वातावरण में उल्लास। नौ महीनों बाद मातृभूमि को स्वदेश समझ पाने की सुखद अनुभूति। ऐसे में उधर से कुछ भारतीय सैनिक आते हैं। उनके आते ही मानो खुशी का ज्वार आ गया। 'मित्रवाहिनी जिंदाबाद', 'भारत-बांगला मैत्री जिंदाबाद' के नारे लगने लगे। मुस्कराते हुए, स्नेह स्वीकारते हुए भारतीय जवान एक-एक दो-दो के रूप में इधर-उधर बिखर गये। अरसे बाद वे भी चैन की सांस ले पा रहे हैं। अब घर वालों की यादें उन्हें गुदगुदा रही हैं। उनके लिए ढाका की कुछ निशानी ले चलनी है, उपहार के रूप में। वे खरीदारी पर जुट जाते हैं। महिलाएँ उसी निश्चित स्वच्छंदता के साथ उन्हीं दूकानों में खरीदारी कर रही हैं, बाजार में उसी आत्मविश्वास के साथ विचर रही हैं। बाबू (तनवीर) और ज्योति (रेजाउर्रहमान) मुझे बताते हैं कि उन लोगों ने नौ महीनों बाद ऐसा दृश्य देखा है। नहीं तो एक भी पाकिस्तानी सिपाही की उपस्थिति से सनसनी फैल जाती थी। महिलाओं के बाहर निकलने की तो कोई बात ही नहीं उठती थी। पुरुष भी सकते की-सी हालत में आ जाते थे। पाकिस्तानी फौजियों की तुलना में भारती सैनिकों का व्यवहार इतना अच्छा है, इतना अच्छा है कि कह कर उस फर्क को समझाया नहीं जा सकता। यह सचमुच मित्रवाहिनी है।

कैसे किया था मित्रवाहिनी ने ढाका में प्रवेश? १२ दिसंबर तक की कथा आप पिछले अंक में पढ़ चुके हैं। चार दिन बाद सोलह दिसंबर, ७१ की सुबह को मेजर जनरल नागरा ने ब्रिगेडियर एच० एस० क्लेर तथा ब्रिगेडियर संतसिंह के साथ ढाका में सर्वप्रथम प्रवेश किया था। शेष कथा स्वयं उन्हीं से जानना है, धर्मयुग के लिए। पूछताछ करने पर पता चला कि मेजर जनरल नागरा तो बाहर गये हुए हैं, किंतु ब्रिगेडियर क्लेर यहीं हैं।

दूसरे दिन सुबह-सुबह उनसे फोन मिलाया। उन्हें जैसे ही पता चला कि मैं धर्मयुग की ओर से आया हूँ, उन्होंने तुरंत सवाल किया। 'डॉ० भारतीय और बालकृष्ण कैसे हैं?' और कहा, 'आप सीधे चले आइए, धर्मयुग के लिए समय-ही-समय है।'

ब्रिगेडियर क्लेर लंबे, गठीले, रोबीले सेनानायक हैं। बिना लाग-लपेट के खरी, दो टूक बातें कहने वाले, कल्पनाशील दूरदर्शी सेनानायक और दुर्धर्ष योद्धा। उन्होंने तपाक से हम लोगों से हाथ मिलाया और पूछा, जमालपुर के युद्ध का विवरण धर्मयुग में कब आ रहा है?' (उस समय लेखमाला प्रारंभ नहीं हुई थी) मैंने कहा, 'बहुत ही शीघ्र। डॉ० भारती उसे जम कर लिख रहे हैं। 'मुझे उन्होंने उस दिन की रोमांचक घटना सुनायी है, जब आप सब पाकिस्तानी अग्निवर्षा की चपेट में आ गये थे।' उन्होंने कहा, 'ओह! मैं नहीं जानता उस दिन हम लोग कैसे बच गये? परमात्मा बड़ा कारसाज है। बाद में मैंने पाकिस्तानी लेफ्टि० कर्नल सुलतान महमूद से उस घटना के बारे में पूछा था। उसने बताया कि हम लोग इस बात को भाँप गये थे कि भारतीय फौज के बड़े-बड़े अधिकारी मुआयना करते हुए हमारी मार के भीतर आ गये हैं। आर० सी० एल० गन्स और मोर्टारों का इस्तेमाल हम लोगों ने खुल कर किया था, पर आप लोगों की किस्मत तेज थी, आप लोग बेदाग बच गये।'

फिर ब्रिगेडियर क्लेर मुस्करा कर बोले, 'फौजी जिंदगी का यही तो रोमांस है, जो जिंदगी और मौत के बीच चलता रहता है।'

मैंने कहा, 'धर्मयुग का विशेष आग्रह है कि ढाका की मुक्ति की कहानी आपकी जबानी भेजी जाये। आप बताइये न, कैसे आप लोगों ने ढाका को आजाद कराया?'

ब्रिगेडियर क्लेर पहले कुछ सकुचाये, बोले, 'यह तो अपने मुँह अपनी तारीफ करने जैसी बात होगी।' पर मैं नहीं माना, मैंने कहा—'आप केवल तथ्य ही सुनाइये। किसी की प्रशंसा पाने की दृष्टि से नहीं, अपने देशवासियों को इस महान ऐतिहासिक घटना की सही जानकारी देने के लिए आपको यह कहानी सुनानी ही चाहिए।'

ब्रिगेडियर बोले, 'आपने बचने का कोई रास्ता ही नहीं छोड़ा। अच्छा सुनिए!'

ढाका की ओर भारतीय सेनाओं का बढ़ाव यद्यपि तीनों दिशाओं से हुआ था, किंतु पूर्व और पश्चिम की ओर से आने वाली सेनाओं का मुख्य

कार्य दुश्मन को उलझाये रखना और भरमाना था कि न जाने किस दिशा से ढाका पर निर्णायक आक्रमण होगा ? उन दोनों दिशाओं में बड़ी-बड़ी नदियों के कारण पूरा साज-सामान ले कर नये पुल बना कर उन्हें पार करना अपेक्षाकृत कठिन काम था। अतः पूर्व निर्धारित योजना के अनुसार ढाका पर अधिकार करने की जिम्मेदारी उत्तर से आने वाली हमारी सेना पर ही थी। जमालपुर को जीतते समय हमने ब्रह्मपुत्र को पार कर लिया था। अब हमारी राह में कुछ छोटी-छोटी नदियाँ भर थीं, जिन्हें पार करना अधिक कठिन न था।

१२ दिसंबर को सुबह हम लोगों ने ढाका की ओर कूच किया जमालपुर से। टंगाइल के पास मैमनसिंह और जमालपुर के भागे हुए पाक फौजी जमा हो कर अपने पुनर्गठन का प्रयास कर रहे थे। हमने उन्हें इसका मौका दिये बिना घेर लिया। जम कर लड़ाई हुई। करीब तीन सौ पाक सिपाही उस लड़ाई में मारे गये। हमने उनके हेवी मोर्टार्स और सारे वाहन पकड़ लिये। हम बिना रुके आगे बढ़ते रहे। पैराट्रूपों के द्वारा हमने टंगाइल के पार करीब ६०० जवान उतार दिये थे। शाम के चार बजे तक बाकी फौज को साधारण नौकाओं से पार किया गया। इस काम में मुक्तिवाहिनी ने हमारी पूरी मदद की। हमारे यातायात के साधन पीछे छूट गये थे। कादिर सिद्धीकी के नेतृत्व में मुक्तिवाहिनी ने हमारे लिए उस इलाके के सारे वाहन जुटा दिये। २० बसें थीं। बहुत-से रिक्शे थे, बाद में बाकी लोग पैदल ही चले। रात के ६-३० बजे हम लोग कलियाकार पहुँचे। रास्ते में मिर्जापुर में एक हल्की-सी मुठभेड़ हुई, जिसमें सात पाकिस्तानी फौजी मारे गये।

दूसरे दिन १३ दिसंबर को हमने फिर आगे बढ़ना शुरू किया। हमें पता चला कि कुछ दूर पर पाकिस्तानी अधिकारियों का पड़ाव है। हमने अचानक उन्हें घेर कर चकित कर दिया। बिना लड़े ही उन लोगों ने आत्मसमर्पण कर दिया। मुझे यह जान कर बहुत ही खुशी हुई कि बंदियों में ब्रिग्रेडियर कादिर भी थे, जो मेरे विरुद्ध पाकिस्तानी फौजों का नेतृत्व कर रहे थे। उनके अलावा छह अफसर और २६ अन्य सैनिक थे। हम आगे बढ़ते गये। एक छोटी-सी तुरग नदी पड़ी। उस पार दुश्मन के टैंक थे। किंतु हम लोगों ने अपने रॉकेट लांचरों के द्वारा उन्हें बेकार कर दिया। हमने ढाका को कई तरफ से घेरने की योजना बनायी और धीरे-धीरे अपना बढ़ाव जारी रखा।

इस बीच हम लोग दुश्मन के पास आत्मसमर्पण करने के संदेश लगातार भेजते रहे। १४ और १५ को अपना शिकंजा हम मजबूत करते रहे। हमने

मिर्जापुर पुल पर कब्जा कर लिया। अब हम लोग ढाका के मुफस्सिल में पहुँच चुके थे। पर हम चाहते थे कि खून खराबी कम-से-कम हो। इसलिए दुश्मन का मनोबल तोड़ने के लिए हम लोगों ने ढाका की छावनी, हवाई अड्डे तथा गवर्नर हाउस पर बमबारी करनी शुरू की। मैं अपनी वायु सेना को बधाई देना चाहता हूँ। हमारे हवाबाजों ने बड़ी मुस्तैदी और सटीक निशानेबाजी का प्रमाण दिया। हमारे हवाई हमलों से घबरा कर न केवल गवर्नर डॉ० मलिक ने इस्तीफा दे दिया, बल्कि पाकिस्तानी फौज के वड़े अधिकारियों में भी निराशा व्याप गयी। वे भीतर-भीतर समझ गये थे कि लड़ाई में उनकी हार तो निश्चित है ही, युद्ध करने पर बड़ी संख्या में उनकी फौज को हताहत होना पड़ेगा। असल में हमने दुश्मन को पाँच भिन्न-भिन्न स्थानों से चाँप कर उसे बिल्कुल बौखला दिया था। हमारी जितनी शक्ति थी, उससे कई गुना अधिक शक्तिशाली होने का आभास हमारी व्यूह-रचना के कारण दुश्मन को होता रहा।

अपनी पूरी तैयारी कर लेने के बाद हमने १६ तारीख को दुश्मन को अल्टीमेटम भेजने का निश्चय किया। मेजर जनरल नागरा मुझे और ब्रिगेडियर संतसिंह को ले कर मीरपुर पुल पर गये वहाँ से उन्होंने अपने दो अफसरों के हाथ लेफ्टि० जनरल नियाजी के नाम पत्र भेजा। जिसका मजमून यही था कि मैं अपनी फौज के साथ यहाँ तक आ पहुँचा हूँ। यदि आप अपनी कुशल चाहते हैं, तो आत्मसमर्पण कर दें। आत्मसमर्पण कर देने के वाद आपकी और आपकी पूरी सेना की सुरक्षा की जिम्मेदारी मैं लेता हूँ। हमारे दोनों अफसर सफेद झंडा ले कर उस पार गये। उस ओर मेजर जनरल जमशेद ने उनका स्वागत किया। लेफ्टि० जनरल नियाजी ने आत्म-समर्पण करना स्वीकार कर लिया और मेजर जनरल जमशेद को हमसे मिलने भेजा। उनकी गाड़ी को आते देख कर हम समझ गये कि पाकिस्तानी फौज ने आत्मसमर्पण करना स्वीकार कर लिया है। मेजर जनरल नागरा, मुझे और ब्रिगेडियर संतसिंह को ले कर उनका स्वागत करने के लिए पैदल आगे बढ़े। हम लोगों के पास कोई हथियार नहीं था। हमारे साथ मुक्तिसेना के हमारे सहयोगी कादिर सिद्दीकी भी थे।

हमने मेजर जनरल जमशेद की गाड़ी पर मेजर जनरल नागरा का झंडा लगा दिया। ब्रिगेडियर संतसिंह ने स्टियरिंग अपने हाथ में ले लिया। दोनों तरफ पाकिस्तानी सिपाहियों की सशस्त्र कतारों के बीच से हमारी गाड़ी आगे बढ़ीं। वे लोग भौचक्के-से हम लोगों को देखते रहे। आगे की

ओर मेजर जनरल नागरा, मैं और ब्रिगेडियर संतसिंह थे। मेजर जनरल जमशेद के साथ मुक्तियोद्धाओं का नेता कादिर सिद्दीकी गौरव के साथ पीछे बैठा हुआ था।

हम उनके हेडक्वार्टर पहुँचे। लेफ्टि० जनरल नियाजी अपने रक्षाबंकर में छिपे हुए थे। उन्हें संवाद दिया गया। वे ११ बजकर ५ मिनट पर वहाँ पहुँचे। मेजर जनरल नागरा और लेफ्टि० जनरल नियाजी पूर्व परिचित थे। वे दोनों गले मिले। नियाजी की आँखों में आँसू भरे हुए थे। उन्होंने हम लोगों से और कादिर सिद्धीकी से भी हाथ मिलाया। पराजित पाकिस्तानी सेना के सर्वोच्च सेनापति से हाथ मिलाते समय कादिर सिद्धीकी ने मुक्ति सेना का प्रतिनिधित्व किया और इस प्रकार आत्मसमर्पण की पहली रस्म पूरी हुई।

फिर तो कलकत्ता से मेजर जनरल जैकब आये और चार बजे के करीब आत्मसमर्पण के पत्र पर विधिवत् हस्ताक्षर हुए।

इसी बीच आत्मसमर्पण की खबर ढाका में चारों ओर फैल गयी। जनता खुशी के मारे नाच उठी। हमें खबर लगी कि इंटरकांटिनेंटल होटल के इर्द-गिर्द बहुत बड़ी भीड़ जमा हो गयी है। मेजर जनरल नागरा ने मुझे वहाँ भेजा। मेरा ड्राइवर पाकिस्तानी ही था। भीड़ ने उसे घेर लिया। पर मेरे कहने पर किसी ने उसे छुआ तक नहीं। असल में भीड़ खुशी मनाने वालों की थी, हमला करने का उसका इरादा कत्तई नहीं था। लोग मुझसे हाथ मिलाने के लिए, मुझसे गले मिलने के लिए बेताब थे। उनका प्रेम ज्यादा उमड़ा तो उन्होंने मुझे कंधों पर उठा लिया। 'जय बांगला, जय हिंद' के नारे गूंज रहे थे। यादगार के बतौर उन लोगों ने मुझसे मेरे फौजी अलंकरण माँगने शुरू किये और फिर तो जिसके हाथ में जो लगा, उसने वह ले लिया। मैंने दोनों हाथों से अपनी पगड़ी दबा रखी थी और कहता जा रहा था कि भाइयो! इसको बख्श दो। पागलपन की सीमा तक पहुँचा हुआ इतना प्रेम, इतनी खुशी, इतना उत्साह इसके पहले मैंने कभी नहीं देखा था। ढाका की आजादी···बांगला देश के मुक्तियुद्ध की सबसे बड़ी घटना है, इसमें कोई संदेह नहीं!

२३.

बांगला देश सरकार के कर्णधारों के साथ

बंगभवन···स्वाधीन बांगला देश का राष्ट्रपति निवास···नवनिर्माण की चेतना से कर्ममुखर, साहस, संकल्प और संयम के साथ नयी चुनौतियों को स्वीकारने की तत्परता का मूर्त्त रूप, नवीन इतिहास की रचना के उत्तरदायित्व बोध से ओतप्रोत ! कल तक यह था 'ईस्ट पाकिस्तान' का 'गवर्नर हाउस'··· कुख्यात आधुनिक चंगेज टिक्का खाँ और मीरजाफर डॉ० मलिक का शाही महल···तब यहाँ योजनाएँ बनती थीं स्वाधीनता के हनन की, व्यापक हत्या-कांड, बलात्कार और लूटमार की, बांगला देश को हजारों साल तक पाकिस्तानी उपनिवेश बनाये रखने की ! कितना परिवर्तन आ गया है यहाँ के परिवेश में, अब यहाँ रहते हैं जनता के चुने हुए प्रतिनिधि, आते हैं देश-विदेश के बंग-प्रेमी राजनयिक, पत्रकार, साधारण कार्यकर्त्ता, गूंजते हैं जनसाधारण की पीड़ा, दुर्गति और दरिद्रता को दूर करने की परिकल्पनाओं के आशावादी स्वर ! इस परिवर्तन को संभव बनाने वाले संघर्ष के चिह्नों को भी यह अभी तक धारण किये हुए है। इसका अभ्यर्थनाकक्ष भारतीय हवाबाजों की अचूक निशानेबाजी का प्रमाण है···मैं गिनता हूँ एक, दो, तीन···नौ बमों की चोटों के बड़े-बड़े सूराख उसकी विशाल छत को छलनी बनाये हुए हैं। इन्हीं धड़ाकों और विस्फोटों से आतंकित हो काँपते हुए बूढ़े पाक गवर्नर डॉ० मलिक ने थरथराते हाथ से चिरकुट पर अपनी सरकार का इस्तीफा लिखा था, अपने रक्षा-बंकर में और दूसरे दिन ही रेडक्रॉस द्वारा तटस्थ क्षेत्र के रूप में घोषित होटल इंटरकांटिनेंटल में भाग कर अपनी जान बचायी थी। गवर्नर हाउस रूपांतरित हो सके बंगभवन में, इसके लिए लाखों को शहीद होना पड़ा है मुक्तिवाहिनी और मित्र-वाहिनी के हजारों जवानों को वीरगति प्राप्त करनी पड़ी है, साबित करना पड़ा है कि आजादी के लिए कोई भी कीमत बड़ी नहीं होती। पर हाँ, अब बंगभवन को प्रमाणित करना है कि वह शहीदों के रक्तरंजित स्वप्न को सत्य बनाने के लिए कटिबद्ध है।

"हमने बड़ी कीमत चुका कर सीखा है कि उपासना पद्धति अलग होने से संस्कृति अलग नहीं होती।"

—सैयद नजरुल इस्लाम

धर्मयुग के लिए विशेष साक्षात्कार करने जा रहा हूँ कार्यकारी राष्ट्रपति (अब उद्योग मंत्री) सैयद नजरूल इस्लाम से, यह सुनकर देशी-विदेशी पत्रकारों की आँखों में झलक उठने वाली ईर्ष्या से अप्रभावित रहने की चेष्टा करता हुआ ३० दिसंबर '७१ को दिन के साढ़े दस बजे मैं उनके निजी कक्ष में प्रविष्ट हुआ। मुस्कराते हुए सैयद नजरूल इस्लाम साहब ने मेरा स्वागत किया। शेख मुजीब के प्रेस सचिव तथा मेरे स्नेही बंधु बादशा उन्हें बांगला देश के स्वातंत्र्य संग्राम में 'धर्मयुग' के सहयोग की बात बता चुके थे। अतः मेरे स्वागत में निरी औपचारिकता न हो कर आत्मीयता भी थी। पाजामा, कुर्ता, कंधों पर डाली हुयी शाल, दोहरा बदन, सांवला रंग, भरा हुआ प्रफुल्ल मुखमंडल, चेहरे पर विजय की चमक, चौड़ा माथा जो बालों के झड़ जाने के कारण और चौड़ा लगता है, भावपूर्ण आँखें, कानों पर काले बाल···कुल मिला कर बंगाली 'भद्रलोक' संस्कृति के समर्थ प्रतिनिधि लगते हैं मध्यवयसी नजरूल इस्लाम साहब!

पारस्परिक स्नेहाभिवादन के बाद बातचीत शुरू हुई। तब तक कॉफी भी आ गयी। कॉफी का घूंट भरते हुए वे बोले, "आपको देख कर मुझे अपने प्राध्यापक पं० हरिदास भट्टाचार्य की याद हो आयी। वे ढाका विश्वविद्यालय में हम लोगों को दर्शन पढ़ाते थे। शिखासूत्रधारी नैष्ठिक ब्राह्मण थे, किंतु सांप्रदायिकता उनको छू नहीं गयी थी। वे मुसलमान छात्रों से भी उतना ही स्नेह करते थे, जितना हिंदू छात्रों से! वैसे विद्वान, छात्र वत्सल और कुशल प्राध्यापक अब दुर्लभ हैं!" वातावरण में और स्निग्धता आ गयी।

सचिवों द्वारा बीच-बीच में प्रस्तुत किये जाने वाले कागजों पर सही करते-करते वे बोले, "आप मुझसे बांगला देश के संबंध में सैद्धांतिक प्रश्न ही पूछिए। यदि व्यावहारिक समस्याओं को हल करने के लिए उठाये जाने-वाले कदमों के बारे में आप कुछ जानना चाहते हों, तो संबद्ध विभागों के मंत्रियों से मिल लें, वे आपको अधिक विस्तृत सूचनाएँ दे सकेंगे।" २८ दिसंबर की बृहत 'प्रेस कांफ्रेंस' में भी उन्होंने यह बात कही थी, अतः मैं उसी तरह के प्रश्न सोच कर गया था।

मेरा पहला प्रश्न था, "धर्म पर आधारित राष्ट्र के रूप में पाकिस्तान का गठन हुआ था। बांगला देश का नवराष्ट्र किन आधारों पर गठित हो रहा है?"

उत्तर : राष्ट्रीयता, लोकतंत्र और समाजवाद के आधारों पर ही हम अपने नये राष्ट्र की रचना कर रहे हैं। राष्ट्रीयता ही इसकी वास्तविक नींव है। भौगोलिक और नृतात्त्विक इकाइयाँ तो महत्वपूर्ण हैं ही, राष्ट्रगठन के लिए ऐतिहासिक और सांस्कृतिक इकाइयाँ और भी अधिक महत्वपूर्ण हैं। इस्लाम के आगमन के पूर्व के भी अपने हजारों वर्षों के इतिहास को हम स्वीकार करते हैं, उसके लिए गौरव का बोध करते हैं। बंगाली के आदिकालीन इतिहास से आज तक की जो सांस्कृतिक उपलब्धि है, उसे हम अपनी साँझी विरासत मानते हैं। उसमें हिंदू, मुसलमान, ईसाई आदि का भेद नहीं करते। हमने बहुत बड़ी कीमत चुका कर यह पाठ सीखा है कि धर्म से संस्कृति बड़ी है, कि उपासना पद्धति के अलग होने पर संस्कृति अलग नहीं होती। इसीलिए हमने अपनी राष्ट्रीयता में धर्मनिरपेक्षता को प्रमुख स्थान दिया है। सांप्रदायिक धर्मोन्माद का अब हमारे जीवन में कोई स्थान नहीं रहेगा। प्रत्येक नागरिक को अपनी, आस्था के अनुरूप अपने धर्म के पालन की छूट रहेगी। राज्य की दृष्टि में सभी धर्म समान रहेंगे।

प्रश्न : लोकतंत्र और समाजवाद के बहुत से ढाँचे आज की दुनिया में प्रचलित हैं, क्या आप यह बताने की कृपा करेंगे कि आपके लोकतंत्र और समाजवाद का स्वरूप क्या होगा?

उत्तर : हमारा लोकतंत्र संसदीय लोकतंत्र होगा, जिसमें जनता को अपने प्रतिनिधियों को चुनने का पूरा हक होगा। चीनियों की 'पीपुल्स डेमोक्रेसी' की तरह एकदलीय लोकतंत्र (?) पर हम विश्वास नहीं करते। व्यक्तियों को अपना राजनीतिक मत प्रकट करने की पूरी छूट रहेगी, राष्ट्र के आधारभूत सिद्धान्तों के अनुकूल भिन्न-भिन्न राजनीतिक दलों के गठन का अधिकार होगा। जनता की इच्छा मुक्त चुनावों में व्यक्त होगी और उसी के अनुसार सरकार बनेगी। आप कह सकते हैं कि हम भारत और ब्रिटेन में चलने वाली संसदीय प्रणाली का अनुगमन करेंगे।

प्रश्न : और समाजवाद का रूप क्या होगा आपके यहाँ? क्या आपकी परंपरा उससे टकरायेगी नहीं?

उत्तर : जी नहीं, हमारी परंपरा समाजवाद से क्यों टकराने लगी? आप यदि हमारी ग्राम सभ्यता के विकास पर ध्यान दें, तो देख पायेंगे कि

गाँव आत्मनिर्भर भी थे और बड़े-बूढ़े बुजुर्ग पंचायतों के माध्यम से अपनी अधिकांश समस्याओं को हल कर लेते थे। अभावग्रस्तों की सहायता करना, अपनी सम्पत्ति का सामाजिक हित में उपयोग करना हमारी परंपरा का अंग रहा है। जागीरदारों-जमींदारों की सामंतवादी संस्कृति से भिन्न हमारे ग्रामों की जो जनवादी संस्कृति थी, हम उसी का अनुसरण कर अपने समाजवाद का विकास करेंगे। पूंजीवादी व्यवस्था को हम कत्तई सहन नहीं करेंगे। एकाधिकार प्रणाली (मोनोपोली सिस्टम) को समाप्त कर हम बड़े उद्योगों, बैंकों के राष्ट्रीयकरण की बात सोच रहे हैं। हमारी अर्थनीति श्रम केंद्रित होगी, क्योंकि हमारी आबादी बहुत अधिक है। शोषण-मुक्त समाज की स्थापना हमारा लक्ष्य है।

प्रश्न : आपके अनुसार इस क्रांति के द्वारा बंगाली जाति के चरित्र में क्या मूलगत परिवर्तन हुआ है ?

उत्तर : मेरी समझ से इस क्रांति के द्वारा हमारे मूलचरित्र पर पिछले पच्चीस वर्षों से चढ़ाया जाने वाला कृत्रिम पाकिस्तानी मुलम्मा ही उतरा है, हमारे चरित्र में कोई मौलिक परिवर्तन नहीं आया है। हम पहले भी परम सहिष्णु, शांतिप्रिय, भावप्रवण, कल्पनाशील थे...आज भी हैं। धार्मिक कठमुल्लापन हमें कभी नहीं सुहाता था। हाँ, इस युद्ध ने यह अवश्य प्रमाणित किया कि जब हमारा राष्ट्रीय स्वाभिमान पददलित किया जाता है, तो हम उसकी रक्षा के लिए साहसपूर्वक शस्त्र उठा सकते हैं किंतु हम मूलभूत रूप से अब भी शांतिप्रिय जाति हैं और मानवसमाज में सद्भावपूर्वक, मित्रतापूर्वक रहना चाहते हैं।

प्रश्न : आपकी पीढ़ी संसदीय राजनीति की दीक्षा ले कर आगे बढ़ी थी, नयी पीढ़ी को विप्लवी राजनीति की युद्ध-दीक्षा मिली है। इन दोनों पीढ़ियों के मिजाज के फर्क के कारण इनमें जो अलगाव आ रहा है, उसे आप कैसे रोकेंगे ?

उत्तर : पुरानी पीढ़ी के नेता भी संघर्षों की आग में तप कर ही निखरे हैं, अतः उनकी दृष्टि-भंगी जवानों से बहुत भिन्न नहीं है। हाँ, यह ठीक है कि नौजवान चाहते हैं कि सब काम तुरंत हो जाये, सभी क्षेत्रों में तत्काल सभी सुविधाएँ प्राप्त हो जायें। हम उनकी भावना का, संग्रामी चेतना का सम्मान करते हैं, उनके साथ हैं, पर अनुभव के आधार पर समझते हैं क्या पहले होना चाहिए, क्या बाद में ? नौजवान कभी-कभी इस पर क्षुब्ध होते हैं। हमें उनका क्षोभ अच्छा लगता है, वह हमारा संबल है। हमें

कत्तई ऐसा नहीं लगता कि नौजवानों की विचारधारा में और हमारी विचार-धारा में कोई विच्छेद आया है। पीढ़ियों का थोड़ा-बहुत अंतर तो विश्व के सभी देशों में रहता ही है। पर हमारे यहाँ यह अंतर बहुत कम है। नौजवान हमारे साथ हैं और रहेंगे।

प्रश्न : शेख मुजीव से आपका दीर्घकालीन घनिष्ठ संबंध रहा है। क्या आप उनके बारे में अपना कोई विशिष्ट अनुभव बतायेंगे ?

उत्तर : १९४६ ई० से ही मैं शेख मुजीब के साथ हूँ प्रथम भाषा आंदोलन के समय से ही हम लोग साथ-साथ आंदोलनों में भाग लेते रहे। वे इतने महान थे कि बंधु होते हुए भी हम सब उनके अनुयायी हो गये। उनकी हजारों स्मृतियाँ मेरे मन में है आपको कौन-सी बात सुनाऊँ ? वे अपने मित्रों का कितना खयाल रखते हैं ? आपको क्या बताऊँ ! हर एक कार्यकर्त्ता के घर जा कर उसके वाल-बच्चों का हालचाल पूछते रह कर, उसके भले के लिए सहयोग देते रह कर, वे सबको अपना बना लेते हैं। राजनीति विरोध के समय वे जितने उग्र और दृढ़ हैं, व्यक्तिगत संबंधों में उतने ही शांत, स्नेही और मृदु हैं। मुस्कराहट तो उनके होंठों पर खेलती ही रहती है।

मुझे वे 'आप' कहते हैं। २५ मार्च की रात के आठ बजे मैं उन्हीं के घर रेडियो सुन रहा था। उन्होंने मुझे धमका कर कहा आप अभी तक क्यों नहीं गये ? तुरन्त ढाका छोड़ कर चले जाइए। मैंने कहा, मैं आपके साथ रहूँगा। वे बोले, आज तक मैंने कभी आपको हुक्म नहीं दिया है, आज हुक्म दे रहा हूँ कि आप तुरन्त ढाका छोड़ कर निकल जाइए। मेरा जो होगा, मैं देख लूंगा। इस तरह वे मुझे निरापद स्थान में भेज कर खुद मृत्यु से पंजा लड़ाने के लिए वहीं रह गये।

कहते-कहते सैयद नजरुल इस्लाम साहब की आँखो में आंसू आ गये। उनका गला रुँध गया। हम सब स्तब्ध रह गये। कुछ देर बाद उन्होंने अपने को संभाला मुझसे हाथ मिलाया और कहा, "हम लोग भारतीयों के सदा कृतज्ञ रहेंगे। उन्होंने जितना वड़ा खतरा उठा कर जिस प्रेम से हमारी सहायता की है, उसे हम कभी नहीं भूलेंगे। यह राष्ट्रगत बंधुत्व दिनों-दिन दृढ़ होता जायेगा।"

देश बड़ा होता है अपनी आंतरिक शक्ति से—अपने को भीतर से मजबूत करना ही पहला काम है।

—ताजुद्दीन अहमद

बांगला देश सरकार में सबसे व्यस्त व्यक्ति हैं प्रधानमंत्री (अब योजना वित्त एवं राजस्वमंत्री) ताजुद्दीन अहमद। उनसे दुआ सलाम तो दो-तीन बार

बंगभवन में हुआ, पर भेंटवार्ता के लिए समय, पाँच दिनों की चेष्टा के बावजूद नहीं मिल सका। उनके निजी सचिव फारुख अजीज साहब ने मुझसे कहा, "उन्हें नहाने, खाने, सोने का समय नहीं मिल पा रहा है, मैं चाहता हूँ कि आपको समय दूँ, पर कैसे दूँ बताइए ?" मैंने कहा, "उन्होंने स्वयं मुझसे कहा है कि वे मुझे समय देंगे, आप यदि समय नहीं दे पाते, तो मैं खुद ही उनसे मिल लूँगा।" अजीज साहब ने मुस्कराते हुए कहा, "विश यू गुड लक !"

१ जनवरी, १९७२ की रात के साढ़े आठ बजे बंगभवन में मैं प्रधानमंत्री के कक्ष के सामने चहलकदमी कर रहा था। दरवाजा खुला, तो सज्जन बाहर निकले, मैं ताव से भीतर घुस गया अर्दली को लगा कि काम गैर-कानूनी हो रहा है। वह 'सर' 'सर' कहता हुआ मेरे पीछे आया, किंतु भीतर बैठे थे, मुल्ला जलालुद्दीन अहमद एम० एन० ए०, अरब राष्ट्रों के लिए बांगला देश सरकार के विशेष प्रतिनिधि। मुझे देखते ही वे बोले, 'शास्त्री जी, आइए, बताइए आज क्या-क्या किया आपने ?' अर्दली अदब से सलाम कर वापस लौट गया और शास्त्री जी मुल्ला जलालुद्दीत के पास जा विराजे मेरे सौभाग्य से वहाँ दो विशिष्ट व्यक्ति और थे, जिनसे मैं कलकत्ता स्थित बांगला देश मिशन में तीन बार मिल चुका था, एक थे बांगला देश सरकार के विदेश सचिव श्री अबुल फतह और दूसरे थे श्री अमीरु इस्लाम, एम० एन० ए० मेरी गोटी लाल हो गयी और गपशप का दौर चलने लगा। मालूम हुआ कि प्रधानमंत्री भीतरी कक्ष में कुछ आवश्यक परामर्श कर रहे हैं विदेशमंत्री से। उसके बाद वे यहीं आयेंगे और इसी गोष्ठी में बैठ कर समागत व्यक्तियों से बातचीत करेंगे। उसी समय मैं भी उनसे प्रश्न पूछ सकूंगा। मैंने सोचा, चलो कुछ नहीं से यही अच्छा !

कुछ देर बाद प्रधानमंत्री ताजुद्दीन अहमद आये और समागतों से सामूहिक रूप से ही बातचीत करते रहे। बहुतों को बहुत कुछ कहना था, पर एक तो मैं भारतीय था, दूसरे, अमीरुल इस्लाम साहब ने मेरा परिचय कराते समय मुक्तियुद्ध के सहयोगी के रूप में कलकत्ता विश्वविद्यालय बांगला देश सहायक समिति की, धर्मयुग की और मेरी काफी प्रशंसा कर दी, जिसके फलस्वरूप वे मेरी ओर ज्यादा मुखातिब रहे।

मैंने पहला ही सवाल पूछा, "मेरे देश में और विदेशों में भी बांगला देश के विरुद्ध सबसे बड़ा अपप्रचार यही किया जा रहा है कि बाँगला देश में बिहारी मुसलमानों का कत्लेआम हुआ है और होगा। क्या यह सच है ?"

वे बोले, "यह सरासर झूठ है। हम लोगों को बदनाम करने के लिए। भारत में सांमप्रदायिक झगड़े करवाने के लिए तथा पाकिस्तानी मुसलमानों को जोश दिलाने के लिए यहिया खाँ के गोएबेल्स सदृश प्रचार तंत्र ने इस झूठे हौवे को खड़ा करने की कोशिश की थी और भुट्टो तथा उनके समर्थक उसी का ढोल पीटते चले जा रहे हैं। न २५ मार्च के पहले, न १६ दिसम्बर के बाद ही बांगला देश में कही भी बिहारियों के कत्लेआम जैसी कोई वारदात हुई है। इक्के-दुक्के प्रतिशोधमूलक कांडों की बात मैं नहीं कहता। आप स्वयं ढाका के मीरपुर, मुहम्मदपुर जैसे बिहारी मुसलमानों के इलाकों में जा कर वहाँ के बाशिन्दों की स्थिति देख सकते हैं।"

मैंने कहा, "हाँ, मैं उन इलाकों में जा चुका हूँ और वहाँ की सामान्य स्थिति, खुली हुई दूकानें, चलते हुए कामकाज आदि देख आया हूँ। कत्लेआम जैसी कोई वारदात नहीं हुई है, यह भी वहाँ के लोगों ने मुझे बताया है। पर फिर भी यह लगता है कि उनके मन में दहशत है। क्या आप बतायेंगे कि आपकी समझ में ऐसा क्यों है और इसे कैसे दूर किया जा सकता है?"

वे बोले, "इसका ऐतिहासिक कारण है। पहले तो यही समझ लीजिए कि यहां विहारी शब्द का अर्थ बिहार का मूल निवासी ही नहीं है। भारत के विभाजन के बाद बिहार, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश तथा अन्यान्य क्षेत्रों से भी बहुत से उर्दूभाषी मुसलमान यहां आये। इनमें बिहार वासियों की संख्या सबसे अधिक थी, अतः इन्हें बिहारी कहा जाने लगा। पाकिस्तानी शासकों, मुख्यतः पंजाबियों की दृष्टि में बंगाली नीची जाति के मुसलमान थे, अतः शासित होने योग्य ही थे...एक शब्द में कहा जाये, तो दूसरे दर्जे के नागरिक थे। पंजाबी शासकों ने इन बिहारियों को विभ्रांत कर रखा था कि वे भी शासक वर्ग के हैं, बंगालियों से भिन्न हैं, उर्दू बोलने के कारण उनका दर्जा ऊँचा है। दुर्भाग्य से बहुसंख्यक बिहारी उनके मायाजाल में फँस गये और अपने हितों को बंगालियों के साथ न जोड़ कर पंजाबियों के साथ जोड़ते रहे और इसके बदले में कुछ विशेष सुविधाएँ पाते रहे। इस मुक्तियुद्ध में भी वर्ग के रूप में उन्होंने पाकिस्तानियों का ही साथ दिया। फलतः सामान्य बंगालियों के मन में उनके प्रति रोष होना स्वाभाविक ही है। अपने अन्याय-मूलक विगत आचरण के कारण ही बिहारियों के मन में डर है। पर अब वे अपनी गलती समझ गये हैं। मैं आज ही बिना किसी अनुरक्षक (एस्कॉर्ट) के निरस्त्र ही उनके मुहल्लों में गया था, मैंने उनके नेताओं से बातचीत की और उन्हें आश्वस्त किया कि वे बांगला देश को अपना देश समझें, भले उर्दू

बोलते रहें। शेख मुजीब ने और हम सबने बार-बार यह वचन दिया है कि बांगला देश के प्रति निष्ठावान सभी नागरिकों के जान-माल की रक्षा की जायेगी, उन्हें उन्नति का समान अवसर दिया जायेगा। हम आज भी इस पर दृढ़ हैं और आगे भी रहेंगे। मेरा विश्वास है कि बिहारी अपना रवैया बदलेंगे और बांगला देश में सद्भावपूर्वक रहेंगे।

प्रश्न : भारत जानेवाले शरणार्थियों की संपत्ति को पाकिस्तानी सरकार ने शत्रु संपत्ति घोषित कर उसे नीलाम तक करवा दिया है तथा इसी तरह बहुतेरे मुकदमों में इकतरफा डिग्रियाँ दे कर भारत प्रवासी शरणार्थियों के हितों को हानि पहुँचायी है। अब, जब शरणार्थी लौट रहे हैं, तो उनकी संपत्ति उन्हें वापस दिलाने के लिये आपकी सरकार क्या करेगी ?

उत्तर : हम लोगों ने मई, १९७१ में ही सरकारी तौर पर यह घोषित कर दिया था कि २५ मार्च के बाद यहिया सरकार ने जो कानून बनाये हैं, जो दंडमूलक कदम उठाये हैं या इकतरफा डिग्रियाँ दी हैं, सब रद्द समझी जायेंगी। अतः शरणार्थियों को अपनी संपत्ति वापस पाने में कोई कानूनी रुकावट नहीं है। व्यावहारिक असुविधाओं को दूर करने के लिए कड़े निर्देश स्थानीय अधिकारियों को दिए गये हैं। यदि कोई व्यक्ति इसके बावजूद शरणार्थी संपत्ति को नहीं लौटाता, तो उसे दंड दिया जायेगा।

प्रश्न : बदर वाहिनी का आजकल भी बड़ा आतंक है। इनके वीभत्स खूनी हमलों के कारण १४-१५ दिसम्बर को ढाका में १५० से ऊपर बुद्धिजीवियों का बध हुआ। इनको दबाने के लिए कड़ा कदम उठाने की माँग जनता कर रही है। क्या आप स्थिति स्पष्ट करेंगे ?

उत्तर : जाते-जाते बर्बर पाकिस्तानी हमारे लिये यह विष-बेल बो गये हैं। अल बदर या बदर वाहिनी जमायते इस्लामी का खूनी कातिल दस्ता है, जिसे पाकिस्तानी फौज ने शस्त्रास्त्रों से सज्जित किया, उनके लिए कोष जुटाया, वाहनों की सुविधा दी। इन्होंने बांगला देश को पंगु बनाने के लिए बड़ी संख्या में हमारे बुद्धजीवियों की हत्या की है, सांप्रदायिक जहर फैला कर हिंदू भाइयों पर जुल्म किया है, मंदिरों को अपवित्र किया है। हम जड़-मूल इस बदर वाहिनी को नेस्तनाबूत कर देने के लिये दृढ़प्रतिज्ञ हैं। हमने तमाम सांप्रदायिक राजनीतिक दलों और उनके सैनिक संगठनों पर प्रतिबंध लगा दिया है। सैकड़ों की संख्या में पाकिस्तानी अनुचरों को गिरफ्तार किया है। हमारे मंत्रिमंडल में पूर्ण मतैक्य है। असल में कुछ विदेशी शक्तियाँ

चाहती हैं कि हमारे बीच फूट पड़े और उन्हें हमारे मामलों में टाँग अड़ाने का मौका मिले। हम उन्हें ऐसा सुयोग देने के लिए कत्तई तैयार नहीं हैं। हमारी एकता ही हमारी सबसे बड़ी शक्ति है।

मैं उस आत्मविश्वासी, कर्मठ, दूरदर्शी जननेता की साफ दो टूक बातों से बहुत प्रभावित हुआ। अपनी जड़ों को मजबूत करके ही कोई वृक्ष आकाश की ओर उठ सकता है। देश बड़ा होता है अपनी आंतरिक शक्ति से, विदेशी प्रचारों से नहीं। अतः अपने को भीतर से मजबूत करना ही पहला काम है।

उठते हुए उन्होंने मुझसे हाथ मिला कर कहा, "भारत और बांगला देश का पारस्परिक बंधुत्व दृढ़तर होता जाये, इसके लिए मैं भारतीय बुद्धिजीवियों और पत्रकारों के विशेष सहयोग की कामना करता हूँ। भारत-बांगला मैत्री चिरजीवी हो!"

२४.

क्रांति के अग्रदूत बांगला देश के बुद्धिजीवियों के बीच

पाकिस्तानी संत्रास से मुक्त ढाका के बुद्धिजीवियों के बारे में सोचते-सोचते मुझे गुलमर्ग की याद आ रही है। गुलमर्ग का अर्थ है फूल का मैदान। कश्मीर की यह प्यारी सैरगाह वसंत से शरद तक अपनी घास में फूलों को लजाती है, किंतु सर्दियों में इस पर बर्फ की तह-पर-तह जमती चली जाती है और चारों तरफ मौत की जड़ता और सफेदी के अलावा कुछ नजर नहीं आता। संत्रास के दमघोंट वातावरण ने इसी प्रकार ढाका के निवासियों··· विशेषतः बुद्धिजीवियों को करीब-करीब जड़ीभूत यंत्रमानव-सा बना दिया था जीवन का स्पंदन सुन पड़ता था मुक्तियोद्धाओं के बमों के धड़ाकों में ही! पर फिर चारों तरफ छायी हुई उदासी, लाचारी, गुलामी की जिंदगी की बेहयाई, परत-दर-परत जमती जाती थी और मौत का सन्नाटा उन पर हावी हो जाता था। १६ दिसम्बर '७१ को आजादी का सूरज चमका और उसी के साथ फिर जीवन की···सर्जना की हलचल दूने वेग से शुरू हुई। मेरा सौभाग्य है कि मुझे दिसम्बर '७१ के अंतिम सप्ताह में और फिर फरवरी के मध्य में ढाका जाने का और वहाँ के बुद्धिजीवियों से मिलने-जुलने का सुअवसर मिला। दिसम्बर में बांगला देश के बुद्धिजीवी नरकभोग की अनुभूति से उबरने का प्रयास कर रहे थे किंतु फरवरी तक वे पुनः सृजन की राह पर विश्वासपूर्वक चलने लग गये थे।

× ×

२८ दिसम्बर '७१! बांगला एकेडेमी! एकेडेमी के परिचालक डॉ० कबीर चौधरी के चेहरे पर शोक की गहरी छाया है, वे अकाल वृद्ध-से लग रहे हैं। उनके सगे छोटे भाई डॉ० मुनीर चौधरी ढाका विश्वविद्यालय के बांगला विभाग के अध्यक्ष थे। बर्बरों ने १५ दिसम्बर को···स्वाधीनता के ठीक एक दिन पहले उनकी हत्या कर दी थी। सांत्वना देने के मेरे प्रयास से वे फूट पड़े···आज देश को मुनीर की बहुत आवश्यकता थी। नाटक के लिए वह

पागल था, दुनिया के जिस-जिस देश में वह गया नाटक के शिल्प और विकास क्रम को समझता-परखता रहा। कहता रहा। स्वतंत्र बांगला देश के रंगमंच और नाट्य साहित्य को विकसित करने में मैं अपनी पूरी शक्ति लगा दूँगा, पर पराधीनता के पटाक्षेप के साथ-ही-साथ उसके जीवन का भी पटाक्षेप हो गया। इतना कहते-कहते कबीर साहब का गला रुँध गया''हम लोग कुछ देर चुपचाप बैठे रहे।

बातचीत फिर डॉ० चौधरी ने ही शुरू की। वे बोले, आप लोग युद्ध के बाहरी चिह्नों को ही देख सकते हैं परन्तु जिस नारकीय, शंकाग्रस्त, अरक्षित स्थिति में हम लोग पिछले दस महीनों में जीते रहे हैं, उसका अनुमान भी आप नहीं कर सकते। २५ मार्च के बाद हम लोग जीवित प्रेतों की तरह चलते-फिरते रहे हैं। घर से निकलते समय विदा ले कर ही निकलते थे''' कौन जाने फिर घर लौटना संभव हो या नहीं! लगातार अरक्षित स्थिति में रहना, लगातार भयातुर रहना, लगातार प्रियजनों का वियोग सहते रहना कितना भयंकर हो सकता है, आप सोच भी नहीं सकते। अब वह सब एक भीषण दुःस्वप्न-सा लगता है। किंतु कैसे उसे दुःस्वप्न कहूँ? उसमें लगे आघात कितने वास्तविक हैं, कितने मर्मभेदी!

आतंक का एक उदाहरण दूँ। अंग्रेजी विभाग के रीडर डॉ० ज्योतिर्मय गुह ठाकुरता की हत्या इन नर-पिशाचों ने २५ मार्च को ही कर दी थी। वे मेरे परम मित्र थे। इसी खूनी राज के समय मेरी एक पुस्तक प्रकाशित हुई। उसे मैं उन्हें समर्पित करना चाहता था किंतु डरता था कि इससे मुझ पर उनकी आगे से ही वक्र दृष्टि वक्रतर न हो जाये। अतः मैंने कुछ गूढ़, कुछ स्पष्ट भाषा में समर्पण लिखा, जिसकी अंतिम पंक्तियाँ थीं, "आज तुम हो परलोक में। किंतु स्मृति ने तुम्हें संजो रखा है। एक उज्ज्वल, अनिर्वाण, ज्योतिर्मय, शिखा की तरह।" कैसा अत्याचारी राज था वह, जिसमें अपने निहत बंधु को पुस्तक समर्पित करने का साहस आदमी नहीं कर पाता था।

मैं बहुत धार्मिक व्यक्ति नहीं हूँ। नियमित नमाज वगैरह नहीं पढ़ता। किंतु कुछ मूल्यों पर विश्वास करता हूँ। मुझ पर बार-बार दबाव डाला गया कि मैं पाक समर्थक एक अपील पर सही कर दूँ, पर मैंने सही नहीं की। सोचा, आखिर इतना गिर कर जी कर भी क्या करूँगा!

हम कल्पना भी नहीं कर पाते थे कि इतनी जल्दी हम आजाद हो जायेंगे। भारत और इंदिरा गांधी के हम लोग बहुत कृतज्ञ हैं! इंदिरा जी तो इतिहास में अतुलनीय महिला हैं। विजय के बाद प्रसारित उनका संक्षिप्त

भाषण तो लिंकन के प्रसिद्ध भाषण के साथ तुलनीय है। कितना संयम, स्नेह और संकल्प-बल उसमें निहित है वे सचमुच श्रद्धेय हैं।

× × ×

२८ दिसंबर ७१ ! ढाका प्रेस क्लब। मैं पत्रकार मित्रों से बात कर रहा था कि शेख मुजीब का प्रेस सचिव बादशाह वहाँ आया। वह उसी दिन कलकत्ते से आया था नौ महीनों के बाद ! उसे देखते ही प्रसन्नता का ज्वार आ गया। लोगों ने उसे गले ही नहीं लगाया, अपने कंधों पर बिठा कर उसका जुलूस-सा निकाल दिया। उस चहल-पहल भरे प्रसन्न परिवेश में एक व्यक्ति शोक और दुःख की प्रतिमा-सा बना एक कोने में चुपचाप बैठा रहा। वह था जहीर रायहान···विख्यात फिल्म निर्देशक। उसके बड़े भाई सुप्रसिद्ध साहित्यकार शहीदुल्ला कैसर की हत्या भी १५ दिसंबर को कर दी गयी थी। गमगीन होते हुए भी उसका चेहरा सख्त था। हत्यारी बदरवाहिनी से बदला लेने के लिए वह दृढ़प्रतिज्ञ था। कलकत्ते में मैं उससे दो-तीन बार मिल चुका था। मैं उसके पास गया। उसने मुझे पहिचान कर नमस्कार किया और कहा, "अभी मैं बात करने की मनःस्थिति में नहीं हूँ। फिर किसी दिन बातें करेंगे।"

फिर किसी दिन हम लोग नहीं मिल सके। ढाका के अपने पहले संक्षिप्त प्रवास में मैं उसे फिर खोज नहीं पाया। दूसरी बार डॉ० धर्मवीर भारती और श्री बालकृष्ण के साथ जब ८ फरवरी' ७२ को ढाका पहुँचा तो ३० जनवरी' ७२ को मीरपुर में उसका भी कत्ल हो चुका था।

जहीर रायहान का अपराध यही था कि उसने बुद्धिजीवियों की हत्याओं के षड्यंत्र का पर्दाफाश करने के लिए 'तथ्यानुसंधान समिति बनायी थी और पिछले दस-ग्यारह महीनों में बुद्धिजीवियों के साथ जो कुछ घटा उसका प्रामाणिक लेखा-जोखा वह एकत्र कर रहा था। ३० जनवरी को वह मीरपुर गया था अपने बड़े भाई शहीदुल्ला कैसर का पता लगाने···न जाने क्यों उसको यह विश्वास हो गया था कि कैसर को कुछ लोगों ने मीरपुर में बंदी बना रखा है···और वह खुद भी नहीं लौट सका। शहीदुल्ला कैसर बांगला देश के प्रतिष्ठित कथाकार थे। उनकी कृतियाँ 'सारेंग बौर' औ 'संशप्तक' जनवादी चेतना को उकसाने वाले श्रेष्ठ उपन्यास के रूप में स्वीकृत हैं। जहीर रायहान को कुल ३५ वर्ष की अवस्था में १८ फिल्मों के निर्देशन का तथा 'हाजार बछरों परे' 'आर एक फाल्गुन' जैसे कई लोकप्रिय उपन्यासों के लेखन का

गौरव प्राप्त था। बांगला देश के मुक्तियुद्ध पर 'स्टॉपजेनोसाइड एस्टेट इज बार्न' 'लिबरेशन फाइटर्स, जैसे वृत्तचित्रों का निर्माण कर उसने पाक वर्बरता तथा स्वतंत्रता के लिए बंगाली दृढ़ता और संग्रामशीलता का अखंडनीय प्रमाण प्रस्तुत किया है। जहीर के मित्र और सहयोगी फिल्मनिर्देशक आलमगीर कबीर ने बताया कि अपने वृत्तचित्रों के निर्माण के समय जहीर ने धर्मयुग के बांगला देश विशेषांक में प्रकाशित चित्रों का भी उपयोग किया था। भारती जी और बालकृष्ण जी के साथ मैं उस शोक संतप्त किंतु वीर परिवार के प्रति श्रद्धा एवं समवेदना प्रकट करने गया था।

× ×

३० दिसंबर '७१ ! जातीय ग्रंथकेंद्र ढाका में बुद्धिजीवियों की हत्या के अपराधियों को गिरफ्तार कर दंड देने की माँग करने के लिए सभा हो रही है। सभापति कबीर चौधरी हैं। सरदार जैनुद्दीन, अबू जफर शमसुद्दीन आदि के व्याख्यानों के बाद बोलने के लिए खड़े हुए बांगला उन्नयन बोर्ड के परिचालक डॉ० अशरफ सिद्दीकी। अभी वे दो शब्द भी नहीं बोल पाये होंगे कि तरुण साहित्यकार अमीनुल इस्लाम और हुमायूँ कबीर ने चिल्ला-चिल्ला कर कहना शुरू कर दिया कि आप बैठ जाइए···रवींद्रनाथ के बहिष्कार का समर्थन करनेवाले की बात हम लोग नहीं सुनेंगे। डॉ० सिद्दीकी को बैठ जाना पड़ा। रेडियो से रवींद्र संगीत के बहिष्कार की सरकारी नीति के पक्ष में वक्तव्य देने के उनके अपराध को तरुणों ने क्षमा नहीं किया था।

तरुण लेखक मोती शरफुद्दीन ने अपने जोशीले भाषण में कहा कि बुद्धिजीवी होने मात्र से कोई हमारी श्रद्धा का पात्र नहीं हो जाता। बहुत से बुद्धिजीवी पाकिस्तान की दलाली कर ऊँची-ऊँची गद्दियों पर जा बैठे हैं। हम उनसे घृणा करते हैं। बांगला देश में स्वाधीनता की चेतना जगानेवाले, धर्म का प्रयोग मानवता के विरुद्ध, जनस्वार्थ के विरुद्ध न हो इसकी चेतावनी देने वाले बुद्धिजीवी ही हमारी श्रद्धा के पात्र हैं। ऐसे ही बुद्धिजीवियों में जो अग्रगण्य थे, वे ही शहीद हुए हैं। उनकी परंपरा कायम रख कर ही हम लोग उनको सच्ची श्रद्धांजलि दे सकते हैं। हमारी माँग है कि बुद्धिजीवियों के हत्यारों को कड़े-से-कड़ा दंड दिया जाये।

नये बांगला देश की चेतना के प्रति मेरी आस्था और दृढ़ हो गयी।

× × ×

३१ दिसम्बर '७१ ! बेगम सूफिया कमाल... ! छोटा-सा बंगला, सामने छोटा-सा लॉन, तीन-चार बिल्लियाँ, दो-तीन कुत्ते... कुछ पक्षी, महादेवी जी की तरह ही वात्सल्यमयी, मैं उनकी लड़कियों—सुलताना और सईदा से बांगला देश अस्पताल में मिला था। मुक्ति युद्ध के दौरान शालदा नदी—मंदभाग क्षेत्र में। वे और उनके पति कमालुद्दीन अहमद साहब धर्मयुग में अपनी बिटिया की तस्वीर देख कर बहुत प्रसन्न हुए...बेगम अपनी तस्वीर देख कर अचकचा गयीं, 'यह कहां मिल गयी आपको ?' मैंने बताया कि आपकी कविता का अनुवाद भी छपा है इसमें, धर्मयुग उन्हें अपना लगने लगा। मालूम नहीं किस बात पर मैं अपनी आदत के अनुसार हाका मार कर हंस पड़ा-पति-पत्नि दोनों मुझे देखते रहे। मेरे थमने पर कमाल साहब बोले—"नौ महीनों से इस घर में कोई नहीं हँसा था, हम लोगों की हँसी दब गयी थी। आज बहुत अच्छा दिन है, आपके साथ हम लोग भी हँस रहे हैं।" घर के बच्चे अभी तक नहीं लौटे हैं। दोनों लड़कियाँ कलकत्ते में हैं और बड़का कहीं और। इसलिए घर सूना-सूना लग रहा था।

बेगम कमाल ने मेरे अनुरोध पर युद्धकाल में लिखित अपनी कुछ कविताएँ सुनायी। मुक्ति के बाद उन्होंने तब तक दो ही कविताएँ लिखी थीं। 'मोर जादू देर समाधि परे' ('मेरे लालों की समाधि पर',—शहीद मुक्ति योद्धाओं के प्रति) तथा 'श्रीमती इंदिरा गांधी के प्रति', मैंने उनकी दो-तीन अन्य कविताओं के साथ ये दोनों कविताएँ भी ले ली, हिंदी में अनूदित करने के लिए।

मुक्तियुद्ध में कमाल परिवार ने पूरी तरह हिस्सा लिया। बेगम सूफिया कमाल की हत्या की आशंका बराबर बनी रही। कमाल साहब धार्मिक भावापन्न हैं। पर संकीर्णता उन्हें छू नहीं गयी है। उन्होंने कहा धर्म का नाम ले-ले कर खोटा...छोटा काम करने वालों ने अल्लाह को भी छोटा बना दिया है। बेगम का कहना था, श्रीमती इंदिरा गांधी ने माँ की तरह बांगला देशवासियों का उद्धार किया है और सोवियत रूस ने बंधु की तरह हम लोगों की सहायता की है।

१० फरवरी '७२ को डॉ० भारती तथा बालकृष्ण जी के साथ दूबारा कमाल परिवार से मिलने का सौभाग्य मिला। तब तव सुलताना, सईदा वापस आ चुकी थीं। परिवार में रौनक आ गयी थी। नये बांगला देश की कर्म-मुखरता का आभास अब घरों में भी मिलने लगा था।

धर्मयुग ने बांगला देश की आजादी की लड़ाई का पूरी शक्ति से समर्थन किया, इसके लिए बेगम सूफिया कमाल ने भारती जी के प्रति कृतज्ञता व्यक्त

की। पारिवारिक आंतरिकता के बीच ही भारती जी के अनुरोध पर बेगम ने अपनी कविता सुनायी 'मोर जादू देर समाधि परे' कविता पढ़ते-पढ़ते उनका गला रुंध गया और आँखें भींग गयीं।

मैंने नयी कविताओं के बारे में पूछा तो कमाल साहब बोले : सामने ही हम लोगों शहीद दिवस है—२१ फरवरी। उस दिन बांगला देश में जितनी पत्रिकाएँ हैं सबके विशेषांक निकलेंगे ......सबको बेगम सूफिया कमाल की कविता चाहिए। ये किसी को 'ना' नहीं कर सकतीं, किसी को नाराज नहीं कर सकतीं। अतः उन्होंने ढेरों कविताएँ लिखी हैं, पर सच्ची बात यह है कि ज्यादा लिखने के कारण इन कविताओं का स्तर गिर गया है। आप तो जानते ही हैं कि मैं इनका किरानी हूँ। इनकी कविताओं की स्वच्छ प्रतिलिपि तो मैं ही करता हूँ। अतः यह बात अधिकार पूर्वक कर रहा हूँ आपको इनकी अच्छी नयी कविताएँ फिर भिजवा दूँगा। इस मीठे परिहास से सभी लोग हँस पड़े।

× × ×

३१ दिसंबर '७१ ! पलाशवाड़ी···बांगला देश के सबसे प्रतिष्ठित और बयोवृद्ध कवि जसीमुद्दीन का निवास ! सामने छोटा-सा बगीचा, कई रंग के गुलाबों की मोहक क्यारियाँ। बैठक में नटराज की मूर्ति, रवींद्रनाथ की तस्वीर।

जसीमुद्दीन रवींद्र के अनुयायी माने जाते हैं, उनकी अपनी विशेषता है रवींद्र शैली में लोकगीतों···लोकभावों का पुट मिला देना। जसीमुद्दीन साहब सत्तर के आस-पास के होंगे, पर बातचीत करने में अब भी बहुत रस लेते हैं। एक घंटे से ऊपर वे बातें करते रहे। गोष्ठीप्रिय बंगाली यानी चलती भाषा में पक्के अड्डेबाज !

उनकी राय में बांगला देश में ठीक-ठीक राजनीति समझने वाला एक ही आदमी है मौ० भासानी। शेख मुजीब तो उनके सामने बच्चे हैं। भासानी ने मुजीब से कहा था, 'छात्रों को लेकर तुम राजनीति करते हो, अच्छी बात है, पर अपने देश में सच्ची राजनीति किसानों को लेकर ही हो सकती है।' और फिर उन्होंने शुरू किये भासानी के क़िस्से। एक नमूना दे ही दूँ।

एक बार अमरीकी राजदूत मौ० भासानी से मिले। वे पाकिस्तान को दी जानेवाली अमरीकी सहायता का बखान करने लगे, इतना रुपया, इतना अन्न, इतना शस्त्रास्त्र अमरीका ने पाकिस्तान को दिया है आदि-आदि। मौलाना

का उत्तर था, "हुज़ूर, जब आप लोग 'एड' नहीं देते थे, तब हम लोग दिन में तीन बार खाते थे, जब से आप लोग 'एड' देने लगे तब से हम लोगों को एक ही बार खाना मिलता है। मेहरबानी कर के आप 'एड' देना बंद कर दीजिए।"

मैंने बातचीत को मुक्ति युद्ध की ओर मोड़ना चाहा और पूछा कि पाकिस्तानियों ने आपको तो कोई कष्ट नहीं पहुँचाया। वे बोले, सारे देश को उन्होंने भून दिया तो मुझे कैसे छोड़ते ! पर हाँ, मेरी हत्या नहीं की, शायद यह सोच कर कि मैं अंतर्राष्ट्रीय ख्याति का व्यक्ति हूँ। दूसरे देश भी मेरे बारे में पूछताछ करेंगे। मेरा लड़का खुर्शीद अहमद मुक्तिवाहिनी में था, उसके एक हाथ में चोट भी लगी है।

मैंने इस काल में लिखी कविताएँ सुनाने का अनुरोध किया तो उन्होंने दो कविताएँ सुनायीं। 'गीतारा कोथाय गेलो' एवं 'गीतारा कोथाय जाबे !' फिर 'गीता' नाम की व्याख्या करते हुए बोले, कई बार लोग मुझे सभापति बना कर मुफस्सिल भी ले जाते हैं। असल में ये वे लोग होते हैं, जिनकी कविता या वक्तृता लोग सुनना नहीं चाहते। लोग मेरे लिए आते हैं, मुझे तो सबसे अंत में बोलना रहता है। इसलिए लोग बैठे रहते हैं। बीच में वे लोग अपनी रचनाएँ सुनाते रहते हैं। ऐसी एक सभा में मैंने एक सुन्दर-सी छोटी सी लड़की देखी थी। वह हिन्दू थी, उसका नाम था गीता ! हिन्दुओं को बांगला देश से निकाल देने के पाकिस्तानी कुचक्र के कारण उन पर बहुत अत्याचार हुआ। उस समय बार-बार मुझे उस लड़की की याद आती रही। मैंने उसी के माध्यम से इस अत्याचार के प्रतिवाद में ये कविताएँ लिखीं। मैं धर्म के अधिकार पर आदमी आदमी में भेद नहीं करता। बांगला का एक लोकगीत है :—

नानान वरण गाभीरे, एकइ बरण दूध आम्री जगत भरमिया देखलाम, एकइ मायेर पूत।

(नाना रंगों की गायों का दूध एक ही रंग का होता है। मैंने सारा संसार घूम कर देख लिया है, सभी एक ही माँ के बेटे हैं।)

और फिर वे कलकत्ते की याद में डूब गये। स्व० डॉ० दिनेश सेन और डॉ० श्यामाप्रसाद मुखर्जी की तारीफ करते वे थकते नहीं थे। उन्होंने बताया, इन्हीं दोनों की कृपा और सहायता से मैं आगे बढ़ सका। 'श्यामाप्रसाद बाबू व्यक्तिगत भावे कम्युनल छिलेन ना। एटा आमी जोर गलाय बलते पारि।'

(श्यामाप्रसाद बाबू व्यक्तिगत रूप से सांप्रदायिक नहीं थे, यह मैं जोर दे कर कह सकता हूँ ।) अपने हिन्दी साहित्यिक मित्रों पं० बनारसीदास चतुर्वेदी एवं श्री रामधारी सिंह दिनकर के बारे में भी वे पूछ-ताछ करते रहे ।

पूरी बातचीत में 'सम' तभी जरा-सा बिगड़ा, जब मैंने उनसे बांगला देश के नये कवियों-लेखकों के बारे में कुछ जानना चाहा । उन्होंने कहा, "किसका नाम वताऊँ ? वे लोग क्या जो लिखते हैं ? मेरी समझ में ही कुछ नहीं आता !"

१ जनवरी '७२. दैनिक बांगला देश का दफ्तर । बांगला देश के नये कवियों में सबसे विख्यात एवं मान्य शम्सुर्रहमान इसी पत्र के संपादकीय विभाग में हैं । मझोला कद, गोरा रङ्ग, चेहरे पर अद्भुत भोलापन । (चढ़ती चालीसी के कवि के लिए सचमुच प्रशंसनीय !) बेतरतीबी से उलटे कढ़े रूखे बाल···जिनमें बहुतेरी सफेद धारियाँ पड़ चुकी हैं । चश्मे के भीतर के झांकनेवाली स्नेहपूर्ण आँखें ! पैजामा-कुर्ता और सफेद शाल में शम्सुर्रहमान मुझे बहुत अच्छे लगे । कल आ कर मैं उन्हें धमका गया था कि मैं आज बिना कविता सुने उन्हें नहीं छोड़ूंगा । आज वे अपनी डायरी लाये थे । कविता सुनाने के नाम पर, फिर भी वे नर्वस से हो गये । अपने अन्य सहयोगियों से उन्होंने अनुरोध किया कि वे लोग बाहर चले जायें ताकि मैं इत्मीनान से कविता सुना सकूं । उनके मित्र उनकी लजीली प्रकृति को जानते थे । अतः उन्होंने बुरा नहीं माना । शम्सुर्रहमान ने मुझे पाँच-छह कविताएँ सुनायीं । संत्रास की और उसके बावजूद मुक्ति संघर्ष के प्रति गंभीर आस्था की इतनी मार्मिक कविताएँ मैंने आज तक नहीं पढ़ीं, सुनीं । बिना किसी कारीगरी के भावों की सच्चाई और अभिव्यक्ति की आत्मीय कोमलता ने उन कविताओं को बेहद प्रभावपूर्ण बना दिया है । मैंने उनसे चार कविताएँ मांग लीं ।

शम्सुर्रहमान को बांगला देश छात्र यूनियन और संस्कृति संसद के एक कार्यक्रम में भाग लेने जाना था । मैं भी उनके साथ हो लिया । कवि फजल शहाबुद्दीन तथा अन्य मित्र भी वहीं चल रहे थे । रास्ते में मैंने कहा कि कल मैं जसीमुद्दीन साहब से मिल आया, वे आप लोगों पर बहुत खुश नहीं लगे । फजल ने कहा, "हम लोगों ने उनकी कविता पढ़ना बंद कर दिया है । अपनी उम्र और पुरानी कविताओं के आधार पर वे चाहे जितना यश बाहर बटोर

लें, हमें कोई आपत्ति नहीं है। आपत्ति वहीं होती है, जब वे बाहर जा कर बांगला देश की कविता की गलत तस्वीर पेश करते हैं। आपको मालूम है, कलकत्ते की एक सभा में उन्होंने जिस नये कवि की बहुत तारीफ की, वह मूलतः सस्ते जासूसी उपन्यासों का लेखक है।"

तो पीढ़ियों का द्वंद्व यहाँ भी बाकायदा बरकरार है।

× × ×

११ फरवरी' ७२। भारती जी के साथ फिर शम्सुर्रहमान से मिला। इसी बीच किसी बात को सह न पाने के कारण वे दैनिक बांगला का सात साल पुराना काम छोड़ कर 'गण-बांगला' में चले आये थे। कोमलता के बावजूद वे दब्बू नहीं हैं। यह जान कर मुझे बड़ी खुशी हुई। भारती जी के प्रस्ताव पर हम लोग दफ्तर से उठ कर रमना पार्क चले आये। 'हरी घास पर क्षण भर' बैठने के लिए।

खुली जगह, हरियाली और ढलती धूप बहुत अच्छी लग रही थी। बातचीत शम्सुर्रहमान की कविता से ही शुरू हुई। रवींद्रनाथ पर अपार श्रद्धा होते हुए भी उनके आदर्श कवि जीवनानंददास हैं। मार्क्सवाद से प्रभावित होने पर भी वे कविता को नारा बनाने के पक्ष में नहीं हैं। इसीलिए कठमुल्ले प्रगतिवादियों से उनकी नहीं पटती है। इस स्तर पर भारती जी और वे एकमत थे। दोनों ने एक दूसरे को बताया कि नारेबाज प्रगतिवादी कविता का दौर हिन्दी-बंगला से गुजर चुका है और कविता के क्षेत्र में उसका दान नगण्य रहा है। भारती जी के अनुरोध पर शम्सुर्रहमान ने 'बंदी शिविर थेके' कविता सुनायी। स्वाधीनता के प्रति ऐसी ललक और स्वतंत्र अभिव्यक्ति के ऊपर लगे अंकुश के कारण ऐसी पीड़ा उस कविता में उभरी है कि पाठक या श्रोता में वह अनायास संक्रमित हो उठती है। शम्सुर्रहमान के अनुरोध पर भारती जी ने अपनी प्रसिद्ध कविता 'टूटा हुआ पहिया' सुनायी। शम्सुर्रहमान हिंदी बखूबी समझ लेते हैं। उन्होंने सामान्य व्यक्ति की लघुता में निहित गरिमा को रेखांकित करनेवाली उस कविता को खूब सराहा। भाग-दौड़ के बीच वह भावमयी संध्या हम लोगों को भरपूर ताजगी दे गयी।

× ×

पहली बार जब ढाका गया था तब ढाका विश्वविद्यालय बंद था। पाकिस्तानियों द्वारा की गयी तोड़फोड़ की मरम्मत हो रही थीं। कुछ होस्टलों और भवनों में भारतीय सेना अस्थायी रूप से टिकी हुई थी। उस समय तक बदरवाहिनी का ऐसा आतंक था कि बहुतेरे प्राध्यापक अपने घर में रात को नहीं सोया करते थे। डॉ० मुहम्मद कुदरते खुदा, डॉ० एनामुल हक से मिलने की मेरी चेष्टा इसीलिए संभव नहीं हो सकी थी। उस बार केवल इस्लामी इतिहास और संस्कृत के प्राध्यापक डॉ० सिराजुल इस्लाम से जम कर बात-चीत हुई। वे भी जहीर रायहान वाली 'तथ्यानुसंधान समिति के सदस्य थे। उन्हें गिरफ्तार कर पश्चिमी पाकिस्तान ले जाया गया था। उन्होंने बताया कि ऐसे प्रमाण मिले हैं कि ढाका के २,५०० बुद्धिजीवियों की तालिका बनाई गई थी। जिनकी हत्या करने का निर्णय हो चुका था। यदि मित्रवाहिनी ढाका को मुक्त कराने में इतनी जल्दी सफल नहीं होती, तो शायद आप से बातें करने के लिए मैं जिंदा नहीं बचता।

यह बात मुझसे कई बुद्धिजीवियों ने कही। ढाका विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार नूरुद्दीन अहमद साहब भी मुझसे यही बोले थे कि खुदा का शुक्र है कि १६ दिसंबर को ढाका आजाद हो गया, नहीं तो हम में से कब कौन हत्यारों का शिकार हो जाता, कुछ नहीं कहा जा सकता था। १४-१५ दिसंबर को हुई बुद्धिजीवियों की हत्याओं के आघात से उस समय तक वे लोग उबर नहीं सके थे। छात्र भी तब तक मुक्तिवाहिनी और मुजीबवाहिनी या अन्य वाहिनियों के आदेश में थे। हाथों में शस्त्र हों तो किताबें बड़ी सूखी-सूखी लगती हैं। फिर भी छात्र नेता अब्दुर रब और नूरुल इस्लाम ने मुझे बताया था कि इस बार शिक्षा के क्षेत्र में हम लोग सांप्रदायिकता को बर्दाश्त नहीं करेंगे। पाकिस्तान के तावेदार वाइसचांसलरों और प्रोफेसरों को अपनी करनी का फल भोगना पड़ेगा। ढाका विश्वविद्यालय के फौजी शासन के समय बने वाइसचांसलर डॉ० सज्जाद हुसेन तथा डॉ० काजीदीन मुहम्मद (बंगला), डॉ० मोहर अली (इतिहास), डॉ० हसन जमान (राजनीति) जैसे कई प्रोफेसर गिरफ्तार हो चुके हैं। ऐसे और भी बहुत से बुद्धिजीवी हैं, जिन्होंने पैसों के लिए अपने को बेच दिया था। अब उनको पता चलेगा कि देश के साथ विश्वासघात करने वालों का क्या परिणाम होता है? छात्रों में सांप्रदायिकता फैलानेवाली संस्थाओं के जहरीले दाँत हमने उखाड़ दिये हैं। इस्लाम के नाम पर अब हम लोगों को बरगलाया नहीं जा सकता।

× × ×

८ फरवरी' ७२ ! आज ही ढाका विश्वविद्यालय खुला है। किंतु आज शहीदों के सम्मान में शोक-सभा करने के बाद कक्षाएँ स्थगित हो गयीं। हम लोग जब वहाँ पहुँचे तो अधिकांश छात्र जा चुके थे।

हम लोग रजिस्ट्रार नूरुद्दीन अहमद साहब से मिले। वे पहले से बहुत प्रसन्न और आत्मविश्वासी लग रहे थे। पुनर्निर्माण की योजना के बारे में वे उत्साह से हम लोगों को बताते रहे। स्वाधीनता के बाद शिक्षा पर सबसे अधिक जोर दिया जायेगा, ताकि नयी पीढ़ी नये मूल्यों को स्वीकार कर सच-मुच 'सोने का बंगाल' बना सके।

विश्वविद्यालय के भिन्न-भिन्न भवनों में शहीदों की स्मृति में छोटी छोटी मीनारें बनायी गयी थीं। चारों तरफ अनेकानेक चित्रित बड़े-बड़े पोस्टर लगाये गये थे जिनमें ध्वंस से उठते हुए संग्रामी बंगाल की चेतना अंकित थी। कुछ फेस्टून थे जिनमें बड़े-बड़े अक्षरों में लिखे हुए थे प्रेरक संकल्प-वाक्य। प्रस्तुत हैं कुछ के हिंदी अनुवाद। आओ विध्वस्त सोने के बंगाल को नयी चेतना से फिर से गढ़ें ! शहीदों की परंपरा ही संबल है हमारी यात्रा का ! यह देश मेरा गर्व है, यह मिट्टी मेरे लिए सोना है ! मृत्यु भय को तुच्छ कर जो स्वाधीनता छीन लाये, उन्हें हमारा सलाम ! ध्वंस और मृत्यु के बीच गूंजे जीवन का जयगान !

जिस वटवृक्ष के नीचे छात्रों-प्राध्यापकों की बैठकें हुआ करती थीं, उसे पाक फौज ने काट डाला था। ठीक उसी जगह नया वटवृक्ष रोपा गया था, जिसमें कोंपलें आ गयी थीं। पाकिस्तानी अतीत से अपने को काटने का एक छोटा-सा प्रमाण विद्यार्थियों ने दिया है। विश्वविद्यालय के छात्रावासों, कालेजों का नाम बदल कर ! जिन्ना हॉल का नया नाम है सूर्यसेन हॉल। इकबाल हॉल को अब वे सर्जेन जहूरुल हक हॉल कहते हैं। जिन्ना कॉलेज की नयी संज्ञा है शहीद तीतूमीर कॉलेज ! सूर्यसेन प्रख्यात क्रांतिकारी नेता थे, जिन्होंने अंग्रेजों के समय चटगाँव के शस्त्रागार को लूटा था। सर्जेन जहूरुल हक अवामी लीग के प्रसिद्ध नेता थे, जिन्हें शेख मुजीब के साथ अगरतल्ला षडयंत्र केस में पकड़ा गया था और बाद में जिनकी हत्या कर दी गयी थी। तीतूमीर सिराजुद्दौला के पहले के एक देशभक्त थे, जिन्हें अंग्रेजों ने मार डाला था। संकीर्ण सांप्रदायिकता से उभर कर राष्ट्रीयता, समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता और जनतंत्र के चार आधारों पर बांगला देश के पुनर्गठन की सफलता नयी शिक्षा पर ही निर्भर करती है।

८ फरवरी '७२ की शाम को ही हम लोग शिक्षा सचिव डॉ० अजीजुर्रहमान मलिक साहब से मिले। ये पहले चटगाँव विश्वविद्यालय के वाइस-चांसलर थे और बांगला देश की स्वाधीनता के लिए भारत और यूरोप, अमरीका में भी इन नौ महीनों में कठोर श्रम करते रहे।

डॉ० मलिक ने बताया कि "शिक्षा में सांप्रदायिकता का विरोध मैं आरंभ से करता रहा। भिन्न-भिन्न विश्वविद्यालयों में कार्य करते समय मैंने ध्यान रखा था कि छात्रावासों को हिंदू, मुसलमान सबके लिए खोल दिया जाये। राजशाही और चटगाँव में तो ऐसे छात्रावासों में गोमांस न बनाने का आदेश भी मैंने दिया था। गत वर्ष चटगाँव विश्वविद्यालय के भिन्न-भिन्न कालेजों, छात्रावासों में ६ स्थानों पर सरस्वती पूजा हुई थी। आपको यह जान कर सुखद आश्चर्य होगा कि इनमें कई पंडालों में मुसलमान विद्यार्थी स्वयंसेवकों का काम कर रहे थे। मैं अपने हिंदू विद्यार्थियों के आमंत्रण को स्वीकार कर छहों स्थानों पर दर्शन करने गया था।

"मैं चेष्टा कर रहा हूँ कि शिक्षा के माध्यम से विद्यार्थियों में यह भाव उत्पन्न कर सकूं कि संस्कृति धर्म से बड़ी है। अलग-अलग धर्मों को मानते हुए भी हम एक संस्कृति का विकास कर सकते हैं। बांगला देश में सांप्रदायिकता को पनपाने में बहुत बड़ा हाथ उर्दू मदरसों का रहा है, जिनमें पिछड़े युग की अवैज्ञानिक चेतना को अत्यधिक महत्त्व दिया जाता है। इन्हीं मदरसों के छात्रों में से जमाते इस्लामी, निजामे इस्लामी जैसी संस्थाओं को कार्यकर्ता मिलते हैं। अल बदर, रजाकारवाहिनी के अधिकांश हत्यारे इन्हीं मदरसों की उपज हैं। मैं उनका आधुनिकीकरण करने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ हूँ। बांगला देश को आधुनिक, वैज्ञानिक, उदार, मानवतावादी शिक्षा की आवश्यकता है जिसके आधार पर हम सुखी, समृद्ध, शोषणमुक्त आधुनिक समाज की रचना कर सकें।"

मेरा विश्वास है, बांगला देश के जिम्मेदार बुद्धिजीवी समय की चुनौती को स्वीकारने में समर्थ होंगे। मेरी शुभकामना है—

खिलें, खिलें, फूल खिलें शोकाहत हृदयों में।

२५.

बांगला देश के उर्दू भाषी अबंगाली

इतिहास कभी-कभी अजीब व्यंग्य पेश करता है। ऐसा ही एक व्यंग्य एक तारीख को ले कर उसने पेश किया है। २१ फरवरी बांगला देश में शहीद दिवस के रूप में मनायी जाती है; क्योंकि विभाजन के कुछ साल बाद ही १९५२ की २१ फरवरी को उर्दू और सांप्रदायिक संस्कृति लादने के खिलाफ, अपनी बंगला भाषा और हिंदू मुसलमानों की सम्मिलित थाती बंगला संस्कृति को बचाने के लिए बंगाली युवा मुस्लिम छात्र पाकिस्तानी गोलियों के शिकार हुए थे। उनकी पुण्यस्मृति में बंगाल के हिंदू-मुस्लिम छात्र अध्यापक, पत्रकार, राजनीतिज्ञ सभी के लिए २१ फरवरी की यादगार-'शहीद मीनार' उनकी क्रांति-कामना की प्रतीक बन गयी थी। यही कारण था कि २५ मार्च '७१ की काल-रात्रि की पाकिस्तानी तोपों ने शहीद मीनार को गोले मार-मार कर ध्वस्त कर दिया था, और यही कारण था कि स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद समूचे बांगला देश ने २१ फरवरी का शहीद पर्व बड़ी ही धूमधाम से मनाया और उस दिन नयी शहीद मीनार की नींव रखी गयी।

लेकिन भाषा, संस्कृति, प्रजातंत्र, धर्मनिरपेक्षता की उस क्रांति-भावना पर इस बार गोलाबारी तो नहीं, पर छींटाकशी जरूर की गयी, पटना के एक विचित्र से सम्मेलन में जो 'बिहारी बचाओ के नारे के साथ आयोजित किया गया। उसमें कुछ ऐसे नेता शामिल थे, जिनकी राजनीति का रंग सांप्रदायिक रहा है, कुछ ऐसे विरोधी दलों के नेता भी शामिल थे जो धर्मनिरपेक्षता की शपथ खाते हैं, लेकिन जो चुनाव में एक वर्ग में तात्कालिक लोकप्रियता हासिल करना चाहते थे। इतिहास का विचित्र व्यंग्य यह था कि यह सम्मेलन उसी २१ फरवरी को हुआ, जब बांगला देश की जनता धर्मनिरपेक्षता और भाषाक्रांति के इन शहीदों को श्रद्धांजलि अर्पित कर रही थी। अनेक बार इस देश के अनेक (सत्तारूढ़ और विरोधी दोनों) दलों ने तात्कालिक लोक-

प्रियता प्राप्त करने के लिए जातीय और सांप्रदायिक सवालों पर समझौते किये हैं, लेकिन इंदिरा जी को यह श्रेय तो देना ही होगा कि इस बार उन्होंने स्पष्ट कहा कि चाहे कोई मेरे दल को वोट दे या न दे, लेकिन बांगला देश के इन पाकिस्तान-समर्थक अबंगाली मुस्लिमों को भारत में ला कर बसाने की योजना को वे प्रोत्साहन नहीं देंगी।

यह सवाल वास्तव में है क्या ? बांगला देश में पाकिस्तानी फौजों के समर्पण के बाद ही कुछ अमरीकी अखबारों में अकस्मात् यह खबरें छपने लगी थीं कि मुक्तिवाहिनी के लोग विहारी मुसलमानों पर अत्याचा कर रहे हैं और भारत के कुछ अंग्रेजी अखबार (सब नहीं !) जिनमें न अपनी कोई दृष्टि है, न इतना साहस कि वे खतरा मोल ले कर खुद जा कर सचाई को देखने और जाँचने की कोशिश करें उन्हीं खबरों और उन्हीं विदेशी एजेंसियों द्वारा प्रचाररित चित्रों को छाप-छाप कर पालतू तोते की तरह दोहरा-दोहरा कर अपनी अकल के विलायती दिवालियेपन का सबूत देने लगे। सच पूछिए तो इस सारे क्रांति अभियान के दौरान इन कुछ अमरीकी अखबारों और उनके पिछलग्गुओं की सारी भूमिका अजीब औंधी भूमिका रही है और भारत की बांगला देश समर्थक नीति तथा मुक्तिवाहिनी को जब भी बदनाम करने की कोई भी दलील इन्हें मिली है ये अपनी हरकतों से बाज नहीं आये हैं। पहले इनकी निगाह में कोई मुक्तिवाहिनी थी ही नहीं जो बांगला देश के अंदर लड़ रही हो, फिर जब वह साबित हो गया तब इनको यह दुख व्यापने लगा कि मक्तिवाहिनी में नक्सली और चीन-समर्थक तत्त्व घुसने लगे हैं। फिर इन्होंने इसका रोना रोया कि मुक्तिवाहिनी वाले अन्न के जहाज नष्ट करने का क्रूर कार्य कर रहे हैं और जब इस अरण्य रोदन के बावजूद मुक्तिवाहिनी और मित्रवाहिनी विजयी हो गयी, तब इन्होंने अबंगाली मुस्लिमों पर अत्याचार की बात उठानी शुरू की।

स्वाधीन पत्रकारिता के जहाँ कुछ अधिकार होते हैं, वहीं उसके कुछ कर्त्तव्य भी होते हैं। उसका एक प्रमुख कर्त्तव्य यह है कि ऐसे महत्त्वपूर्ण सवालों पर तटस्थ दृष्टि से स्वयं जाँच-परख कर तथ्यों को पाठकों के समक्ष रखें। अपने सीमित साधनों के बावजूद इस सारे संदर्भ में धर्मयुग ने अपने कर्त्तव्य का विनम्रतापूर्वक पालन किया, स्वयं घटना-स्थल पर जा कर जो देखा उसे पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया और इस प्रकार क्रांति-विरोधी प्रचार के अंतर्राष्ट्रीय षड्यंत्रों की तोतारटंत पत्रकारिता के समक्ष एक साहसी सत्यनिष्ठ पत्रकारिता को उजागर किया और अपने जागरूक पाठकों और अपनी

क्रांति-प्राण भारतीय भाषा-चेतना के प्रति अपने कर्त्तव्य निर्वाह का विनम्र प्रयास किया।

जाहिर है कि इस विवादास्पद प्रश्न पर भी हम तभी लिखना चाहते थे, जब स्वयं धर्मयुग घटना-स्थल पर जा कर वस्तुस्थिति को अपने ग्राप देख सके। यह काम ग्रासान नहीं था। फरवरी के दूसरे सप्ताह में ढाका न केवल अप्रत्याशित ठंड से ठिठुर रहा था, वरन एक समूचे शहर की चेतना एक ग्रातंक से भी ठिठुरी हुई थी, वह ग्रातंक था जहाँ-तहाँ छिपे पाकिस्तानी समर्थक तत्त्वों के सशस्त्र उपद्रवों का आतंक दिन में धूप निकलते ही ढाका जीवित हो जाता था। एक बरस बाद शहीदों की याद से बोझिल, लेकिन विश्वविद्यालय पुनः खुलने के उत्साह से भरे छात्र, दफ्तरों में पुनः राजकाज संभालने जाते हुए सचिव, फिर से रोजी-रोजगार जमाते हुए व्यापारी और दुकानदार, पाक गोलाबारी से ध्वस्त दीवारों और छतों वाले कार्यालयों में फिर अखबार छापते हुए पत्रकार, सैलानी और बाहर से आये अतिथि, घर लौटते हुए शरणार्थी, लेकिन दिन ढलते-ढलते यह धूमधाम गायब हो जाती थी, सड़कों पर सन्नाटा छा जाता था और दूसरे दिन अखबारों में खबरें होती थीं कि कहीं दो शसस्त्र व्यक्तियों ने घर लौटते हुए किसी अकेले बंगाली नागरिक को लूट लिया, अवामी लीग या नेशनल अवामी पार्टी के किसी कार्यकर्त्ता पर ग्राक्रमण हुआ, या मोहम्मदपुर के पास किसी गिरोह ने लारी रोक कर सामान लूट लिया।

मीरपुर, मोहम्मदपुर ये दो नाम बार-बार दोहराये जाते थे, इन मुहल्लों में पाकिस्तानी समर्थक अबंगाली उर्दू-भाषी मुसलमान बसे हुए थे, जिनमें न केवल पाकिस्तानी सेनाओं ने समर्पण के पहले शस्त्र बाँटे थे, वरन् साल भर से वे उन्हें अलबदर, अलशम्स जैसे अर्द्धसैनिक संगठनों में भर्ती करके प्रशिक्षित करते रहे थे, इनके अतिरिक्त उन्होंने ईस्ट पाकिस्तान सिविल आर्म्डफोर्स भी गठित किया था, जिसकी ढाका शाखा के अधिकतर सदस्य उन्हीं मुहल्लों के थे, उनके पास सारे अस्त्र-शस्त्र हैं, यही नहीं वरन् पाकिस्तानी फौज के अनेक अधिकारी और सैनिक जिन्होंने भारतीय सेना को आत्मसमर्पण नहीं किया, इन मुहल्लों में, इन्हीं लोगों के घरों में छिपे हुए हैं और उनके पास रिकाँयल-लेस गनें और राकेट-लांचर तक हैं, ऐसी बातें ढाका में बराबर सुनी जाती थीं, वे इसीलिए आक्रमणात्मक होते जा रहे हैं और जनवरी में उन्होंने कई ऐसी वारदातें कीं, जिनको सुन कर मन काँप उठता है, इन बस्तियों में बसे हुए बंगालियों का कत्लेग्राम तो हुआ ही, पर सबसे ताजी घटना जो बहुचर्चित

थी वह प्रख्यात फिल्म निर्देशक जहीर रायहान की हत्या, जो कुछ ही दिनों पहले हुई थी, ३० जनवरी को, इसी मीरपुर मुहल्ले में। सारे ढाका पर जहीर रायहान की हत्या का शोक छाया हुआ था, और जब उनके घर का पता लगाते हुए हम उस घर के सूने आंगन में पहुँचे···लेकिन वह कथा बाद में···।

पच्चीस वर्ष की पृष्ठभूमि

लेकिन आखिर स्वतंत्रता के बाद भी हथियारों और हत्याओं का खेल खेलने वाले ये लोग हैं कौन ? क्यों इन्होंने सारे देश की क्रांति-भावना के विरुद्ध जा कर टिक्का खाँ का साथ दिया, क्यों उन्होंने राव फरमान अली की उस बुद्धिजीवियों की हत्या वाली साजिश में साथ दिया और वह भी विजय के ठीक एक दिन पहले ? इनका उद्गम और इतिहास क्या है ? वास्तव में मीरपुर या इस प्रकार की तमाम बस्तियों में जो हुआ, वह किसी क्षणिक आवेश या भयभीत आत्मरक्षा की आक्रामक घटनाएँ नहीं थीं, इनके पीछे २५ वर्ष की जहरीली पाकिस्तानी राजनीति है जिसने इनके भाग्य के साथ एक निर्मम खेल किया और उसमें ये इस कदर उलझते गये कि इनका सारा वर्तमान और भविष्य अंधकारमय बनता गया।

अब से पच्चीस वर्ष पहले जब पाकिस्तान के निर्माण की योजना बनी, तब पूर्वी बंगाल के मुसलमानों का पूरा सक्रिय सहयोग था। अतः देश-विभाजन के बाद जब शरणार्थी मुसलमान पूर्वी बंगाल में आये, तो बंगाली मुसलमानों ने ललक कर उनका स्वागत किया। उन्हें अपने घरों में बसाया। व्यापार और नौकरी में उन्हें प्राथमिकता दी। यह भी उल्लेखनीय है कि पाकिस्तान में लगे शरणार्थी कर में सबसे ज्यादा हिस्सा पूर्वी बंगाल ने ही अदा किया और खुशी-खुशी अदा किया। चूंकि पूर्वी बंगाल में आनेवाले शरणार्थियों में सबसे अधिक संख्या बिहारियों की थी, अतः वहाँ के निवासियों ने समस्त गैरबंगाली, उर्दू-भाषी मुसलमानों को बिहारी कहना शुरू कर दिया, भले ही वे देश के किसी भी प्रदेश से क्यों न आये हों ?

लेकिन विभाजन के बाद ही पाकिस्तान के कर्णधारों की नीति का एक-दूसरा रूप उजागर होने लगा। पाकिस्तान का प्रधानमंत्री कोई भी क्यों न रहा हो ? उसकी वास्तविक सत्ता शक्तिशाली पंजाबी गुट के हाथ में थी और है। सेना, नागरिक प्रशासन और उद्योग-धंधों पर उसका करीब-करीब एक-छत्र अधिकार था और है। उसने यह निर्णय किया कि पाकिस्तानी पंजाब में

केवल पंजाबी शरणार्थी ही बसाये जायेंगे, शेष शरणार्थी सिंध में तथा पूर्वी बंगाल में विभिन्न स्थानों पर बसें, ताकि इन शरणार्थियों के माध्यम से ही इन दोनों प्रदेशों को नियंत्रित रखा जा सके।

पूर्वी बंगाल में जो उर्दू-भाषी शरणार्थी बसे, उनकी मनोवृत्ति उग्र सांप्रदायिक, संकीर्ण एवं श्रेष्ठतावादी थी। उन्होंने सांप्रदायिक आधार पर भारत के बँटवारे की माँग की थी और बँटवारे के बाद भारत छोड़ कर गये थे। उन्होंने वहाँ आते ही यह माँग शुरू की कि बंगाली हिंदुओं को निकाल कर उनके घर, दूकान, जमीन, दफ्तर, कामकाज उन्हें दिये जायें। मुस्लिम लीगी प्रशासन और मनोभाव के कारण शुरू-शुरू में अनेक बंगाली मुसलमानों ने उनकी इस माँग का समर्थन किया। पूर्वी बंगाल से समय-समय पर बड़े पैमाने पर हिंदुओं के निष्कासन की पाकिस्तानी नीति को क्रियान्वित करने में बंगाल में आ कर बसे ये अबंगाली ही सबसे आगे रहे। उर्दू-भाषी और पाकिस्तानी मुजाहिद होने के अभिमान के कारण हिंदुओं की बंगला भाषा बोलने वाले और हिंदुओं की बहुत-सी रीति-नीति माननेवाले अबंगाली मुसलमानों को हेय दृष्टि से देखने की प्रवृत्ति भी उनमें पनपती गयी। इनकी इस प्रवृत्ति को और उकसाया पश्चिमी पाकिस्तानी शासकों ने।

१९५२ में हुए बंगला को राजभाषा बनाने के आंदोलन के समय इन अबंगालियों ने पूरी तरह पश्चिम पाकिस्तानियों का साथ दिया। पाकिस्तानी शासकों द्वारा बंगाली-बिहारी वैमनस्य का बीज उसी समय रोपा गया। बंगाली मुसलमानों के साथ घुलने-मिलने, उनसे शादी-विवाह का सबंध करने, उनकी भाषा सीखने, उनकी संस्कृति को स्वीकारने की जगह इन्होंने अलग रहने, उर्दू भाषा को बंगालियों पर थोपने तथा बंगाली-पश्चिमी पाकिस्तानी द्वन्द्व में पश्चिमी पाकिस्तानियों का साथ देने का निर्णय किया। उनकी इस नीति से उन्हें तात्कालिक लाभ बहुत हुआ। उन्हें छोटे व्यापारों के परमिट-लाइसेंस, रेलवे तथा अन्य सरकारी नौकरियाँ, पश्चिमी पाकिस्तानियों के उद्योग-धंधों में निजी नौकरियाँ, रहने के लिए अच्छी बस्तियाँ मिलीं। वे वर्ग के रूप में बंगालियों के सभी आंदोलनों से दूर रहे। बंगालियों के गणतांत्रिक प्रगतिशील आंदोलनों को गोली-डंडे से कुचलने के अतिरिक्त उसे बौद्धिक एवं भावात्मक स्तर पर कमजोर बनाने का एक ही उपाय पाकिस्तानी शासकों को ज्ञात था, सांप्रदायिक दंगे करवा कर 'इस्लाम खतरे में है' का नारा लगाना। १९६२ ई० में ढाका विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों ने ढाका में अयूब विरोधी उग्र प्रदर्शन किये। उन्होंने इन प्रदर्शनों का प्रचंड विरोध किया और पश्चिम पाकिस्तानी

शासकों का साथ दिया। पाकिस्तानी शासकों और व्यापारियों ने इन्हें और शह दी! १९६४ की जनवरी में ढाका, नारायणगंज, बरीसाल में बड़े पैमाने पर सांप्रदायिक दंगे हुए। पहली बार बंगाली मुसलमानों ने इन दंगों के लिए खुलेआम इन अबंगाली मुस्लिमों को दोषी ठहराया। बंगाली हिंदुओं की रक्षा के लिए कई बंगाली मुसलमानों ने प्राणोत्सर्ग तक किये जिनमें नजरुल एकेडेमी, ढाका के मंत्री अमीर हुसेन चौधरी का नाम अग्रगण्य है। (इन दंगों की महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक रिपोर्ट शांकुतल सेन ने दी थी, जिसे हम ९ मई '७१ के बांगला देश विशेषांक में छाप चुके हैं)। इसी समय दंगों के खिलाफ बंगाली मुस्लिम बुद्धिजीवियों ने 'पूर्व वंग रुखिया दांड़ाओ' (पूर्व वंग रोक कर खड़े हो) शीर्षक परिपत्र प्रकाशित किया, जिस पर जागरूक बंगाली बुद्धिजीवी काजी अतहर हुसेन, अली अख्तर, शहीदुल्ला कैसर आदि ने हस्ताक्षर किये थे। इसी परिपत्र के कारण इन बुद्धिजीवियों पर पाकिस्तान सरकार ने मुकदमा भी चलाया। कटुता और बढ़ी।

१९७० के चुनाव में बिहारियों ने 'इस्लामपसंद' दलों अर्थात् मुस्लिम लीग, जमाते इस्लामी, निजामे इस्लामी जैसी पार्टियों को वोट दिये थे। शेख मुजीब की जीत से ये अबंगाली अपने पिछले इतिहास के कारण भयभीत हुए। तो शेख साहब ने खुले दिल से कहा, 'जो बंगाल में रहता है वह बंगाली है और भाषा या धर्म के कारण किसी को उसके अधिकार से वंचित नहीं किया जायेगा।" किंतु फिर भी उर्दू भाषी मुसलमान बांगला देश के स्वायत्त शासन की माँग का विरोध करते रहे और २५ मार्च के बाद तो वे खुल्लमखुल्ला पाकिस्तानी फौज के अग्रिम दस्ते के रूप में काम करने लगे। अल्पसंख्यकों और अवामी लीग के कार्यकर्त्ताओं की हत्या करना, फौज को उनके गाँव-घर दिखाना, बलात्कार करना जैसे जघन्य अपराध उनकी दृष्टि में कर्त्तव्य बन गये थे। ईस्ट पाकिस्तान राइफल्स के विद्रोही हो कर मुक्तिवाहिनी में मिल जाने के बाद पाकिस्तानियों ने ईस्ट पाकिस्तान सिविल आर्म्ड फोर्स (ई० पी० सी० ए० फ०) का गठन किया था। उसमें १२,०० स्थानीय अबंगाली मुस्लिम थे और प० पाक से लाये गए ६,००० पठान तथा बलूच। इसके अलावा रजाकार, बदरवाहिनी आदि पाकिस्तान समर्थक अर्द्ध सैनिक संगठनों में भी उनकी बहुत बड़ी संख्या थी। हत्या, लूट, बलात्कार, अग्निकांड आदि के लिए पाकिस्तानी शासकों ने अपनी फौज से भी अधिक उपयोग इन्हीं संगठनों का किया था। स्वभावतः बंगाली मुसलमानों के मन में इनके प्रति तीव्र घृणा और आतंक के अलावा और कोई भाव नहीं रह गया।

१६ दिसंबर को मुक्तिवाहिनी और मित्रवाहिनी के संयुक्त प्रयास से बांगला देश स्वाधीन हुआ। पाकिस्तानियों ने आत्मसमर्पण के पहले इन बस्तियों में बड़े पैमाने पर हथियार बाँटे। उनके अदूरदर्शी नेता तब भी यही सोचते रहे कि स्वाधीन बांगला देश में वे लोग पाकिस्तानी द्वीपों की तरह अपनी-अपनी बस्तियों में बने रह सकेंगे।

यह उल्लेखनीय है कि बांगला देश के कुछ विशेष स्थानों पर बड़ी-बड़ी बिहारी बस्तियाँ बना कर पाकिस्तानी शासकों ने उन्हें स्थानीय जनों से अलग रखने की चेष्टा की थी। ढाका के दो उपनगर मुहम्मदपुर और मीरपुर, सैयदपुर (रंगपुर जिला), ईश्वर दी (पबना), पहाड़तली (चटगाँव) और खुलना बिहारियों के बड़े-बड़े गढ़ हैं। स्वाधीनता के बाद इन सब क्षेत्रों की विशेष सुरक्षा का प्रबंध किया गया था। धर्मयुग का विशेष प्रतिनिधि २८ दिसंबर से ३ जनवरी के दौरान कई बार मीरपुर, मुहम्मदपुर गया था और उसने वहाँ का जीवन सामान्य पाया था। तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री ताजुद्दीन अहमद ने धर्मयुग प्रतिनिधि को बताया था कि मैं बिहारी नेताओं से मिल रहा हूँ और चेष्टा कर रहा हूँ कि वे स्वेच्छया अपने हथियार जमा करा दें। पर उन्होंने अपने हथियार जमा नहीं किये। शेख मुजीब ने शासन सूत्र सँभालने के तुरंत बाद यह अपील की कि बांगला देश की सेना एवं पुलिस के अतिरिक्त जिन दलों, समूहों या व्यक्तियों के पास आग्नेयास्त्र हैं, वे उन्हें जमा करा दें। कादिरवाहिनी, मुजीबवाहिनी तथा मुक्ति-योद्धाओं ने स्थान-स्थान पर अपने-अपने शस्त्रास्त्र बांगला देश सरकार को सौंप दिये। किंतु बार-बार अनुरोध करने पर और शस्त्र जमा करने की तारीख बढ़ाने पर भी सामूहिक रूप में इन बस्तियों के लोगों ने अपने हथियार जमा नहीं किये। बंगमुक्ति के बाद छः सप्ताहों तक हथियार अपने पास रख पाने के कारण शायद उनका हौसला बढ़ गया था और वे समझने लगे थे कि वे लोग अपने हथियार छिपाये रख सकते हैं। बांगला देश सरकार को भिन्न-भिन्न सूत्रों से यह भी पता चलता रहा कि मीरपुर में बहुत से कुख्यात गुंडे और हत्यारे छिपे हुए हैं, अनेक पाकिस्तानी सैनिक भी। सरकार को यह भी सूचना मिली कि स्वाधीनता के बाद भी अनेकानेक बंगालियों की हत्या मीरपुर में हुई है। बांगला देश के प्रख्यात सिनेमा निर्देशक तथा साहित्यकार जहीर रायहान का कत्ल भी मीरपुर में ही सुबह-सुबह ३० जनवरी १९७२ को हुआ। इस स्थिति में सरकारी कारवाई करना लाजिमी हो गया।

दिन के १० बजे के करीब बांगला देश की पुलिस मीरपुर में जाँच-पड़ताल करने के लिए गई। सुरक्षा की दृष्टि से उसके साथ बांगला देश सेना की

एक टुकड़ी भी थी। तलाशी में ढेरों हथियार मिले। अभी तलाशी चल ही रही थी कि बिहारियों ने १२ बजे के करीब ऑटोमेटिक राइफलों, मशीन-गनों से गोलियाँ चलाना शुरू कर दिया। बांगला देश की पुलिस और फौज के बहुतेरे जवान और अफसर मारे गये। आत्मरक्षा की दृष्टि से तब बांगला देश की सेना को भी प्रत्युत्तर देना पड़ा। मीरपुर की इस घटना से विशेषतः जहीर रायहान के कत्ल की खबर से बंगालियों में बहुत आतंक छा गया था और कुछ वर्गों में उत्तेजना भी। स्वभावतः बांगला देश सेना ने उचित समझा कि शांति की रक्षा के लिए मीरपुर को वह अपने नियंत्रण में ले-ले तथा उसमें अच्छी तरह छान-बीन का छिपे हुए हथियार तथा शत्रु-तत्त्वों का पता लगाये और सुरक्षा और कानून की स्थिति बिगड़ने न दे।

उर्दू अदब से प्यार, उर्दू राजनीति से मतभेद

यह इतिहास और पृष्ठभूमि हमें मिली कहाँ से? ढाका के प्रेस क्लब, विश्वविद्यालय, अखबारी दफ्तरों से ले कर बांगला देश सरकार के अनेक उच्चाधिकारियों से बातें करके, अनेक मुलाकातों में। लेकिन क्या वे लोग एक-पक्षीय चित्र नहीं दे रहे हैं? बात करने वालों में से सभी बंगाली मुस्लिम थे तो क्या उनमें कोई पूर्वाग्रह तो नहीं था इन अबंगाली उर्दूभाषियों के प्रति? हमने पूछा तो एक ने हंस कर कहा, "आप भी अबंगाली हैं, आप भी वही भाषा बोलते हैं, तो क्या आपको हमारे मन में अपने प्रति कोई दुर्भाव लगा? उन्होंने हम पर अन्याचार किया, हमसे अलग बने रहे, हमारी भाषा और संस्कृति का उपहास किया, हिंदू-बंगाली, मुसलमान-बंगाली स्त्रिस्ती-बंगाली और बौद्ध-बंगाली में फूट डालने का जतन किया। उनकी अल बदर ने हमारे बुद्धिजीवियों की हत्या की, उन बातों पर बाहर के अखबार चुप क्यों हैं?"

एक बांगला देश उच्चाधिकारी से भेंट हुई। अलीगढ़ के पढ़े, बहुत नफीस उर्दू घरमें भी बोलने वाले। पचासों वर्ष पहले उनका खानदान बाहर से आ कर यहाँ बस गया था और बंगाल के जीवन में घुलमिल गया था। पूछने पर बोले, "जनाब, आपको मालूम नहीं है कि इन लोगों ने बंगालियों के साथ क्या सलूक किया है? इंसान क्या इंसान के साथ ऐसा सलूक कर सकता है। बंगालियों के मन पर इसका असर छूट जाना लाजिमी है। लेकिन फिर भी बंगालियों ने बहुत जब्त किया है अपने को, वरना कुछ भी हो सकता था।"

एक बांगला देश सेना के उच्चाधिकारी से हमने पूछा, "बांगला देश में कोई उर्दू बोले यह गुनाह तो नहीं?"

वे बोले, "कदापि नहीं, मैं खुद उर्दू अदब की इज्जत करता हूँ। गालिब मेरा प्रिय शायर है। मगर इसके मतलब यह तो नहीं कि मैं टैगोर को नीची निगाह से देखूँ।" मुक्ति युद्ध के दौरान वे पश्चिम पाकिस्तान में थे, वहाँ से छिप कर भाग कर बांगला देश आये थे और उनका सब सामान, किताबें वहीं छूट गयी थीं। उन्होंने खास फरमाइश की कि लौट कर भारत से हम गालिब का दीवान और भारतीय उर्दू शायरों के दीवान उन्हें जरूर भेज दें।

और अब तस्वीर कुछ साफ होती है। तनाव इस कारण नहीं है कि उनकी भाषा उर्दू है या उनका मूल अबंगाली है। तनाव इस कारण है कि वे स्वातंत्र्य युद्ध के खिलाफ विदेशी अत्याचारियों के साथ थे, तनाव इस कारण है कि धर्मनिरपेक्ष बंगाली संस्कृति के खिलाफ सांप्रदायिक स्तर पर उर्दू के द्वारा बांगला भाषा और साहित्य को हीनतर रखना चाहते थे।

लेकिन उनके साथ अब हो क्या रहा है? तस्वीर का जो पहलू यहाँ पूछ-ताछ में आभासित हो रहा है वह सच है, या वह सच है जो बाहर के अनेक अखबारों में प्रचारित हो रहा है। क्या यह सच है कि वे इस कदर उद्धत हैं कि न केवल बंगाली नागरिकों, वरन् बांगला देश की सैनिक टुकड़ियों तक पर आक्रमण कर रहे हैं? या यह सच है कि वे भूखों मारे जा रहे हैं, उनके घर जलाये जा रहे हैं, उनका कत्लेआम हो रहा है?

क्या हम मीरपुर जा कर अपनी आँखों से देख कर खुद जाँच-पड़ताल नहीं कर सकते?

"मीरपुर? आप लोग जायेंगे?" आश्चर्य से आतंक से आँखें फाड़ कर हमारे बंगाली मित्र ने हमें गौर से देखा—"नहीं, आपको मालूम नहीं, उस बस्ती में दिन में भी कोई बंगाली जाने की हिम्मत नहीं कर सकता? फिर आप तो ठहरे भारतीय। आपको तो वे लोग कदापि नहीं छोड़ेंगे। आपको नहीं मालूम जहीर रायहान की उन्होंने कैसे हत्या कर डाली? आप उस परिवार से मिलिये एक पखवारे में उसी परिवार के दोनों दिग्गज उन्होंने मार डाले।"

मृत्युग्रस्त परिवार का वह सूना आँगन

हरेक की जबान पर जहीर रायहान का नाम था। टेढ़ी-मेढ़ी मगर साफ पक्की गलियों के बीच एक दुमंजिला लाल मकान। शहीदुल्ला कैसर (लेखक) और जहीर रायहान (फिल्म निर्देशक) अपने छोटे भाइयों और

परिवार सहित इसी में रहते थे। १९६४ में जब इन अबंगाली मुसलमानों ने सांप्रदायिक दंगे किये और हिंदुओं पर अत्याचार किये तो शहीदुल्ला कैसर ने अन्य लेखकों के साथ एक वक्तव्य निकाल कर इनकी निंदा की थी और बंगाली मुसलमानों को आगाह किया था कि वे बंगाली हिंदुओं की रक्षा करें। उसके बाद से अपने तेजस्वी लेखों और शसक्त उपन्यासों में पाकिस्तानी निरंकुशता और सांप्रदायिक कट्टरता की निर्भीकता पूर्वक आलोचना करते रहे। पाकिस्तानी समर्पण के एक दिन पहले अल बदर के बधिक उन्हें घर से बहाने से बुला ले गये और फिर वे घर नहीं लौटे। बड़े भाई की मृत्यु के बाद से जहीर रायहान बहुत ही व्यथित और उदास रहने लगे थे। इस प्रतिभाशाली फिल्म निर्देशक ने फिल्म माध्यम से जो कुछ किया, वह एक नयी दिशा का सूचक था। विजय के बाद से वे एक समिति के संयोजक थे, जो पाकिस्तानी सेना और अलबदर द्वारा बुद्धिजीवियों के हत्याकांड की सार्वजनिक जाँच कर रही थी। १५-२० दिनों के अन्दर उन्होंने बहुत से तथ्य इकट्ठे कर लिये थे। कहा जाता है कि जनवरी के अंतिम सप्ताह में उन्हें मीरपुर के अंदर से किसी का फोन मिला, जिसमें उनसे कहा गया कि शहीदुल्ला कैसर को मीरपुर में अमुक स्थान में विकलांग विक्षिप्तावस्था में देखा गया है। किसी ने यह भी बताया कि बाद में भी कुछ अपरिचित लोग उनके पास आते-जाते देखे गये। ३० जनवरी को तड़के सुबह वे बांगला देश पुलिस के कुछ लोगों को साथ लेकर अपने भाई की खोज में मीरपुर गये और फिर वापिस न लौटे। सारे ढाका नगर में दो दिन तक बड़ी सनसनी रही। दो दिन बाद एक और बड़ी पुलिस टुकड़ी उनकी खोज में गयी। वहाँ उन पुलिसवालों के क्षत-विक्षत शव मिले। दो-एक मील दूर उनकी चकनाचूर कार भी मिली। लेकिन जहीर रायहान की लाश का भी पता नहीं चला। जब हम उनके घर पहुँचे तो फाटक पर एक बंदूकधारी सिपाही पहरे पर खड़ा था। मालूम हुआ कि बाद में भी परिवार को धमकियाँ दी गयी हैं कि शेष भाई भी जिंदा नहीं छोड़े जायेंगे, क्योंकि इस पाकिस्तान-विरोधी खानदान का वे नामो-निशान मिटा देना चाहते हैं।

उस मकान में बरामदे से बायीं ओर जाने पर बाहरी आँगन है। छोटा, पक्का, लेकिन मकान की ऊँचाई की वजह से कुछ-कुछ धुंधला और गहरा-सा। बगल में बैठक, पुराने ढंग के सोफे और जीती हुई शील्डें और सर्टिफिकेट। उनके बीच जर्द दुबला चेहरा छोटे भाई का, एक युवती की गोद में रोता हुआ बच्चा, शहीदुल्ला कैसर का। उनकी माँ, जिसके दो जवान जहीन बेटे एक माह के अन्दर छिन गये तथा शहीदुल्ला कैसर और जहीर रायहान की

पत्नियाँ रो-रो कर होश खो चुकी हैं। बच्चों की देखभाल के लिए बहिन-बहनोई ढाका आ गये हैं। बहनोई हाथ जोड़ कर कहते हैं, उनके पुराने चित्रों के चित्र उतार लें, लेकिन माँ से या बउदी से कुछ भी न पूछें, वे इस हालत में नहीं हैं।

घर पर छायी हुई मौत का अंधेरा कितना गहरा होता यह उस घर में पता लगता है।

संयुक्त राष्ट्र संघ की ओर से एक अंतर्राष्ट्रीय पर्यवेक्षक यह देखने के लिए भेजा गया था कि मीरपुर के लोग सुरक्षित हैं या नहीं। उसने तस्दीक किया कि वे सुरक्षित हैं। उन्हें राशन-पानी मिल रहा है। उस आंगन में बरबस यह खयाल आता है कि काश कोई संयुक्तराष्ट्र संघ का पर्यवेक्षक यह भी देख जाता कि जहीर रायहान और शहीदुल्ला कैसर का यह घर सुरक्षित क्यों नहीं रह पाया ?

× ×

बांगला देश सरकार के एक शीर्षस्थ अधिकारी की विशेष अनुमति से हम बांगला देश पुलिस और सेना के उन जवानों से भी मिलते हैं, जो रायहान की खोज में मीरपुर के अंदर गये थे और अब घायल हो कर अस्पतालों में पड़े हैं।

अस्पतालों में जा कर उनसे मिलते हैं, तो पता लगता है कि उन पर जो आक्रमण किया गया था वह पूरी तैयारी के साथ था। भारी शस्त्र थे, ऑटोमैटिक, जिन्हें बिना सैनिक शिक्षण के नहीं चलाया जा सकता। तभी लोगों को संदेह हुआ था कि इन बस्तियों में इन हमलावरों का नेतृत्व कोई सैनिक दिमाग कर रहा है। तो क्या इनके बीच पाकिस्तानी सैनिक सिविलियन पोशाक में छिपे हैं ? जख्मी नायक अब्दुल हक, नायक काजी मुहम्मद, मुहम्मद अली, मनीरुज्जमां इन सभी घायल सैनिकों के मुख पर एक अजीब भाव था। स्वाधीनता के बाद भी बांगला देश की धरती पर ढाका के इतने पास भी इन्हें शत्रु की गोली से घायल होना बदा था।

१२ फरवरी की सुबह। अंत में हमें मीरपुर में जा कर स्वयं जाँच-पड़ताल करने की अनुमति मिल गयी है। अनुमति देते हुए भी जनरल उस्मानी हमारी सुरक्षा के लिए बेहद चिंतित थे। हमारे पुराने मित्र ले० कर्नल खालिद मुशर्रफ ने हेडक्वार्टर से सभी चौकियों पर फोन कर हमारी सुरक्षा की व्यवस्था की और हमारे साथ अनुरक्षक थे युवा कैप्टन अबू बकर।

अपनी एक छोटी-सी गाड़ी में चलते-चलते कैप्टन ने बताया कि २३ मार्च को ही वे गिरफ्तार कर लिये गये थे। ६ मास के बंदी जीवन में पाकिस्तानियों ने उन पर अकथ्य अत्याचार किये थे। घूँसे, लात, थप्पड़, यही नहीं उन्हें उल्टा बाँध कर लटकाया और मर्मस्थानों पर ठोकरें मारीं, फिर भी वे जीवित तो बच गये। कैसर और रायहान का सा दुर्भाग्य तो नहीं हुआ। गाड़ी मीरपुर के पास पहुँच रही थीं।

मीरपुर : पहली झलक

ढाका से तेजगाँव हवाई अड्डे तक जो सड़क जाती है, उसी पर आगे बढ़िए तो नयी स्थापत्यकला की कुछ भव्य लाल इमारतें खाली खड़ी दीखती हैं। यह नयी राजधानी थी जिसकी कल्पना फील्ड मार्शल अयूब ने की थी। उसी के आगे सड़क के बायीं ओर हैं मुहम्मदपुर, मीरपुर की बस्तियाँ। यह योजना अकारण नहीं थी कि नयी राजधानी बंगाली बस्ती से दूर बने और उसके पास जो उपनगर बसाये जायें उनमें केवल यू. पी., बिहार और अन्य प्रांतों से आये उर्दू-भाषी लोगों को बसाया जाय। दोनों उपनगर प्रशस्त और साफ-सुथरे हैं। मुहम्मदपुर में उच्च मध्यवर्ग और उच्च वर्ग तथा मीरपुर में मध्य वर्ग, निम्न मध्य वर्ग तथा निम्न वर्ग की आबादी है। जनसंख्या करीब दो लाख। स्कूल-कालेज सभी उर्दू माध्यम के, बंगला भाषा लगभग बहिष्कृत।

सड़कें वीरान थीं, इक्का-दुक्का लोग दीख रहे थे। मीरपुर में प्रवेश जहाँ से होता है, उस बिंदु पर एक बड़ा-सा शायद ढाक या सेमल का पेड़ लाल फूलों से लदा खड़ा था। सन्नाटे के आलम में धूप में चमकती नंगी पत्र विहीन डालें लाल सुर्ख फूलों से लदी, इसके उस ओर क्या होगा ?

लेकिन मीरपुर में जाने के पहले हमें उस सेक्टर के इंचार्ज मेजर मोइनुल हक चौधरी से मिलना था। छरहरे, लंबे, साँवले, चुस्त अफसर, यही मेजर मोइन उस दिन ३० जनवरी को बांगला देश सैनिक टुकड़ी का नेतृत्व कर रहे थे जिसके घायल जवानों से हम कई दिन पहले मिले थे। उन्होंने बताया कि "बिहारियों ने अचानक चारों तरफ से उस दिन हम लोगों पर गोलियाँ चलानी शुरू कर दी थीं। केवल राइफलें और मशीनगनें ही उनके पास नहीं थीं, २ इंच मोर्टार भी था। जब तक हम जवाब दे सकें, तब तक हमारे बहुतेरे जवान और अफसर भी घायल हो गये, कई मारे गये। उनकी ठीक संख्या अभी नहीं ज्ञात, किंतु आप लोगों से मैं कह सकता हूँ कि वह कम नहीं है।" (बाद में ढाका के समाचार पत्रों में पढ़ा कि करीब १०० बांगला देश सैनिक मारे गये थे।)

मेजर मोइन ने यह भी बताया कि "अब तक तलाशी में १,५०० से उपर राइफलें, ५५ मशीनगनें, एक-दो इंच मोर्टार, १०० से ऊपर हैंडग्रेनेड तथा एक लाख से ऊपर गोलियाँ मिली हैं। हमारा विश्वास है कि इस इलाके में अभी और भी बहुत बड़ी मात्रा में हथियार हैं। इसलिए तलाशी लेने का क्रम जारी है। बहुत से हथियार कब्रगाहों से मिले हैं। बहुत से हथियार तालाबों में फेंक दिये गये हैं। पूरी तलाशी और छानबीन में काफी समय लगेगा।"

उसी दिन मीरपुर से एक पंजाबी पाकिस्तानी सैनिक पकड़ा गया था, जो अभी वहीं था। हम लोगों के अनुरोध पर मेजर ने उसे वहाँ बुलवाया। उसने अपना नाम बताया महमूद अहमद। वह स्यालकोट जिला के भूपाल वाला गाँव का था। मेजर को शक था कि वह पाकिस्तान की १९ सिगनल बटालियन का ,जवान है। मेजर ने जब उसे मीरपुर में देखा, तो वह छिपने की कोशिश कर रहा था। उसे बुला कर पूछा, "तुम रेलवे में काम करते हो ?" "हाँ," उसने कहा, "ट्राली मेमनसिंह में।" जब पूछा, "स्टेशन मास्टर कौन है ?" तब बोला, "मैं रेलवे में काम नहीं करता। मेरा रिश्तेदार १९ सिगनल बैटरी में है।" बस इसी सूचना से उसकी असलियत खुल गयी। हम लोगों के यह पूछने पर कि तुम अब किसे मानते हो ? वह बोला, "पहले पाकिस्तान था तो पाकिस्तान को मानता था, अब बांगला देश है तो बांगला देश को मानता हूँ।" हमारे पूछने पर उसने यह भी कहा कि "मैंने किसी बंगाली को न तो मारा है, न मारे जाते देखा है।"

यह उत्तर मीरपुर के निवासियों का रटा-रटाया उत्तर है। हम लोग कई और लोगों से भी मिले। मौजा शिवपुर सतगमा, जिला गया के मुहम्मद उस्मान, फैजाबाद के मुहम्मद यूसुफ अशरफी, फैजाबाद के चुन्नू मियाँ, गाजीपुर के असगर अली, कलकत्ते के आलमगीर आदि ने भी यही कहा कि "मैंने न किसी बंगाली को मारा है, न मारे जाते देखा है।" "फिर इतनी ठठरियाँ यहाँ से कैसे निकल रहीं हैं ?" पूछने पर वे लोग चुप हो जाते थे। उन लोगों ने यह स्वीकार किया कि मीरपुर में हथियार बहुत था और २९ जनवरी तक किसी ने हथियार समर्पित नहीं किया था। उन्होंने माना कि यह मीरपुर वालों की गलती थी। उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि इस झगड़े के खत्म होने के बाद सरकार ने गल्ले की दूकानें खोलीं और जरूरत-मंदों को राशन बाँटा। सख्ती की शिकायत उन्होंने जरूर की, लेकिन बंगालियों द्वारा अत्याचार, हत्या, बलात्कार या अग्निकांड की कोई शिकायत नहीं की। हम लोगों ने राशन के लिए लाइन लगाये खड़े बिहारियों को भी देखा।

यह ठीक है कि मीरपुर की सड़कें अभी सुनसान हैं, तलाशी के लिए कुछ अंचल खाली करवा लिये गये हैं। जिन मकानों में लोग हैं वहाँ भी स्तब्धता-सी है, पर तोड़-फोड़ या अग्निकांड के चिह्न कहीं नहीं दिखे।

हम बातें कर ही रहे थे कि एक जीप आयी। चश्मा लगाये एक बांगला देश सैन्याधिकारी उतरा। एक तालाब के पास गड़े हुए हथियार मिले थे। वहाँ खुदाई करने पर और भी बहुत कुछ मिलने की संभावना है। मेजर मोइन की अनुमति लेने वह आया था।

"अगर उस दृश्य की भयानकता आप बर्दाश्त कर सकें, तो इनके साथ जा सकते हैं ? वह क्षेत्र सुरक्षित तो है ?" मेजर मोइन ने पूछा और हमें जाने की इजाजत मिल गई।

मीरपुर का सेक्शन नं० ६। सीमेंट के ड्रेन पाइपों के ढेरों के सामने हम लोगों की जीपें रोक दी गयीं। उनके पीछे तालाब है। तालाब और ड्रेन पाइपों के अंबार के बीच कुछ खाली जगह—यह स्थान एक प्रकार की कत्ल-गाह रहा है। दिसम्बर से लेकर पिछले दिनों तक इस स्थान पर अनेक अपराध किये गये हैं ऐसी सूचना मेजर को मिली थी। वे हथियार भी यहीं से खोद कर निकाले गये थे। यहीं मीरपुर के रज़ाकारों ने हत्या करके अनेक लोगों को दफन कर दिया था। जाँच के लिए मेजर मोइन ने अपना सहायक और पाँच जवान भेजे तो हम लोग भी उनके साथ हो लिये।

ड्रेन पाइपों के ढेरों के बीच बहुत से कपड़े बेतरतीब से बिखरे पड़े थे। खून से सनी कमीजें, सलवारें, ब्रेसियरें, बच्चों के कपड़े। एक ठूंठ के नीचे उभरी हुई जमीन को देख कर जवानों को शक हुआ कि हो-न-हो, यहीं कुछ लाशें गड़ी होंगी। एक हाथ जमीन भी खोदनी नहीं पड़ी। पूरा नर-कंकाल निकल आया। बड़ी-सी खोपड़ी बता रही थी कि वह पुरुष रहा होगा। अरे यह क्या है ? उसके गले में रस्सी का फंदा था। तो गला घोंट कर उसकी हत्या की गई थी। हम सबों का चेहरा सख्त हो गया। जवान उसके आगे जमीन खोदने लगे। पहले पाँव की हड्डियाँ मिलीं, फिर हाथ की। खोपड़ी छोटी थी और उस पर लगे बाल अब भी बिल्कुल गल नहीं गये थे, वह शायद लड़की थी। जवान खोदे चले जा रहे थे जमीन। तीसरा नरमुंड भी निकला। मालूम नहीं कितने असहाय अभागों की बेगैरती से वहाँ दफन होना पड़ा होगा। वातावरण इतना भारी हो गया था कि सहा नहीं गया। हमने कैप्टन अबूबकर से अनुरोध किया कि हम लोग अब यहाँ से चलें। वे भी उस बोझ

को महसूस कर रहे थे (और शायद हमसे ज्यादा)। बिना कुछ बोले हम लोग वहाँ से आगे बढ़े ।

कैप्टन अबूबकर हम लोगों को सेक्शन नं० २ की मस्जिद दिखाये, जिसके भीतर से प्रचुर शस्त्रास्त्र मिला था। उसके सामने की सड़क के इस ओर कुछ टूटे हुए कच्चे घर हैं। उनमें से एक में कुछ औरतें दिखीं। पूछने पर मालूम पड़ा कि वे घर बंगालियों के हैं। उन औरतों ने बताया कि जिस दिन गोल-माल हुआ था यानी २५ मार्च को, उसी दिन हम लोग भाग गये थे, आज लौटे हैं। स्वाधीनता के डेढ़ महीने बाद भी मीरपुर में बंगाली परिवार अपने को सुरक्षित नहीं मानते, तो फौजी शासन के दिनों के आतंक की कल्पना की जा सकती है और आगे बढ़े हम लोग, तो दिखा कि शरणार्थियों की तरह कुछ लोग कच्ची, अस्थायी झोपड़ियों में रह रहे थे, बहुत से सड़क के किनारे भीड़ लगाये खड़े थे। हम लोगों ने अपनी जीप खड़ी की। मालूम पड़ा मीरपुर के इस अंचल में बंगालियों की बस्ती थीं। उनके मुहल्ले के नाम थे गोदाखाली, खोलाटेक शाह अलीबाग, मणिपुर, पाइकपाड़ा, पर्वता आदि।

२५ मार्च '७१ के बाद अलबदर ने इन बस्तियों में आग लगा दी थी। वे सब बंगाली मुस्लिम अपने-अपने गाँव भाग गये थे। मीरपुर के अबंगाली मुस्लिमों ने इन जमीनों पर दखल कर लिया था। स्वाधीनता के बाद धीरे-धीरे बंगाली वहाँ लौटने लगे, तो अपनी बस्तियों की जगह उन्हें मिली खाली जमीनें, वह भी लड़ने-झगड़ने के बाद। १६ दिसम्बर के बाद भी मीरपुर के लोग उन लौटे हुए विस्थापितों पर रात को गोली चलाते रहे। उन्होंने दूर पर एक तिमंजिला मकान दिखाया जिस पर से मोर्टार बरसाये गये थे। फिर उनका क्रोधपूर्ण अभियोग "हम लोग भी तो बाबू जी रिफ्यूजी हो गये अपने देश में ही। सरकार बिहारियों को तो डोल दे रही है···राशन दे रही है, हम लोगों को भी तो अपनी खोलाबाड़ी (खपरैल के मकान) बनानी है, हम लोगों को भी तो सरकारी सहायता मिलनी चाहिये। जुल्म तो हम पर हुआ है!"

इस सेक्टर में दो प्रमुख सैन्याधिकारी थे। एक थे कैप्टन शफीउल्ला, जिनका जिक्र शेरपुरा के विवरण (युद्धयात्रा) में आप पढ़ चुके हैं। मालूम हुआ दूसरे हैं कैप्टन गफ्फार। कौन कैप्टन गफ्फार ? रघुरामपुर वाले ! वे तो हमारे पूर्व परिचित हैं। उनसे जरूर मिलना है।

सामने थे कैप्टन गफ्फार। हम लोग उसे मुक्ति युद्ध के समय कुमिल्ला के

मंदभाग क्षेत्र के रघुरामपुर गाँव में मिले थे। हमने उनका परिचय कैप्टन ज० कह कर दिया था। कितना परिवर्तन आ गया था उनमें ! कहाँ मौत से जूझते हुए, लुंगी और गंजी पहिने एक झोपड़े में बैठे परेशान कैप्टन गफ्फार और कहाँ फौजी पोशाक पहिने अपने अस्थायी किंतु प्रशस्त कार्यालय में गौरव मंडित कैप्टन गफ्फार ! जैसे हम लोग एक क्षण के लिए उन्हें नहीं पहिचान पाये, वैसे ही वे भी कुछ असमंजस भरी निगाहों से हमें देखते रहे, किंतु पहिचानते ही उन्होंने बड़े तपाक से हाथ मिलाया और हम लोगों का हार्दिक स्वागत किया। वे फिर एक बार मौत के मुँह से निकल आये थे। मीरपुर में कुछ ही दिनों पहले एक घर में से उनकी जीप पर गोलियाँ चली थीं, टायर पंचर हो गया, ड्राइवर घायल हो गया पर कैप्टन गफ्फार बेदाग बच गये। हमने उन्हें बताया कि स्वयं ले० जनरल अरोड़ा कस्बा के युद्ध में सफल नेतृत्व करने के लिए उनकी तारीफ कर रहे थे। यह भी बताया कि धर्मयुग में उनका विवरण कैप्टेन ज० के नाम से निकला था, पर अब तो चित्र के साथ उनका वक्तव्य छपेगा। वे शालीनतापूर्वक मुस्कराने लगे।

कैप्टन गफ्फार ने बताया कि "केवल ३० जनवरी को ही नहीं, ३१ जनवरी की सुबह तक अबंगाली मुस्लिम हम लोगों पर गोलियाँ चलाते रहे। उसके बाद उन्होंने आत्मसमर्पण किया। लेकिन फरवरी के पहले हफ्ते तक वारदातें होती रहीं। मीरपुर में करीब दो लाख अबंगाली मुस्लिम हैं। उन्होंने जगह-जगह पाकिस्तानी झंडे लगा रक्खे थे। बांगला देश सैनिकों ने एक-एक पाकिस्तानी झंडा उतार कर जला दिया। १ नं० सेक्शन में १०० से अधिक बंगालियों के कंकाल मिले। २१ शव तो बिल्कुल ताजे मिले जिनके हाथ पीछे बँधे थे, आँखें और मुंह बँधे हुए थे और उनके गले काटे हुए थे। ये हत्याएँ निश्चित रूप से १६ दिसम्बर और ३० जनवरी के बीच में हुई थीं। इन नासमझों की धारणा थी कि हम लोग बांगला देश में पाकिस्तानी 'पाकेट' बनाये रख सकते हैं। लड़ने-लड़ानेवाले ज्यादातर गुंडे थे। अब वे हम लोगों के पास माफी माँगने आते हैं। बरसों से ये सजायाफ्ता गुंडे पश्चिमी पाकिस्तान से ला कर इन बस्तियों में बसाये गये थे।

"३१ जनवरी को जब उन लोगों ने अपने हथियार हमें सौंप दिये तो हमने दो कम्पनियाँ उनकी सुरक्षा के लिए तैनात कर दीं। हमारे कुछ नागरिक अत्यधिक उत्तेजित थे और वे मीरपुर में बदला लेने की दृष्टि से प्रवेश करना चाहते थे। हमें उन्हें रोकने और तितर-बितर करने के लिए गोलियाँ चलानी पड़ीं। हमारे दो नागरिक घायल हो गये तब भीड़ हटी। शेख मुजीब ने हमें कड़े निर्देश दे रखे हैं कि हम अबंगाली मुस्लिमों से दुश्मनों-सा व्यव-

हार न करें, जो अपराधी हैं उन्हें दंड दें; किंतु निरपराधिओं निहत्थों की पूरी तरह रक्षा करें। हम उन्हें भोजन, पानी, दवा दे रहे हैं। इस संघर्ष में एक भी घर न जला है, न नष्ट हुआ है। हमारी दो कम्पनियाँ इन इलाकों की तलाशी ले रही हैं। काम पर भेजने के पहले और वहाँ से लौटने के बाद भी हमारी सेना के हर जवान की तलाशी ली जाती है। हमने इनकी संपत्ति को हाथ नहीं लगाया है। यद्यपि हमें इस बात के सबूत मिल रहे हैं कि बंगाली घरों और दूकानों से लूटा हुआ बहुत-सा माल इनके यहाँ निकल रहा है। छोटे-छोटे झोपड़ों में सोफासेट और चाँदी के बर्तन, गहने! इनका भी हिसाब-किताब किया जायेगा।

"हमारा यह अभियान अबंगाली मुस्लिमों के विरुद्ध नहीं, पाकिस्तान भक्त बांगला देश के विरोधी अपराधियों के विरुद्ध है। आखिर मुहम्मदपुर में भी तो अबंगाली मुस्लिम रहते हैं, उनके ऊपर तो कोई बंदिश नहीं लगायी गई है। बांगला देश में रह कर बांगला देश के प्रति अपराध करनेवालों को हम क्षमा नहीं कर सकते, चाहे वे जो भी क्यों न हों?"

कैप्टन गफ्फार ने हमें चाय पिलायी। सच कहा जाये तो आज के क्रोध, क्षोभ, दुख, पीड़ा उपजाने वाले अनुभवों से भरे दिन में कैप्टन गफ्फार का मिलना बहुत राहत पहुँचा गया।

सीमेंट के ड्रेन पाइपों के बीच देखे गये दृश्यों का जितना गहरा बोझ मन पर छूट गया था उसे भुलाने के लिए हम लोग रघुरामपुर की अपनी भेंट की यादें ताजा करते रहे। हवलदार, पटवारी, मुजीब बैटरी के सूबेदार सिराज तथा कैप्टन पाशा (जिनका नाम तब नहीं लिखा था, जो तोपें चलवाते रहे थे हमें अपने साथ बंकर में बिठा कर) वह एक प्याला गरम चाय और रघुरामपुर की यादें हमें क्षण भर को इस स्थिति और इस क्षण से उबार ले गये।

कैप्टन अबूबकर ने याद दिलायी—"चलिये, अभी आपको उन लोगों से मिलना बाकी है जो इन अपराधों में शरीक होने के शक में पकड़े गये हैं, हम निष्पक्षता और न्याय से उनकी जाँच करेंगे। उन्हीं में अनेक पाकिस्तानी भी मिले हैं, जो इन बस्तियों में छिपे हुए थे। आप उनसे खुद जो पूछना चाहें पूछ लें।"

वहाँ बड़ी संख्या में अबंगाली मुस्लिमों का कत्लेआम हो रहा है, वस्तुस्थिति क्या है ? हमें देखने का मौका मिला। हमने देखा कि वास्तव में दिसम्बर में पाकिस्तानी फौजों के आत्मसमर्पण के बाद ही इस क्षेत्र के अबंगाली मुस्लिमों ने अलबदर और रजाकार वाहिनी के नेतृत्व में बंगालियों पर सशस्त्र आक्रमण किये थे। न केवल निहत्थे नागरिकों पर, वरन् बांगला देश की पुलिस और सैनिक टुकड़ियों पर भी। बांगला देश सेना उस क्षेत्र में शांति कायम रखने और हथियारों की खोज करने में संलग्न थी। अबंगाली नागरिकों को राशन-पानी आदि पहुँचाया जा रहा था। केवल वे लोग गिरफ्तार किये गये थे जिनके विरुद्ध हत्या आदि अपराधों की रिपोर्ट थी या जो पाकिस्तानी सैनिक वहाँ छिपे हुए थे। उन बंदियों से मिलने और पूछ-ताछ करने की भी अनुमति हमें मिल गयी।

अब हम उन बंदियों के बीच थे। पहरा बहुत सख्त था, लेकिन और किसी किस्म की सख्ती का कोई साक्ष्य वहाँ नहीं मिला। उन्हें खाना दिये जाने का समय था और वे अपने-अपने थाली-कटोरे लेकर लाइन में बैठे थे। हम उन बंदिओं से विशेषतः मिलना चाहते थे। जो पाकिस्तानी सैनिक (मीर-पुर में छिप कर रहनेवाले) या जो टिक्का खां द्वारा गठित ईस्ट पाकिस्तान सिविल आर्म्ड फोर्स के सैनिक थे और इसी हफ्ते ढाका-मीरपुर में खोज निकाले गये थे। मिलने पर पता लगा कि उनमें से अधिकतर विभाजन के समय बिहार से आकर बसे थे। दो-एक उत्तरप्रदेश के थे और बाकी पश्चिम पाकिस्तान के झेलम, मरदान, सरगोधा, सराय आलमगीर आदि क्षेत्रों के। यद्यपि उनका नाम ईस्ट पाकिस्तान सिविल आर्म्ड फोर्स की सूची पर था और अनेक साक्ष्य इस बात के थे कि वे इस अर्द्ध सैनिक बांगला देश-विरोधी संग-ठन के सक्रिय सदस्य थे, लेकिन उनमें से अनेक इस समय यह कह रहे थे कि वे चौकीदार थे, या बैंक में गार्ड थे, मेकैनिकल फोरमैन थे। कुछ ने मान लिया था कि वे इस संगठन में थे और अनेक केवल एक जिदभरी चुप्पी धारण किये हुए थे। पूछताछ जारी थी।

विभाजन के समय नजीबाबाद से आ कर बसे सरदार हैदर को छः फर-वरी को पकड़ा गया था। उसके विरुद्ध अनेक शिकायतें थीं। उन शिकायतों का जिक्र करने पर सिर झुका कर चुप हो जाता था। लेकिन जब उससे हमने पूछा कि मीरपुर में जिस तरह रजाकारों और अलबदर के अबंगाली कार्यकर्त्ताओं ने बंगालियों पर अत्याचार किया वैसा कोई अत्याचार उसके या उसके परिवार पर हुआ, तो उसने माना कि उन पर पहरे की सख्ती तो

है पर और कोई सख्ती नहीं। उसने यह भी स्वीकारा कि आम तौर पर बंगालियों ने पाकिस्तानियों के मुकाबले में ज्यादा शराफत का परिचय दिया है।

उसका बहनोई मुहम्मद अब्बास युद्ध के दौरान कराची से पानी के जहाज पर चढ़ कर यहाँ आया था। उससे पूछा गया कि युद्ध के दौरान पाकिस्तान ने तुम्हें यहाँ क्यों भेजा ? तो उसने कोई जवाब नहीं दिया। लेकिन उसने यह स्वीकार किया कि महाजिरों (अर्थात् विभाजन के समय भारत गये पाकिस्तान में बसने वाले मुसलमानों) के साथ पाकिस्तानी हुकूमत का रुख कभी अच्छा नहीं रहा। हर राजनीतिक संकट के समय उनका दुरुपयोग किया जाता रहा है।

पंजाब के सूबेदार मेजर कासिमा खाँ एपकाफ के सदस्य थे। उन्होंने ३० जनवरी की घटना के बारे में बताया कि मीरपुर के अबंगाली मुस्लिमों के पास हल्के हथियार थे। हाँ, दोनों ओर से गोली चली। लेकिन इस सवाल पर कि पहले गोली किसने चलाई—कासिम खाँ चुप हो गए। महमूद अजहर (पाक अधिकृत कश्मीर क्षेत्र से) और पंजाबी अब्दुर्रज्जाक, निजा-मुद्दीन, मुहम्मद यूसुफ, करामत हुसेन आदि सभी ईस्ट पाकिस्तान सिविल आर्म्डफोर्स के सिपाही थे जो मीरपुर में छिपे हुए थे। उनमें से अनेक के पास हथियार बरामद हुए थे। उन्होंने मीरपुर की घटनाओं पर कुछ भी कहने से इन्कार किया। हाँ, यह जरूर बताया कि जेल में उन्हें आम कैदियों की तरह रक्खा जाता है, कोई दुर्व्यवहार नहीं किया जाता।

अंत में मुलाकात हुई सरगोधा के मुहम्मद हुसेन से जो पाकिस्तानी मिलिटरी पुलिस का एक छोटा अफसर था। उसने बताया कि लड़ाई के दौरान वह पाकिस्तान से २८ मार्च को लाया गया था, पानी के जहाज से। चटगाँव बंदरगाह पर उतरा था। लड़ाई के दौरान ढाका में पाक सेना के हेडक्वार्टर में था। ६ दिसम्बर को समर्पण के समय, उसने तथा अन्य बहुत से पाक सैनिकों ने समर्पण नहीं किया और वे भाग कर इधर-उधर छिप गये। वह स्वयं मुहम्मदपुर में जलील नामक मित्र के यहाँ जा कर छिपा रहा। जलील बिहारी है। उसका एक भाई कराची में है। मुहम्मद हुसेन शिया है। मीरपुर में मजलिसों में शामिल होने वह जाया करता था। वहीं वह ६ फरवरी को पकड़ लिया गया।

उससे पूछा गया कि कुछ लोग कहते हैं, मीरपुर में दिसम्बर से अबंगालियों का कत्लेआम हो रहा है, तो ये मजलिसें कैसे लगती रहीं ? तो

उसने सिर्फ यही कहा कि मजलिसें होती थीं और उनमें वही नहीं लेकिन और भी आसपास के हजारों लोग शामिल होते थे।

जाहिर है कि अबंगाली मुसलमानों पर होने वाले कल्पित अत्याचारों की कहानियाँ बहुत बढ़ा-चढ़ा कर बांगला देश विरोधी तत्वों द्वारा फैलायी गई हैं। उससे इनकी समस्या सुलझाने के बजाय और भी उलझती गई है। वास्तव में लगता तो यह है कि इनके प्रति अत्याचारों की गढ़ी हुई कहानियाँ फैलानेवालों के दिमाग में इनके हित के बजाय अपने राजनीतिक हित साधने की चिंता अधिक है। इनका दुर्भाग्य यह है कि विभाजन के बाद बांगला देश में आ कर बांगला देशीय जनता के साथ घुलने-मिलने के बजाय ये अत्याचारी पाकिस्तानी हुकूमत के मोहरे बने रहे। स्वातंत्र्य संग्राम के दौरान टिक्का खाँ ने इनके स्थानीय नेताओं से साँठ-गाँठ कर अलबदर, रजाकार और ई० पा० सिविल आर्म्ड फोर्स जैसे सशस्त्र संगठनों में इन्हें झोंका और चलते-चलते राव फरमान अली ने इन्हीं के द्वारा बुद्धिजीवियों की सामूहिक हत्या की दुरभिसंधि की।

अब भी पाकिस्तानी हुकूमत इनके भाग्य को ले कर दोहरा खेल खेल रही है। एक ओर बिहारियों के कत्लेआम की झूठी अफवाहें फैला कर भुट्टो साहब शेख मुजीब से अपील करते हैं तो दूसरी ओर वे और गुलाम मुस्तफा जतोई इन्हें पाकिस्तान में वापस लेने के सवाल पर बगलें झाँकने लगते हैं। उससे बड़ी समस्या यह है कि आज भी इन अबंगाली मुस्लिमों के मन में बंगालियों के प्रति किए अत्याचारों के प्रति पछतावे की भावना नहीं दृष्टिगोचर होती।

इस संबंध में शेख मुजीब ने इस्लामिक ऐक्रेटेरियेट के प्रधानमंत्री तुन अब्दुल रज्जाक को जो उत्तर दिया है वह विचारणीय है, "बंगाल में इन अबंगाली मुस्लिमों की रक्षा हम कर रहे हैं। हमने इनसे हथियार डालने की प्रार्थना की थी। उस तिथि के दो दिन पहले हमारी बांगला देश सैनिक टुकड़ियों पर मीरपुर की अबंगाली बस्ती में हमला किया गया जिसमें हमारे बहुत से लोग मारे गये। उसके बाद आदेश दिया गया कि बस्ती में अपराधियों की तलाश की जाय। तब से हजारों छिपे हुए अस्त्र-शस्त्र बरामद हुए हैं और अभी और मिल रहे हैं। इस कार्रवाई की कोई जरूरत न होती यदि मीरपुर के लोगों ने अपने आप हथियार सौंप दिये होते और हमलावरों को अपने बीच छिपा कर नहीं रखा होता। इन लोगों के खिलाफ जनभावना

इतनी उग्र थी कि इनकी रक्षा के लिए कुछ दिन सैनिक सुरक्षा में रखना इन्हीं की प्राण-रक्षा के लिए जरूरी था।"

इसके बाद भी ये अबंगाली मुसलमान यदि बांगला देश के प्रति अपने मनोभाव नहीं बदलते और विदेशी पाकिस्तानी हुकूमत के प्रति अपनी निष्ठा कायम रखते हैं तो उनका भविष्य क्या होगा? नहीं कहा जा सकता। जो भारत की धर्मनिरपेक्ष नीति से असहमत हो कर सांप्रदायिक राष्ट्र की भावना से प्रेरित हो कर भारत छोड़ कर चले गये और २५ वर्ष तक बांगला देश के पाकिस्तानी शोषण में सहभागी रह कर बांगला देशवासियों के प्रति अत्याचार की नीति अपनाते रहे, उनके बंधु नहीं बन पाये—वे तत्व शांति और सुरक्षा के लिए कितने खतरनाक हैं इसकी सहज कल्पना की जा सकती है।

२६.
बांगला देश की धर्मनिरपेक्ष-नीति में अल्पसंख्यक सुरक्षित

जिस सिद्धाँत के आधार पर पाकिस्तान बना था उसके अनुसार वह केवल मुसलमानों का देश था। वहाँ रहनेवाले गैर मुसलमानों विशेषतः हिंदुओं का क्या हो···इस समस्या का आदर्श समाधान वहाँ के कुछ लोगों की दृष्टि में यही था कि वे वहाँ न रहें। यद्यपि पाकिस्तानी संविधान सभा में श्री जिन्ना ने ११ अगस्त, १९४७ को यह जरूर कहा कि अब पाकिस्तान के सभी निवासी पाकिस्तानी हैं···हिंदू या मुसलमान नहीं और इस दृष्टि से समान अधिकारों के हकदार हैं, किंतु जिन्ना साहब की यह उदारता अन्य नेताओं के गले नहीं उतरी। पश्चिम पाकिस्तान को तो पहले ही झटके में करीब-करीब अल्पसंख्यक रहित कर दिया गया, लेकिन नाना ऐतिहासिक कारणों के फलस्वरूप पूर्व पाकिस्तान में ऐसा करना संभव नहीं हो सका। फिर भी कट्टर पाकिस्तानी मनोवृत्ति ने अलिखित कानून के रूप में यह धारणा प्रचारित की कि पूर्व बंगाल में रहने वाले हिन्दू वस्तुतः 'विदेशी' हैं।

डॉ० कांति पकड़ाशी ने बंगाली शरणार्थियों पर लिखी अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'दि अपरूटेड' में बताया है कि विभाजन के समय पाकिस्तानी बंगाल में अनुसूचित जातियों के समेत हिन्दुओं की संख्या अनुमानतः १ करोड़ ५६ लाख थी। पश्चिम बंगाल के पुनर्वासन विभाग के भूतपूर्व उच्चपदाधिकारी श्री हिरण्मय बंद्योपाध्याय ने अपनी पुस्तक 'उद्वास्तु' में सूचना दी है कि दिसम्बर १९५० तक पश्चिम बंगाल में पूर्व पाकिस्तान के हिन्दू शरणार्थियों की संख्या २३ लाख से अधिक हो चुकी थी। इस हिसाब से पूर्व पाकिस्तान में १९५१ में कम-से-कम १ करोड़ ३३ लाख हिंदू थे। उस समय पूर्व पाकिस्तान की कुल आवादी थी ४ करोड़, २० लाख, ६३ हजार, जिसमें मुसलमानों की संख्या २ करोड़ ८८ लाख के आसपास थी। पाकिस्तान की १९६१ की जनगणना की रिपोर्ट के अनुसार १९६१ ई० में पूर्व पाकिस्तान की आवादी थी ५,०८,४०,२३५ जिसमें ८०.४३% अर्थात्

४,०८,६०,६१२ के करीब मुसलमान थे। अनुसूचित जातियों और बौद्धों को मिला कर हिंदू थे १६.१६% अर्थात् ६७,५६,१६६ के करीब। ध्यान देने की बात है कि इन दस वर्षों में मुसलमानों की संख्या में १ करोड़, २० लाख, ६० हजार से अधिक की वृद्धि हुई और हिंदुओं की संख्या में ३५ लाख ४३ हजारसे भी अधिक की कमी हुई। वंशवृद्धि की स्वाभाविक प्रक्रिया के बावजूद इस कमी कीं व्याख्या देश-त्याग और धर्मांतरण के आधार पर ही की जा सकती है। पाकिस्तानी शासन में पूर्व बंगाल में हिंदुओं की कितनी दयनीय स्थिति थी ? इसकी कल्पना ऊपर के आंकड़ों के आधार पर की जा सकती है।

राजनीतिक दृष्टि से अधिक जागरूक पूर्व बंगाल की जनचेतान सांप्रदायिक घटाटोप के भीतर छिपे मुस्लिम लीगी और पश्चिम पाकिस्तानी उच्च वर्ग के निहित स्वार्थों के घिनौने चेहरों को ज्यों-ज्यों पहिचानती गयी त्यों-त्यों असांप्रदायिकता की ओर बढ़ती गयी। पूर्व पाकिस्तान की मुस्लिम लीग के ही एक बड़े हिस्से का पहले अवामी मुस्लिम लीग और फिर अवामी लीग में रूपांतरित होना इसका निश्चित प्रमाण है। अपनी भाषा और संस्कृति के संरक्षण के लिए जब पूर्व पाकिस्तान की साधारण जनता ने पश्चिम पाकिस्तानी शासकों से संघर्ष शुरू किया, तो उसे लगा कि वे लोग हर प्रगतिशील आंदोलन को गुमराह और व्यर्थ करने के लिए हिंदू-मुस्लिम दंगों का सहारा लेते हैं और उसमें सबसे आगे बढ़ कर सक्रिय भाग लेते हैं अबंगाली उर्दूभाषी मुस्लिम। पूर्व पाकिस्तान के बुद्धिजीवी वर्ग ने इस दंगों के पीछे छिपे सरकरी षड्यंत्र का पर्दा बार-बार फाश किया। शेख मुजीब ने तो अपने अनुयायियों को निर्देश दिया कि आतताइयों का मुकाबला कर के सभी बंगाली हिंदू भाइयों की रक्षा की जानी चाहिए। पूर्व बंगाल के जननेताओं ने मजहब की ओट में सांस्कृतिक और आर्थिक दृष्टि से किये जानेवाले पाकिस्तानी अत्याचारों का शिकार बनने से इन्कार कर दिया। अयूबशाही का तख्ता उलट जाने के बाद यहिया खाँ ने १९७० के अंत में मुस्लिम लीग, जमाते इस्लामी, निजामे इस्लामी जैसी 'इस्लाम पसंद' पार्टियों के सहारे ही पूर्व पाकिस्तान में वयस्क मताधिकार के आधार पर चुनाव करवाया था। पूर्व बंगाल की जनता ने अवामी लीग का पूर्ण समर्थन कर सांप्रदायिकता को करारी शिकस्त दी।

सांप्रदायिकता राजनीतिके मैदान में ही नहीं, युद्ध के मैदान में भी परास्त हुई। बांगला देश की मुक्ति के साथ-हीं-साथ शरणार्थियों का वापिस जाना शुरू हो गया था। शेख मुजीब के बागडोर सँभालते हीं शरणार्थियों के लौटने में अद्भुत तेजीं आयी और शरणार्थियों का इस तेजी से लौटना

संभव हो सका। शेख मुजीब के असाम्प्रदायिक नेतृत्व का सबसे बड़ा प्रमाण बांगला देश के हिंदुओं का उन पर अगाध विश्वास है।

× ×

पाकिस्तानी युद्धोन्माद के दौरान ढाकेश्वरी के मंदिर के अलावा सभी मंदिर तोड़ दिये गये या अपवित्र कर दिये गये थे। रमना की प्रख्यात काली बाड़ी को जो स्थानीय लोगों के अनुसार करीब चार सौ वर्ष पुराना काली मंदिर था—डाइनामाइट लगा कर उड़ा दिया गया था। ट्रकों में भर कर उसका मलवा तक फिकवा दिया गया था। उसके निकटस्थ श्री आनंदमयी माँ के आश्रम की भी यही गति हुई थी। आश्रम और मंदिर के पेड़ों को काट कर पूरी जमीन पर बुलडोजर चलवा दिया गया था। इसी तरह बूडो शिव-मंदिर, लक्ष्मीनारायण मंदिर, पाथुरिया हाटा का काली मठ, गौड़ीय मठ, झूलनबाड़ी का श्रीकृष्ण मंदिर तथा अन्य भी दूसरे बड़े-छोटे मंदिर तोड़फोड़ के शिकार हुए थे। बहुत से मंदिरों पर पाक सेना ने कब्जा कर लिया था, इसलिए उनकी इमारतें तो टूटने से बच गयीं, किंतु मूर्तियाँ अदबदा कर खंडित कर दी गयी थीं। इन कार्यों में रजाकार और अलबदर के अबंगाली अधिक तत्पर रहे। मुसलमान बंगालियों ने न केवल हिंदू बंगालियों की जान बहुत बार बचायी—उनके मंदिरों की भी रक्षा की। ढाकेश्वरी मंदिर के पुजारी श्री हेमचद्र चक्रवर्ती ने मुझे बताया कि अबंगाली मुसलमानों की भीड़ ने जब ढाकेश्वरी के मंदिर को नष्ट करना चाहा था। तब स्थानीय मुसलमान बंगालियों ने ही उन्हें रोका था।

ढाका संग्रहालय के संग्रहाध्यक्ष श्री एनामुल हक के अनुसार पाक सैनिकों और सहयोगियों ने सैकड़ों प्राचीन मंदिर। इस बेरहमी से तोड़े हैं कि उनकी मरम्मत भी असंभव है। उन्हें सबसे ज्यादा अफसोस कान्तनगर के मंदिर के तोड़ दिये जाने का था। यह मंदिर पूर्व बंगाल में टेराकोटा का सबसे बड़ा मंदिर था। ढाका संग्रहालय में संरक्षित हिंदू स्थापत्य के नमूनों को भी नष्ट कर देने का दुराग्रह किया गया था, किंतु श्री हक की सूझ-बूझ के कारण ऐसा नहीं हो सका।

मंदिरों के पुनर्निर्माण में सरकारी सहायता देने की घोषणा श्री ताजुद्दीन अहमद ने २८–१२–७१ को ही की थी। यह खुशी की बात है कि इस दिशा में कुछ कार्य हुआ है। ढाका के श्री राम-कृष्ण मिशन के मंदिर, विद्यालय, छात्रावास, मैदान आदि पर पिछले मार्च के बाद पाक सेना द्वारा कब्जा

कर लिया गया था। विद्यालय के एक अध्यापक सुप्रसन्न राय चौधरी की सपरिवार हत्या कर दी गयी थी। बांगला देश की मुक्ति के साथ-ही-साथ मिशन की सभी इमारतों को सरकार ने खाली करवा कर श्री चारु चौधरी को सौंप दिया था। पहली बार जब मैं ढाका गया था तब वहाँ का कामकाज ठप पड़ा हुआ था, किंतु दूसरी बार ८ से १३, फरवरी ७२ तक) जाने पर मैंने देखा कि मिशन का काम पूरे उत्साह के साथ चालू हो गया है। मंदिर में चित्रों की प्रतिष्ठा के अनंतर पूजन-कीर्तन चलने लगा है। १० फरवरी को तो मिशन के अहाते में ही बांगला देश के पुनर्वासन मंत्री श्री कमरुज्जमां की अध्यक्षता में एक अच्छी सभा हुई थी, जिसमें अढ़ाई सौ के करीब प्रतिष्ठित हिंदू-मुसलमान नागरिक उपस्थित थे और जिसमें मिशन के सेवाकार्य के पुनः प्रारंभ की विधिवत् घोषणा की गयी थी। संप्रति स्वामी अक्षरानंद, ढाका के श्री रामकृष्ण मिशन का कार्य बहुत लगन से कर रहे हैं। २५ मार्च के पहले पूर्व बंग में श्रीरामकृष्ण मिशन के १३ केंद्र थे। उन्हें फिर से चलाने की व्यवस्था की जा रही है।

ढाका के जिस हिंदू मुहल्ले को पाकिस्तानी फौज ने गोले दाग कर और आग लगा कर बिल्कुल तहस-नहस कर दिया, उसका नाम है शंखारीपारा। ३०–१२–७१ को जब मैं इस मुहल्ले में पहली बार आया था, तब यह करीब करीब परित्यक्त था। पूरी गली में मुश्किल से पाँच-सात परिवार ही लौटे थे, दूसरी बार ९ फरवरी '७२ को डॉ. भारती और बालकृष्ण जी के साथ मैंने उस मुहल्ले का निरीक्षण फिर किया। इस बार वहाँ काफी लोग दिखे। अपने खंडहरों में ही वे किसी तरह गुजर कर रहे हैं। कई मकानों की छतों और दुतल्ले की दीवारों पर गोलों के बड़े-बड़े सूराख अब भी ज्यों के त्यों हैं। इन लोगों के पास खाने-पहनने के लिए ही पैसा नहीं है, तो मकानों की मरम्मत कैसे करवायें। इस पूरे मुहल्ले को फिर से बनाने और बसाने की जिम्मेदारी बांगला देश सरकार को ही लेनी चाहिए।

× ×

पाकिस्तानी अत्याचार से हिंदू इतने संत्रस्त थे कि अपने नाम तक उन्होंने बदल डाले थे। ढाका विश्वविद्यालय के अंग्रेजी विभाग के रीडर डॉ. ज्योतिर्मय गुह ठाकुरता की नृशंस हत्या के बाद उनकी पत्नी श्रीमती बासंती

गुह ठाकुरता को सबसे अधिक चिंता अपनी किशोरी कन्या मेघना गुह ठाकुरता के लिए हुई। अपने और अपने पति के संबंधों का उपयोग कर उन्होंने अपनी लड़की को मोनिका रोजारियो के नाम से एक ईसाई अनाथालय में दाखिल करवा दिया था। "इसके अलावा उसे बचाने का और कोई उपाय मुझे नहीं सूझा।" उन्होंने २ जनवरी '७२ को मुझे बताया था।

तरुण कवि तापस मजूमदार ने अपना नाम सैमुएल गोमेज रख लिया था। इसी नाम से उसने अपनी कुछ कविताएँ भी प्रकाशित करवायीं। उसने यह भी बताया कि बाहर निकलते समय वह बराबर क्रॉस पहन कर चलता था तथा अपने ईसाई नाम और चित्र के साथ अपना परिचयपत्र (आइडेंटिटी कार्ड) अपनी जेब में रखता था।

राजनीतिक दृष्टि से पूर्व बंगाल के हिंदू पहले से ही असांप्रदायिक दलों का समर्थन करते रहे। पाकिस्तान बनने के बाद पाकिस्तान नेशनल कांग्रेस (अब बांगला देश नेशनल कांग्रेस) को उनका व्यापक समर्थन प्राप्त था। क्रमशः अवामी लीग के साथ उनका संबंध घनिष्ठतर हो गया। पिछले चुनाव में उन्होंने शेख मुजीब का पूरा समर्थन किया था। बांगला देश सरकार के एकमात्र हिंदू मंत्री श्री फणि मजूमदार ने मुझे बताया कि शेख मुजीब ने मुस्लिम जनता को असांप्रदायिक बनाने में आश्चर्यजनक सफलता पायी है। उन्होंने मुझे जिस इलाके से खड़ा किया था, उसमें ६८ प्रतिशत मुसलमान और ३२ प्रतिशत हिंदू थे, मैं डर रहा था कि मुसलमान मुझे अपना वोट नहीं देंगे, किंतु शेख साहब अडिग थे। उन्होंने कहा, 'बांगला देश के संदर्भ में हिंदू-मुसलमान का सवाल नहीं उठ सकता। आप जरूर जीतेंगे' और देखिए मैं जीत गया।

पिछले चुनाव में अवामी लीग के टिकट पर आठ हिंदू एम. पी. ए. और एक हिन्दू एम. एन. ए. के रूप में चुने गये थे। अब ये सब बांगला देश की संविधान परिषद् के सदस्य हैं। धर्म-निरपेक्ष बांगला देश में हिन्दू सहज भाव से समान नागरिक अधिकारों का भोग करेंगे, इसमें कोई संदेह नहीं है।

मुक्तिवाहिनी के सैनिकों में ही नहीं, अधिकारियों में भी हिन्दू-मुसलमान दोनों थे, उस समय कर्नल उस्मानी के नीचे छह लेफ्टिनेंट कर्नल थे उनमें एक हिन्दू थे—ले. कर्नल चित्तरंजन दत्त। उनसे मैं १ जनवरी, १९७२ को मिला था। हृष्टपुष्ट प्रसन्नवदन ले० कर्नल दत्त पहले पाकिस्तान आर्मी फ्रंटियर फोर्स में मेजर थे। मुक्ति-युद्ध के दौरान उन्होंने सिलहट क्षेत्र में अद्भुत

वीरता का परिचय दिया था। स्वतन्त्र बांगला देश में भी वे ससम्मान पूरे सिलहट सेक्टर के कमांडर हैं।

× × ×

बंगाली हिन्दू-मुसलमानों के सद्भाव का एक मर्मस्पर्शी उदाहरण मुझे २ जनवरी '७२ को देखने को मिला। १५ दिसम्बर '७१ को ढाका विश्वविद्यालय के जिन प्राध्यापकों की हत्या की गयी थी, उनमें इतिहास के प्राध्यापक श्री संतोष भट्टाचार्य भी थे। मैं जब उनकी विधवा पत्नी श्रीमती वीणापाणि भट्टाचार्य से मिलने गया, तो मुझे यह देखकर बहुत राहत मिली कि ढाका विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार श्री नुरुद्दीन अहमद तथा कुछ अन्य प्राध्यापक उन्हें आश्वस्त कर रहे थे। कुछ मुस्लिम महिलाएँ भी वहाँ थीं। उनकी अकृत्रिम समवेदना और सहयोगिता ही उस संकटग्रस्त परिवार की शक्ति और सुरक्षा थी।

ढाका विश्वविद्यालय में जो कैंटीन थी, उसके मालिक एक हिन्दू थे, उनका नाम था मधु दे। विद्यार्थियों के अत्यंत प्रिय मधु दा! स्वभावतः उसी कैंटीन में विद्यार्थियों का अड्डा जमता, राजनीतिक चर्चा होती, आंदोलनों की योजना बनती! पाकिस्तानी शासकों को यह कैंटीन फूटी आँखों नहीं सुहाती थीं। मधु बाबू तो उनकी आँखों में काँटे की तरह खटकते थे। २५ मार्च '७१ को ही यह कैंटीन तोड़-फोड़ दी गयी और उसी दिन मधु बाबू की हत्या भी कर दी गयीं, किन्तु मधु दा की स्नेहस्मृति को ढाका के विद्यार्थियों के हृदयों से वे बर्बर पोंछ नहीं सके। ८ फरवरी '७२ को भारती जी के साथ जब मैं ढाका विश्वविद्यालय गया, तो विद्यार्थियों ने आग्रहपूर्वक वह कैंटीन भी हम लोगों को दिखायी। उस पर एक बड़ा-सा फेस्टून लगा हुआ था, जिसमें लिखा था 'मधु दा, तोमाय भूलबो ना—बांगला देश छात्र यूनियन!' और वे लोग सचमुच मधु दा को नहीं भूले थे। मधु दा का परिवार वहीं था, उनके बच्चों का भरण-पोषण विश्वविद्यालय की ओर से ही होगा। कैंटीन उन्हीं के लड़के चलायेंगे। विद्यार्थियों ने हम लोगों को बताया कि मधु दा गरीब छात्रों से पैसे नहीं लेते थे। वे लड़के जब पढ़-लिखकर नौकरी करने लगते थे, तो पैसा चुका जाते थे। हम लोग उन्हें कैसे भूल सकते हैं। लड़के तो लड़के, बांगला देश के सबसे यशस्वी नये कवि शमसुर्रहमान ने 'मधुस्मृति' शीर्षक एक बहुत ही मर्मस्पर्शी कविता मधु दा के ऊपर लिखी है। उसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :—

आपनि छिलेन प्रियजन आमादेर
बड़ो अंतरंग नाना घटनाय

उत्सव एवं दुर्विपाके । बूझि ताइ
आपनार रक्ते ओरा मिटियेछे तृष्णा ।

(आप हम लोगों के प्रिय थे, सुख-दुख की बहुत बहुत-सी घटनाओं में हमारे बहुत ही अंतरंग बंधु थे । शायद इसीलिए उन लोगों ने आप के रक्त से अपनी प्यास बुझायी !)

एक और चेहरा उभर रहा है झुर्रियों से भरा हुआ । दुखकातर ! २९ दिसंबर '७१ को रमना काली बाड़ी के अवशेष मंदिर शून्य क्षेत्र में शोकाहत-सा खड़ा था मैं ! अचानक पीछे से आ एक अधेड़ ने मेरा पाँव पकड़ कर रोना शुरू कर दिया । वह खरपत्तू पासी था···रमना काली बाड़ी का माली । दो पीढ़ी पहले उसका परिवार आजमगढ़ से ढाका आया था । वह बचपन से ही काली बाड़ी में रहता आया था···अब कहाँ जायें । मंदिर के ध्वंस के पूर्व उसके पुजारी ठाकुर परमानंद एवं २५, २६ अन्य जनों की हत्या हो गयी थी ! वह बदकिस्मती से बच गया था, दर-दर की ठोकरें खाने के लिए···उसी दिन मर जाता तो छूट जाता ! उसका बहुत बड़ा दुख यह भी था कि वह इन दिनों डर के मारे हिंदी (भोजपुरी) नहीं बोल पाता था कि अनजान बंगाली उसे अबंगाली मुसलमान न समझ बैठें ! आस-पास इकट्ठे हो गये मुसलमान बंगालियों ने ही उसके आंसू पोंछे और उसे भरोसा दिया कि अब कोई खतरा नहीं है । खरपत्तू ने कहा कि कभी मन होता है आजमगढ़ वापस चला जाऊँ, पर सोचता हूँ मैंने वह जगह देखी ही नहीं है, वहाँ कौन है मेरा, कहाँ जाऊँ, क्या करूँ, कुछ समझ नहीं पाता ! मेरे साथ बाबू (तनवीर) और ज्योति (रजा उर रहमान) थे । उन लोगों ने उसे ढाढ़स बँधाया, कहा, 'तुम्हें यहीं माली का काम करना है, ढाका छोड़कर तुम्हें अब कहीं नहीं जाना है ।' मैंने देखा, खरपत्तू के आँसू थम गये । उदास चेहरे पर मुस्कराहट तो नहीं आयी, लेकिन वह भी आयेगी ।

× ×

११-२-७२ बांगला देश सरकार के पुनर्वास मंत्री कमरुज्जमां साहब का कक्ष । भारती जी के पूछने पर कमरुज्जमां साहब ने बताया कि प्रत्येक शरणार्थी को हम लोग वापस लेंगे उन्हें बसाने की हमारी परिकल्पना तो विराट है, किन्तु हमारा संबल बहुत अल्प है । किसान को हल-बैल चाहिए । मछुओं को जाल और नौका चाहिए । बुनकरों को सूता, कर्घा चाहिए । जब

तक हम उन्हें ये दे नहीं पाते, तब तक उनको ठीक-ठीक बसा नहीं सकते, आत्मनिर्भर नहीं कर सकते। अभी तक हम लोग जो कर पाये हैं वह अत्यंत नगण्य है। जो लौट के आ रहे हैं या जो यहीं थे, किन्तु अपनी जगह-जमीन छोड़ कर कहीं और जा छिपे थे उन्हें हम लोग उनके गाँव भेज रहे हैं। अभी तक हम लोगों का यही अनुभव है कि लौट कर आनेवालों को अपनी जगहें वापस मिल रही हैं। हाँ, बहुतों के घर पाकिस्तानी फौज ने जला कर खाक कर दिये हैं या तो तोड़-फोड़ दिये हैं। उन्हें कुछ टीन, बांस, सीमेंट देने की व्यवस्था हम लोग कर रहे हैं। पर आप लोग जानते ही हैं कि हमारा अर्थ संबल कितना कम है। हम संयुक्त राष्ट्रसंघ तथा विश्व के दूसरे समृद्ध देशों से यह अपेक्षा करते हैं कि इस महाभारत को झेलने में वे हमारी मदद करें। अभी हम लोगों ने प्रति परिवार ३०) दिया है। मकान, उपकरण आदि के लिए हम लोग प्रत्येक परिवार को और १००) देना चाहते हैं किन्तु...!

बांगला देश गरीब है, अभावग्रस्त है, युद्ध विध्वस्त है, किन्तु अपने पुत्रों के लिए द्वार उसने खोल दिये हैं। अब वहाँ भाई-भाई में पक्षपात नहीं वरता जायेगा। मस्जिद की अजान और मन्दिर की शंखध्वनि परस्पर प्रेम का उद्घोष बनेगी। भारत की धर्म-निरपेक्षता से प्रेरणा ग्रहण कर बांगला देश ने भी धर्म-निरपेक्षता को अपनी आधारशिला घोषित कर दिया है। बांगला देश का भविष्य एक है, वह जैसा वहाँ के मुशलमानों के लिए होगा, वैसा ही वहाँ के हिन्दुओं के लिए भी।

२७.
जन-नेता शेख मुजीबुर्रहमान

शेख मुजीब सच्चे अर्थों में जन-नेता हैं। उनका नेतृत्व बौद्धिक कम और भावात्मक अधिक है। व्यापक व्यक्तिगत सम्पर्क, सहृदयता, खरी ईमानदारी और लम्बी संघर्षशीलता के कारण उन्होंने अपनी जनता का ऐसा ठोस विश्वास और समर्थन प्राप्त कर लिया है, जो किसी भी जन-नेता के लिए ईर्ष्या का विषय हो सकता है। जनता के हृदय की आकाँक्षाओं को समझने और उसे भाषा देने में वे माहिर हैं। बांगला देश की आजादी की लड़ाई जिस साहस और दूरदर्शिता के साथ उन्होंने लड़ी और जीती, उसकी मिसाल ढूंढ़ना मुश्किल है। पश्चिमी पाकिस्तानी शासकों से असहयोग के उनके निर्देश को न केवल जनसाधारण ने बल्कि उच्चन्यायालय के न्यायाधीश से आरम्भ कर साधारण सरकारी चपरासी तक ने माना था। उनके आदेश के अनुसार ही २५ मार्च, १९७१ के बाद जनता और मुक्तिवाहिनी ने सशस्त्र संग्राम शुरू कर दिया था, जिसकी परिणति बांगला देश की स्वाधीनता में हुई। बेगम सूफिया कमाल ने उनके जन्म-दिन पर ठीक ही लिखा है कि :—

तव जन्म क्षण !
एकक तोमार नहे निपीड़ित लक्ष जनगण।
नवजन्म लभि चेतनार।
तोमारे लभिया काछे हयेछे दुर्वार।

'तुम्हारा जन्म क्षण, केवल तुम्हारा नहीं। पीड़ित लक्ष-लक्ष जनगण, चेतना का नवजन्म पाकर, साथ पा तुमको हुए अडिग, निडर।'

पाकिस्तान की साम्प्रदायिक चेतना को बदल कर बांगला देश की राष्ट्रीय चेतना के द्वारा पीड़ित जनगण को निडर हो स्वाधीनता के लिए अडिग संघर्ष में प्रवृत्त कर देना मुजीब का ही काम था। स्वाभाविक था कि कृतज्ञ जनता उन्हें बंगबन्धु पुकारती। वैसे तो उनको बांगला देश का राष्ट्रपिता भी कहा जाता है; किन्तु उनके व्यक्तित्व को सही रूप में झलकाने वाली उपाधि 'बंग-

बन्धु' ही हैं। अमीर हो या गरीब, पढ़ा-लिखा हो या अनपढ़, शहरी हो या देहाती, वे सबके अकृत्रिम बन्धु ही हैं।

शेख मुजीब को देखने-सुनने या उनसे बातचीत करने के मुझे अधिक मौके नहीं मिले किन्तु फिर भी कह सकता हूँ कि उनकी बेहद लोकप्रियता के मूल में उनका मानवीय स्पर्श है जो दिमाग को भले न जीत सके, दिल को छू लेता है। प्रस्तुत है दूर-पास से देखी हुई उनकी दो-चार झलकियाँ, जिनके आधार पर मैंने उक्त निष्कर्ष निकाला है।

× × ×

६ फरवरी, १९७२! कलकत्ते का ब्रिगेड परेड ग्राउन्ड। बंगबन्धु शेख मुजीब और प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी के व्याख्यान सुनने के लिए घंटों से लाखों लोग प्रतीक्षा कर रहे थे। बांगला देश और भारत की मैत्री की भावना की गहराई का सबूत दे रही थी हर्ष मुखर जनता, बारबार गगन-भेदी नारे लगाकर, भारत-बांगला देश मैत्री अमर रहे, बंगबन्धु शेख मुजीब जिन्दाबाद, प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी जिन्दाबाद!

ठीक तीन बजे इन्दिरा जी के साथ शेख मुजीब पधारे। आकाश नारों से गूँजने लगा। शेख मुजीब बारबार हाथ उठाकर जनता के अभिनन्दन का प्रत्युत्तर दे रहे थे। इन्दिरा जी के सौहार्द्रपूर्ण स्वागत-भाषण के बाद उन्होंने छोटा-सा किन्तु मर्मस्पर्शी व्याख्यान दिया। उनके आरम्भिक वाक्य ही थे 'मैं दृढ़ता पूर्वक विश्वास करता हूँ कि भारत-बांगला देश मैत्री सदा अटूट रहेगी। विश्व की कोई शक्ति इस मैत्री में दरार पैदा नहीं कर सकती।' भारत के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए उन्होंने रवीन्द्रनाथ की पंक्तियाँ सुनायीं—

निःस्व आमि, रिक्त आमि, देबार किछु नाई।
आछे शुधु भालोवासा, दिलाम आमि ताई॥

(मैं निःस्व हूँ, रिक्त हूँ, देने के लिए कुछ नहीं है मेरे पास, केवल प्रेम हैं, वही दिया मैंने) इन पंक्तियों का जादू-का-सा प्रभाव पड़ा जनता पर। पाकिस्तानी अत्याचारी शासकों और उनकी समर्थक साम्राज्यवादी शक्तियों के षड्यंत्र से सावधान रहने का सन्देश देते हुए उन्होंने फिर रवीन्द्रनाथ की पंक्तियाँ उद्धृत कीं—

नागिनीरा दिके दिके फेलितेछे विषाक्त निश्वास,
शान्तिर ललित वाणी, शुनाइबे व्यर्थ परिहास।

जाबार बेलाय ताई, डाक दिये जाइ,
दानवेर साथे जारा संग्रामेर तरे,
प्रस्तुत हतेछे घरे घरे ।

(चारों ओर नागिनें अपने विषाक्त निश्वास छोड़ रही हैं, ऐसे में शान्ति की ललित वाणी व्यर्थ परिहास-सी लगेगी । इसीलिए जाने के समय उन लोगों को हाँक लगाये जाता हूँ जो दानव से संग्राम करने के लिए घर-घर में तैयार हो रहे हैं ।) किस आसानी के साथ यह जन नेता लाखों लोगों के मनोभाव को अभीष्ट दिशा में मोड़ दे सकता है ! अभी कुछ ही मिनटों के पहले जो लोग बंगबन्धु की प्रेमपूर्ण कृतज्ञता पर मुग्ध थे, वे लोग अब साम्राज्यवादी षड्यंत्र का मुकाबला करने के लिए हुँकार रहे थे । अपने उस छोटे से व्याख्यान के द्वारा शेख मुजीब ने जनता की अपेक्षाओं को न केवल पूरा किया बल्कि भारत बांगला देश की जनता के बीच आत्मीयता के सेतु को और दृढ़ भी कर दिया । मेरे मन में एक कसक भी पैदा की उनके व्याख्यान ने, वह कौन-सा शुभ दिन होगा जब हमारे राष्ट्रीय स्तर के नेता अपने व्याख्यानों में अपने साहित्य से ऐसे प्रगाढ़ जीवन्त सम्पर्क का प्रमाण देंगे ।

× × ×

७ फरवरी, १९७२ ! अपराह्न । राजभवन के एक सुसज्जित कक्ष में कलकत्ता कार्पोरेशन की ओर से आयोजित शेख मुजीब का अभिनन्दन । औपचारिकताओं के बाद शेख अपने सहज रूप में आये, बोले, 'मैं तो प्रोटोकोल (कूटनीतिक शिष्टाचार विधान) से परेशान हूँ । कलकत्ता मेरा पुराना शहर है, मेरा छात्र जीवन यहीं बीता है । इसके महल्ले मेरे जाने-पहचाने हैं, यहाँ कितने दोस्त हैं मेरे । इच्छा होती है चुपचाप एक गाड़ी लूँ और निकल पड़ूँ अपनी परिचित सड़कों-गलियों पर । किन्तु सुरक्षा के लिए जिम्मेदार लोग मेरी बात मानते ही नहीं······' और भी बहुत कुछ बोले वे उस दिन, किन्तु मैं यही सोचता रहा कि अपनेपन की चाँदनी छिटकाते चलने में शेख साहब कितने कुशल हैं । तभी वे सारे बांगला देश को अपने पीछे खड़ा कर सके । नेतृत्व के लिए और भी बहुत से गुण होने चाहिएँ आदमी में पर अक्सर वे गुण इतने प्रधान हो उठते हैं कि आदमीयत गायब हो जाती है और नेता में केवल शासन का प्रेम रह जाता है जबकि जनता प्रेम का शासन चाहती है । शेख साहब केवल नेता ही नहीं हैं, आदमी भी हैं, यह सोच कर मुझे बहुत अच्छा लगा ।

× × ×

९ फरवरी, १९७२ ! प्रधान मंत्री भवन, ढाका। डॉ० धर्मवीर भारती, मैं और बालकृष्ण जी शेख मुजीब की बाट जोह रहे हैं। पहले यह भवन प्रेसीडेन्ट्स हाउस कहलाता था। पाकिस्तान के राष्ट्रपति अयूब खाँ या याहिया खाँ जब ढाका आते थे, तब यहीं ठहरते थे। अब यह गणभवन है। प्रधान मंत्री शेख मुजीबुर्रहमान दिन भर कार्यालय में काम करने के बाद सन्ध्या समय देशी-विदेशी अतिथियों को मिलने के लिये यहीं बुला लेते हैं। एक खुशनुमा बगीचे के भीतर यह सुन्दर-सी कोठी पहले निरंकुश आतंक का प्रतीक थी, अब इसके भीतर भी साधारण कार्यकर्ताओं और देशवासियों का प्रवेश निषिद्ध नहीं रहा। शेख साहब रहते तो अब भी धान मंडी वाले अपने पुराने मकान में हैं, यहाँ केवल अनौपचारिक सरकारी काम-काज या भेंट-मुलाकात के लिए आते हैं और भी काफी लोग प्रतीक्षा कर रहें हैं। कुछ गोरी चमड़े वाले भी हैं, पर अधिकतर बंगाली ही हैं। हम लोगों को शेख शाहब के प्रेस-सलाहकार बादशाह ने यहाँ बुला लिया था। बांगला देश के मुक्ति संग्राम की सही तस्वीर को भारतीय जनता के सामने लगातार उपस्थित करते रहने के कारण धर्मयुग के प्रति वह बहुत कृतज्ञ था।

बैठे-बैठें मैं देख रहा हूँ, सामने के कक्ष में प्रसिद्ध विप्लवी स्वर्गीय त्रैलोक्य चक्रवर्ती उर्फ महाराज का चित्र लगा हुआ है। याद आया कि कलकत्ते के अपने व्याख्यान में शेख मुजीब ने कहा था—मेरा तीतू मीर का बंगाल है, मेरा बंगाल सूर्यसेन का बंगाल है, मेरा बंगाल सुभाष बोस का बंगाल है, फजलुलहक का बंगाल है, सुहुरावर्दी का बंगाल है।' फजलुलहक और सुहरावर्दी के चित्र तो स्थान-स्थान पर लगे दिखे थे किन्तु त्रैलोक्य चक्रवर्ती का चित्र प्रधान मंत्री भवन में देखकर लगा कि असाम्प्रदायिकता की स्वीकृति वास्तविक है।

शेख मुजीब क्या आये, हलचल की लहर-सी आ गयी। आगन्तुकों के प्रति सद्भावना व्यक्त करते हुए शेख साहब अपने कक्ष में चले गये। फिर मुलाकातें शुरू हुईं। यथासमय हम लोगों की बारी भी आयी। भारती जी और मैं काफी तैयारी के साथ अपने-अपने प्रश्न सजाकर ले गये थे लेकिन शेख साहब ने सवाल-जबाव की भूमिका स्वीकार ही नहीं की। धर्मयुग के बारे में बादशाह उन्हें बता चुका था, कुछ अंक भारती जी अपने साथ ले गये थे। उन्हे देखकर वे बहुत प्रभावित हुए। धर्मयुग को विशेषतः और भारतीय पत्रों को सामान्यतः उन्होंने बांगला देश के प्रति अपना कर्तव्य निभाने के लिए हृदय से धन्यवाद दिया, उनका आभार माना।

उन्होंने फिर बताना शुरू किया कि किस प्रकार नये बांगला देश के निर्माण का कार्य हजारों बाधाओं और कमियों के बावजूद चालू है राष्ट्रीयता, धर्मनिरपेक्षता, लोकतंत्र और समाजवाद के आधार पर भारत और बांगला देश की मैत्री निरन्तर बढ़ती जायेगी, इनमें उन्हें कोई सन्देह नहीं था। उनका दावा था कि हमारी संस्कृति के मूल में ही मानवता के तत्त्व निहित हैं। चंडीदास की प्रसिद्ध पंक्ति "सबार उपरे मानुष सत्य ताहार उपरे नाई" (सबसे उपर की सच्चाई मनुष्य है, उसके उपर कुछ नहीं है) को उद्धृत करते हुए उन्होंने कहा कि हमारी प्रेरणा का स्रोत यहीं है। धाराप्रवाह बोले जा रहे थे और हम लोग अधिकतर सुन रहे थे। बीच-बीच में कभी-कभी हम लोग कुछ पूछ लेते थे। केवल बालकृष्ण जी ने अपने कैमरे को एक क्षण के लिए भी विश्राम नहीं दिया।

हम लोग चाहते थे कि बातचीत को सामान्य से विशेष समस्याओं और प्रश्नों की ओर ले जायें किन्तु समय का बहुत अभाव था। इंगलैंड का व्यापारिक शिष्टमंडल प्रतीक्षा कर रहा था। जब शेख साहब के व्यक्तिगत सचिव दो-तीन बार आकर चक्कर काट गये तो उन्होंने हम लोगों से क्षमा माँगी और कहा कि कुछ दिनों बाद यदि आप लोग आयें जब कि देश की स्थिति कुछ और मजबूत हो जाये, तो आप लोगों को भरपूर समय दूँगा। हम लोग अतृप्ति का अनुभव करते हुए उठे।

१० फरवरी, १९७२ ! प्रातःकाल आठ बजे। शेख मुजीब का धानमंडी स्थित निवासस्थान। मैं २७ दिसम्बर को भी इस बँगले में आया था। तब यह उजड़ा हुआ था। पाकिस्तानी फौजियों की लूटमार के चिह्न, गोलियों के निशान ज्यों-के त्यों थे। अब इसकी मरम्मत हो गई है। जंगल से हो गये छोटे से बगीचे को फिर से ठीक किया जा रहा है। यहाँ प्रधान मंत्री भवन की-सी राजकीय व्यवस्था के स्थान पर सहज पारिवारिकता है। तीस, पैंतीस व्यक्ति (अधिकतर निम्न मध्यवर्ग के) जमा थे, कुछ महिलायें भी थीं। मालूम हुआ शेख साहब प्रतिदिन कार्यालय जाने के पहले यहाँ लोगों से मिलते हैं। ढाका और मुफस्सिल से आये हुए लोग अपनी तकलीफें, समस्यायें सुनाते हैं। शेख साहब यदि उनके बारे में कुछ व्यवस्था करना आवश्यक समझते हैं तो यहीं कर देते हैं या उनके सचिव उनकी शिकायत दर्ज कर लेते हैं। यह सुखद अनुभव था कि प्रधान मंत्री हो जाने बाद भी जनसाधारण से सीधा

सम्पर्क शेख साहब ने बना रक्खा है। नौकरशाही इसे ठीक नहीं मानती। कई ऊँचे अधिकारियों ने मुझसे बाद में बताया कि शेख साहब का बहुत-सा समय छोटी-छोटी वार्ता में चला जाता है और बड़ी समस्याओं के लिये वे यथेष्ट समय नहीं दे पाते। यह अभियोग ठीक हो सकता है किन्तु आधार से कट कर देश को अभीष्ट दिशा नहीं दी जा सकती, इसे जन-नेता अच्छी तरह जानते हैं।

भारती जी की इच्छा थी कि शेख साहब का एक पारिवारिक चित्र धर्मयुग के लिये ले लिया जाये। बादशाह ने कहा था कि आप लोग धानमंडी आ जाइये, यदि शेख साहब को समय हुआ तो चित्र उतार लीजियेगा। इतनी भीड़ देखकर हम लोग जरा संकुचित हो गये पर प्रतीक्षा करते रहे।

साढ़े आठ बजे के करीब शेख साहब नीचे उतरे। लोगों ने उन्हें घेर लिया। वे किसी नौजवान की पीठ थपथपा कर उसका हाल-चाल पूछने लगे, किसी बूढ़े मियाँ को सलाम कर अदब से बातें करते रहे। किसी समवयस्क से बन्धुत्व भरे लहजे में कुछ दर्याफ़्त करते रहे। राजकीय व्यवधान दिखा ही नहीं। एक तरुणी विधवा अपनी गोदी के बच्चे को लेकर आयी थी। उसका पति पाक फौजी दरिन्दों का शिकार हो गया था। उससे बातें करते हुए शेख साहब रो पड़े, उसे धीरज बँधाया और मदद का बचन दिया। हम लोगों को देखकर वे बोले मुझे दुःख है कि मैं रुक नहीं सकता आप लोग चाहें तो परिवार के अन्य लोगों की तस्वीरें उतार लें। हम लोग देख ही रहे थे उनकी व्यस्तता, क्या बोलते। पर बेगम मुजीब ने बिगड़ी बात बना दी। शेख साहब की बिटिया हसीना वहीं खड़ी थी। पिछली बार मैंने उसका इन्टरव्यू लिया था। वह मुझे देखते ही पहचान गई। मैंने उसे धर्मयुग का वह अंक दिखाया जिसमें मुजीब परिवार की सचित्र भेंट-वार्ता छपी थी। वह खुश हुई। माँ को वह अंक दिखाने और चित्र उतरवाने का अनुरोध करने वह ऊपर गई, थोड़ी देर में नीचे आकर बोली, 'माँ अकेले तस्वीर उतरवाने के लिये राजी नहीं हैं, अब्बा डेढ़ बजे के करीब खाना खाने आयेंगे, उस समय यदि आप लोग आयें तो परिवार की तस्वीरें उतारी जा सकेंगी।' हम लोग बहुत खुश हुए।

डेढ़ बजे के स्थान पर पौने तीन बजे लौटे शेख साहब। चेहरे और चाल से ही थकावट और चिन्ता झलक रही थी। हम लोगों को देखते ही अचरज भरे स्वर में बोले, यू आर स्टिल वेटिंग······(आप लोग अभी तक प्रतीक्षा कर रहे हैं······) मैंने कहा, 'क्या करते, बेगम साहिबा बोलीं

कि वे अकेले चित्र उतरवायेंगी ही नहीं, उन्होंने ही डेढ़ बजे बुलाया था, अतः हम लोग आप की राह देख रहे थे। वे जरा-सी दुविधा में पड़े, बोले चलिये, फिर तस्वीरें उतार ही लीजिये। फिर बोले, जरा-सा रुकिये, मैं आप लोगों को अभी ऊपर बुलवा लेता हूँ।

दस मिनट बाद बादशाह आकर हम लोगों को उपर ले गया। शेख साहब और बेगम मुजीब ने हँसते हुए हम लोगों का स्वागत किया। शेख साहब बोले, धर्मयुग तो मेरे पूरे परिवार के चित्र पहले ही छाप चुका है। भारती जी ने कहा पर आपके साथ तो नहीं। वे मुस्कराये। बालकृष्ण जी का शास थोड़े से समय के लिये सर्वोपरि हो गया। शेख प्रसन्न थे। उन्होंने कई चित्रों के लिए पोज दिये। बेगम मुजीब भी खुश थीं। बालकृष्ण जी ने जब उनसे कहा कि घर का काम-काज करते समय का आप का एक चित्र मैं लेन चाहता हूँ तो वे शेख साहब का पाइप साफ करने लगीं। मुजीब परिवार में बड़प्पन का दंभ दिखा ही नहीं। सहज रूप में स्नेहपूर्ण व्यवहार परिवार के सभी लोग हम लोगों से करते रहे। भारत-बांगला देश की मैत्री की मंगल-कामना कर हम लोगों ने शेख साहब से विदा ली।

शेख साहब का कितना प्रचंड प्रभाव बाँगला देश की जनता पर है, बिना बांगला देश गये, इसका अनुमान नहीं किया जा सकता। घर-घर में उनके चित्र हैं। साधारण जनता का उन पर अथाह विश्वास है। अवामी लीग के कार्यकर्ताओं ने बताया कि वे अधिकांश कार्यकर्ताओं को नाम से जानते हैं, उनके व्यक्तिगत सुख-दुःख की खबर भी रखते हैं। औसत बंगालियों से सवाये-लम्बे, दुहरे बदन और साँवले प्रभावी मुखमंडल वाले शेख, पायजामा, कुर्ता, काली वास्केट और उत्तरीय में बहुत फबते हैं। उनके चेहरे पर दृढ़ता भी है और सौम्यता भी। उनकी आँखों में आग भी है और पानी भी। बंगाली मध्य-वर्गीय भावुकता और भद्रता उनके व्यवहार में ओत-प्रोत है। वे जो बोलते हैं हृदय से बोलते हैं, स्पष्ट और दृढ़भाषा में बोलते हैं। उनके जैसे ओजस्वी वक्ता बहुत कम होंगे।

अपनी जनता के साथ एक होकर उन्होंने दुख झेला है, संघर्ष किया है। विजय पायी है। इस समय वे व्यक्ति से अधिक बांगला देश की आशा-आकांक्षाओं के प्रतीक हो गये हैं। यदि वे अपनी शक्ति का दुरुपयोग करें, तो अनायास ही डिटेक्टर हो जा सकते हैं। अवामी लीग में या उसके बाहर भी

उनकी क्षमता को चुनौती देने वाला कोई दूसरा नहीं है। किसी भी देश में जब एक ही व्यक्ति के हाथों में सारी सत्ता केन्द्रित हो जाती है, तो लोकतन्त्र जाने-अनजाने खतरे में पड़ जाता है। मुजीब एक परीक्षा में उत्तीर्ण हुए हैं, विरोधी नेता और स्वाधीनता-समर के सेनानी के रूप में वे चिरस्मरणीय रहेंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं। अब शान्तिकाल में देश के पुनर्निर्माता के रूप में, लोकतंत्र के प्रतिष्ठाता के रूप में वे वैयक्तिक, पारिवारिक और दलीय स्वार्थों से ऊपर उठकर बांगला देश के भविष्य की नींव कितनी सुदृढ़ता के साथ रख पाते हैं, इसकी ओर सारी दुनिया की आँखें लगी हुई हैं।

विश्व की कोटि-कोटि स्वाधीनताप्रेमी जनता की और मेरी भी शुभ-कामनाएँ उनके साथ हैं।

परिशिष्ट

बांगला देश की क्रांति की महत्वपूर्ण घटनाओं का तिथिक्रम

फरवरी १९७१	जेनरल यहिया खान द्वारा 'नेशनल एसेम्बली' के अधिवेशन के लिए ३ मार्च का दिन निश्चित।
१५ फरवरी १९७१	'पीपुल्स पार्टी' के चेयरमैन श्री भुट्टो ने घोषणा की कि उनकी पार्टी 'नेशनल एसेम्बली' का बहिष्कार करेगी।
१ मार्च १९७१	पाकिस्तान के राष्ट्रपति द्वारा अनिश्चित काल के लिए 'नेशनल एसेम्बली' का अधिवेशन स्थगित।
३ मार्च १९७१	शेख मुजीबुर्रहमान के नेतृत्व में अहिंसात्मक असहयोग आंदोलन प्रारंभ, जो जनता के प्रबल सहयोग के कारण शीघ्र ही सारे देश में फैल गया।
६ मार्च १९७१	जनरल यहिया खान ने पुनः २५ मार्च का दिन अधिवेशन के लिए निश्चित किया।
७ मार्च १९७१	शेख मुजीब द्वारा वर्त्तमान संग्राम बांगला देश की मुक्ति का संग्राम घोषित।
१५ मार्च १९७१	जेनरल यहिया खान कुछ अन्य जेनरलों के साथ ढाका आये ताकि राजनीतिक नेताओं से वार्ता प्रारंभ की जा सके। वार्त्ता की प्रगति के साथ-साथ पाकिस्तानी सैनिकों को पूर्व बंगाल में भेजा जाने लगा ताकि अचानक आक्रमण कर पूर्व बंगाल को कुचल दिया जाये।
२२ मार्च १९७१	तीसरी बार अधिवेशन स्थगित।
२५ मार्च १९७१	पाकिस्तानी सेना बिना किसी चेतावनी के निहत्थी जनता पर टूट पड़ी। टैंकों, जेट लड़ाकू विमानों एवं आटोमैटिक शस्त्रास्त्रों द्वारा पाकिस्तानी सेना ने पूर्व बंगाल की जनता का कत्ल-ए-आम आरंभ किया। हजारों व्यक्ति मारे गए। बांगला देश के बड़े शहरों के अनेक हिस्से आग की लपटों में जलते रहे।
,, ,,	मध्य रात्रि में बंगबंधु शेख मुजीबुर्रहमान को उनके धानमंडी के निवास स्थान से गिरफ्तार कर लिया गया।

	इसके अतिरिक्त पाकिस्तान सेना ने उनके निवास स्थान को बुरी तरह तोड़-फोड़ कर अस्त-व्यस्त कर डाला।
२५ मार्च १९७१	हत्याकांड का प्रारम्भ कर जेनरल यहिया खान वायुयान द्वारा कराची चले गये।
२६ मार्च १९७१	जेनरल यहिया खान ने मार्शल लॉ के नए मानदंड घोषित किये :—राजनीतिक कार्यक्रमों पर पूर्ण प्रतिबंध प्रेस की स्वतंत्रता प्रतिबंधित शिक्षण संस्थाएँ बंद, बैंकों के समस्त कार्य बन्द एवं सभी खातों का लेन-देन अवरुद्ध।
,, ,,	पाकिस्तानी सेना की नृशसता पूर्ववत्…विभिन्न अंचलों का प्रशासन अस्त-व्यस्त। सारे विश्व द्वारा पाकिस्तानी सेना की नृशंस बर्बरता की निन्दा।
,, ,,	बांगला देश की मुक्तिवाहिनी द्वारा संचालित स्वाधीन बांगला देश रेडियो के प्रसारण द्वारा यह घोषणा कि बांगला देश स्वाधीन एवं सार्वभौम सत्ता सम्पन्न राष्ट्र है।
३१ मार्च १९७१	भारतीय लोकसभा ने प्रस्ताव पारित कर बांगला देश की संघर्षशील जनता के प्रति अपनी संहति एवं सहानुभूति व्यक्त की।
१ अप्रैल १९७१	सोवियत राष्ट्रपति निकोलाई पोदगोर्नी द्वारा रक्तपात एवं दमन बन्द करके शांतिपूर्ण राजनीतिक समझौते के लिए आवश्यक कदम उठाने की सलाह।
१० अप्रैल १९७१	बांगला देश के निर्वाचित प्रतिनिधियों ने संविधान सभा के रूप में अपना संघटन किया एवं पारस्परिक मंत्रणा के पश्चात् बांगला देश की जनता को समानता, मानवीय गरिमा एवं सामाजिक न्याय की सुरक्षा प्रदान करने के लिए बांगला देश को सार्वभौम सत्ता सम्पन्न प्रजातन्त्र घोषित कर शेख मुजीब द्वारा पहले ही की गयी स्वाधीनता की घोषणा की पुष्टि की। इसी दिन मंत्रिमंडल का गठन हुआ एवं शेख मुजीब को बांगला देश का राष्ट्रपति चुना गया।

१३-१७ मई १९७१	विश्व-शांति सभा द्वारा आयोजित 'बुडापेस्ट विश्व शांति सभा' ने अपना पूर्ण समर्थन बांगला देश के लिए व्यक्त किया ।
१ जून १९७१	संयुक्त राष्ट्र संघ के महासचिव ने पहली बार कहा कि पूर्व बंगाल की घटनाएँ मानव इतिहास की दुःखद कथा है ।
३ जून १९७१	मुक्तिवाहिनी का गुरिल्ला युद्ध तीव्रता से आरंभ हुआ ।
६ जून १९७१	बांगला देश के कार्यकारी राष्ट्रपति ने राजनीतिक समझौते की शर्तें घोषित की : (क) सर्वसत्ता सम्पन्न बांगला देश को मान्यता, (ख) शेख मुजीब की मुक्ति, (ग) पाक सेना की वापसी, (घ) पाक सेना के अत्याचारों की क्षतिपूर्ति ।
२९ जून १९७१	एडवर्ड केनेडी ने अमेरिका द्वारा पाकिस्तान को दी जाने वाली सैन्य सहायता को रोकने का प्रयास किया ।
३० जून १९७१	कनाडा ने पाकिस्तान को दिए जाने वाले शस्त्रों के नौपरिवहन के लिए घाटबंदी लागू की ।
१ जुलाई १९७१	ब्रिटिश पार्लियामेंट के शिष्ट मंडल ने कहा कि शेख मुजीब से समझौता वार्त्ता ही एकमात्र समाधान है ।
१३ जुलाई १९७१	विश्व बैंक के शिष्ट मंडल ने पाकिस्तान को दी जाने वाली सहायता बन्द करने की घोषणा की, एवं पाकिस्तानी सेना की नृशंसता का वर्णन किया ।
८ सितम्बर १९७१	बांगला देश सरकार को मुक्ति-संघर्ष के विषय में परामर्श देने के लिए एक संयुक्त परामर्शक समिति का गठन हुआ ।
१३ सितम्बर १९७१	सत्रहवीं 'कामनवेल्थ पार्लियामेंट्री एसोसिएशन' ने कुआलालमपुर में आयोजित एक सभा में बांगला देश में सेना के अत्याचारों की कटु निन्दा की ।
२५ सितम्बर १९७१	संयुक्त राष्ट्र संघ के सामने प्रदर्शन कर माँग की गयी कि बांगला देश को मान्यता दी जाय, शेख मुजीब को मुक्त किया जाय एवं यहिया प्रशासन को कोई सहायता न दी जाय ।
४ अक्टूबर १९७१	यू० एन० ओ० की बहस में गायना, सिर्रालिओन, नेदरलैंड, आर्जेन्टिना एवं आस्ट्रिया ने बांगला देश के शर-

	णार्थियों से सम्बन्धित समस्याओं को उठाया ।
८ नवम्बर १६७१	सिनेटर एडवर्ड केनेडी ने अमेरिकन सरकार से अनुरोध किया कि अन्तर्राष्ट्रीय रेडक्रास के प्रतिनिधियों को अवि-लंब पश्चिमी पाकिस्तान में नजरबन्द शेख मुजीब के पास भेजने की व्यवस्था की जाये ।
४ दिसम्बर १६७१	पाकिस्तान द्वारा भारत के विरुद्ध युद्ध घोषित ।
६ दिसम्बर १६७१	भारत ने बांगला देश को पूर्ण मान्यता दी ।
७ दिसम्बर १६७१	भूटान ने बांगला देश को औपचारिक कूटनीतिक मान्यता प्रदान की ।
१६ दिसम्बर १६७१	बांगला देश-पूर्ण स्वतन्त्र हुआ । भारतीय सेना एवं बांगला देश की मुक्तिवाहिनी की संयुक्त कमान के सम्मुख पाकिस्तानी सेना ने औपचारिक आत्म समर्पण किया ।
२२ दिसम्बर १६७१	अंतरिम मंत्रिमंडल मुजीब नगर से ढाका आया ।
१० जनवरी १६७२	पाकिस्तानी कैद से मुक्त होकर राष्ट्रपिता बंगबंधु शेख मुजीबुर्रहमान लंदन से दिल्ली होते हुए स्वदेश लौटे ।
११ जनवरी १६७२	जर्मन जनवादी गणतंत्र ने बांगला देश को औपचारिक मान्यता दी ।
१२ जनवरी १६७२	बंगबंधु शेख मुजीब ने बांगला देश सरकार के प्रधान मंत्री पद की शपथ ग्रहण की ।
१४ दिसम्बर १६७२	बांगला देश का संविधान स्वीकृत हुआ ।
१६ दिसम्बर १६७२	बांगला देश का नया संविधान समूचे देश पर लागू किया गया ।
७ मार्च १६७३	स्वाधीन बांगला देश के पहले आम चुनाव में शेख मुजीबुर्रहमान के नेतृत्व में अवामी लीग की शानदार जीत ! ३०० सीटों में २६२ सीटों पर अवामी लीग के उम्मीदवार जीते (१ सीट के लिए चुनाव होना बाकी है ।)
१६ मार्च १६७३	शेख मुजीबुर्रहमान के प्रधान मंत्रित्व में बांगला देश की नयी सरकार का गठन ।

१२ फरवरी १९६६ को घोषित अवामी लीग की छः सूत्री माँग

(१) पाकिस्तान का संविधान संघात्मक होना चाहिए, जिसमें संसदीय प्रणाली की सरकार की व्यवस्था हो और विधायिका सभा बालिग मताधिकार के आधार पर सीधे चुनावों द्वारा चुनी जाये।

(२) संघ के हाथ में सिर्फ प्रतिरक्षा और विदेशी मामले हों।

(३) अ—दोनों क्षेत्रों के लिए दो अलग-अलग करेंसी हों, जिनका एक दूसरे में बेरोक-टोक विनिमय हो सकता हो, या

ब—विकल्प के रूप में दोनों देशों की एक ही करेंसी हो, बशर्ते कि पूर्वी क्षेत्र से पश्चिमी क्षेत्र की पूँजी के पलायन के खिलाफ कानूनी बंदिशें रखी जायें।

(४) कर लगाने और राजस्व वसूली के अधिकार संघ में शामिल राज्यों के पास रहें, केन्द्रीय खर्च का प्रबन्ध राज्यों के करों में से केन्द्र के निर्धारित हिस्से से हो।

(५) पूर्वी और पश्चिमी पाकिस्तान के लिए विदेशी मुद्रा के दो अलग-अलग खाते रखे जायें, संघ सरकार की जरूरतें दोनों क्षेत्रों द्वारा बराबर अनुपात में पूरी की जायें या उस किसी निश्चित आधार पर, जिस पर दोनों सहमत हों।

(६) प्रतिरक्षा के मामलों में पूर्व पाकिस्तान आत्मनिर्भर हों। पूर्वी क्षेत्र में एक गोला-बारूद का कारखाना तथा एक सैनिक अकादमी स्थापित की जाए। संघ की नौसेना का मुक़ाम पूर्वी पाकिस्तान में स्थित हो।

शेख मुजीबुर्रहमान का ७ मार्च १९७१ का ऐतिहासिक भाषण

आज दुःख-भाराक्रान्त मन लेकर आप लोगों के सामने हाजिर हुआ हूँ। आप सभी जानने एवं समझते हैं। हम लोगों ने अपना जीवन देकर प्रयास किया है—आज ढाका, चट्टग्राम, खुलना, रंगपुर एवं जैसोर के राजपथ हमारे भाइयों के रक्त से रँग गए हैं।

आज बंगाल की जनता मुक्ति चाहती है, जीवन चाहती है, अधिकार चाहती है। शासनतंत्र की रचना के लिए आप लोगों ने मुझे और अवामी लीग को निर्वाचन में सम्पूर्णतः सहयोग एवं वोट देकर विजयी किया था। आशा थी कि राष्ट्रीय परिषद् बैठेगी, हम लोग शासनतंत्र तैयार करेंगे और इस शासनतंत्र में मनुष्य अर्थनैतिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में स्वतंत्र होगा।

किन्तु २३ वर्षों का इतिहास बंगाल के मनुष्यों के रक्त से राजपथ रंजित करने का इतिहास है। २३ वर्ष का इतिहास बंगाल के निवासियों के मुमुर्ष आर्त्तनाद का इतिहास है, रक्त-दान करने का इतिहास है। निर्यातित मनुष्यों के रोदन का इतिहास है।

१९५२ में भी हमने रक्त दिया था। १९५४ साल के निर्वाचन में विजयी हो कर भी हमें क्षमता एवं शासन का अधिकार नहीं मिला। १९५८ साल में देश में सैनिक शासन जारी कर अयूब खान ने दस वर्षों तक हमें गुलाम बनाए रखा। १९६६ में ६ सूत्री कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया, किन्तु इस अपराध के कारण हमारे अनेक भाइयों की हत्या की गई। १९६९ में गण आंदोलन के कारण अयूब खान का पतन हुआ। इनके बाद यहिया खान आए। उन्होंने कहा कि वे जन साधारण के हाथों में अधिकार सौंप देंगे, शासन तंत्र देंगे, हमने मान लिया।

उसके बाद की घटना सभी जानते हैं। यहिया खान से वार्त्ता हुई—हमने १५ फरवरी को राष्ट्रीय परिषद् का अधिवेशन बुलाने का अनुरोध किया। किन्तु बहुसंख्यक दल के नेता होने के बावजूद उन्होंने मेरी बात नहीं सुनी।

उन्होंने बात सुनी अल्पसंख्यक दल के नेता भुट्टो साहब की। मैं केवल बंगाल की बहुसंख्यक पार्टी का नेता नहीं हूँ। समग्र पाकिस्तान की सबसे बड़ी पार्टी का नेता हूँ। भुट्टो साहब ने कहा—मार्च के प्रथम सप्ताह में अधिवेशन बुलाया जाय, उन्होंने मार्च की ३ तारीख को अधिवेशन बुलाया।

मैंने कहा कि तब भी हम लोग राष्ट्रीय परिषद् के अधिवेशन में जायेंगे। संख्यागरिष्ठ दल होने के बावजूद यदि कोई न्याय-संगत बात कहेगा, तो हम लोग मान लेंगे चाहे वह एक ही व्यक्ति हो।

जनाब भुट्टो ढाका आए। उनके साथ वार्त्ता हुई। भुट्टो साहब कह गए कि वार्त्ता का द्वार बंद नहीं है, और वार्त्ता होगी। मौलाना नूरानी और मुफ्ती महमूद के साथ पश्चिम पाकिस्तान के अन्यान्य पार्लियामेंट्री नेता आए, उनके साथ भी वार्त्ता हुई। उद्देश्य था—आलाप-आलोचना द्वारा शासनतंत्र की रचना की जायगी। पर उन्हें मैंने बता दिया कि ६ सूत्रों में परिवर्तन करने का मुझे अधिकार नहीं, यह जनगण की संपदा है।

किन्तु भुट्टो साहब ने धमकी दी। उन्होंने कहा, यहाँ आकर डबल जिम्मी नहीं बन सकते। परिषद् कसाईखाने में परिवर्तित होगा। उन्होंने पश्चिमी पाकिस्तानी सदस्यों को धमकी दी कि परिषद् के अधिवेशन में योग देने पर रक्तपात किया जायगा। उनका माथा तोड़ दिया जायगा। हत्या की जायगी। पेशावर से कराची तक आंदोलन किया जायगा। एक भी दूकान नहीं खुलने दी जायगी।

किन्तु फिर भी पैंतीस पश्चिमी पाकिस्तान के सदस्य आये। किन्तु यहिया खान ने १ मार्च को परिषद् का अधिवेशन बंद कर दिया। दोष दिया गया, बंगालियों को, दोष दिया गया मुझे, कहा गया—मेरे अनम्य मनोभाव के कारण ही कुछ न हो सका। इसके बाद बंगाली प्रतिवाद मुखर हो उठे। मैंने शांति-पूर्ण संग्राम चलाने के लिए हड़ताल का आह्वान किया। जनगण अपनी इच्छा से सड़कों पर उतर आये।

किन्तु क्या मिला हमें ? बंगाल की निरस्त्र जनता पर अस्त्र-प्रहार किया गया। हमारे हाथों में अस्त्र नहीं है। किन्तु हमने पैसा देकर जो शस्त्र खरीद दिए थे, बहिशत्रुओं से देश की रक्षा के लिए आज उन्हीं अस्त्रों का व्यवहार हमारे निरीह भाइयों की हत्या के लिए किया जा रहा है। हमारी दुखी जनता पर गोली चलाई जा रही है।

हमारे बंगाल के बहुसंख्यक लोगों ने जब भी देश का शासन-भार ग्रहण करना चाहा, षड्यंत्र शुरू हो गए, हम पर वे लोग टूट पड़े।

यहिया खान बोले हैं कि मैं १० मार्च की गोलमेज बैठक में योगदान देना चाहता हूँ, उनके साथ टेलीफोन पर मेरी बात हुई है। मैंने उनसे कहा कि आप देश के प्रेसीडेन्ट हैं, ढाका आइए, देखिए हमारी गरीब जनता की किस प्रकार हत्या की गई है, हमारी माताओं की गोद किस तरह खाली की गई है।

मैंने पहले ही कह दिया था कि कोई गोलमेज बैठक नहीं होगी। किस बात की गोलमेज बैठक ? किस की गोलमेज बैठक ? जिन्होंने हमारी माँ-बहनों की गोद खाली की है, उनके साथ मैं बैठूंगा, गोलमेज बैठक में ? तीसरी तारीख को पलटन मैदान में मैंने असहयोग का आह्वान किया, कहा—आफिस-अदालत, खजाना-टेक्स बंद करो। आप लोगों ने मान लिया।

हठात् मुझसे अथवा हम लोगों से वार्त्ता न करके एक व्यक्ति के साथ पाँच घंटा वार्त्ता करने के बाद यहिया खान ने जो वक्तृता दी। उसके अनुसार सारा दोष मुझ पर और बंगलावासियों पर डाल दिया गया है। गलती की भुट्टो ने; किन्तु गोली-वर्षा से मारा गया बंगालियों को। हम गोली खाते हैं, और दोष हमारा है—हम बुलेट खाते हैं, दोष हमारा है।

यहिया साहब ने अधिवेशन बुलाया है; किन्तु मेरी शर्त्त है कि पहले फौजी कानून का प्रत्याहार करना होगा, सेनाओं को बैरकों में वापस करना होगा और जनगण के प्रतिनिधियों को क्षमता सौंप देनी होगी। इसके बाद विवेचना करके देखूंगा कि परिषद् में भाग लूँ या नहीं। इन बातों को मानने के पहले परिषद् में भाग लेने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। जनगण ने मुझे यह अधिकार नहीं दिया। रक्त के दाग अब तक सूखे नहीं हैं, शहीदों के रक्त की अवमानना कर २५ तारीख को परिषद् में भाग लेने नहीं जाऊँगा।

भाइयो, मुझ पर विश्वास है ? मैं प्रधानमंत्रित्व नहीं चाहता, मानव-अधिकार चाहता हूँ। प्रधानमंत्रित्व का लोभ दिखा कर वे लोग मुझे खरीद नहीं पाये, फाँसी का भय दिखा कर भी नहीं खरीद सके। आप लोगों ने रक्त देकर मुझे षड्यंत्र के मामले से मुक्त कराया था। उस दिन इसी रेडक्रास में मैंने कहा था, रक्त का ऋण मैं रक्त देकर उतारूँगा, याद है ? आज भी मैं रक्त देकर रक्त का ऋण उतारने को प्रस्तुत हूँ।

मैं कह देना चाहता हूँ, आज से कोर्ट कचहरी, हाई कोर्ट, सुप्रीम कोर्ट, ऑफिस, अदालत, शिक्षा-प्रतिष्ठान समूह अनिर्दिष्ट काल के लिए बंद रहेंगे। कोई भी कर्मचारी आफिस नहीं जायेगा। यह मेरा निर्देश है।

गरीबों को कष्ट न हो इसलिए रिक्शा चलेगा, ट्रेन चलेगी और सब चलेगा। ट्रेन चलेगी, पर सेना को लाने ले जाने का काम नहीं होगा। ऐसा यदि किया गया तो होनेवाली दुर्घटना का उत्तरदायित्व मुझ पर नहीं होगा। सेक्रेटेरियट, सुप्रीम कोर्ट, हाई कोर्ट, सह सरकारी, अर्द्धसरकारी एवं स्वायत्त-शासित संस्थाएँ बंद रहेंगी। केवल पूर्व बंगाल में आदान-प्रदान के लिए बैंक आदि दो घंटे के लिए खुले रहेंगे। पूर्व बंगाल से पश्चिम पाकिस्तान में रुपया नहीं जा सकेगा।

टेलीग्राम, टेलीफोन बांगला देश के भीतर चालू रहेंगे। पर पत्रकार बाहरी दुनिया में संवाद भेज सकेंगे।

इस देश के मनुष्यों को खत्म किया जा रहा है, सोच-समझ कर चलिये। आवश्यकता पड़ने पर सारे चक्के बंद कर दिये जायेंगे।

आप लोग निर्धारित समय पर वेतन ले आइयेगा। यदि एक भी गोली चले, तो बंगाल के घर-घर को दुर्ग बना दीजिएगा। जिसके पास जो भी हो उसी को लेकर शत्रु का मुकाबला करना होगा। रास्ते, घाट बंद कर देने होंगे। हम लोग उनका खाना-पीना बन्द कर उन्हें मारेंगे। हुक्म देने के लिए यदि मैं न रहूँ, मेरे सहकर्मी न रहें, तो भी आप लोग आन्दोलन चलाते जाइयेगा।

तुम लोग हमारे भाई हो, तुम लोग बैरक में रहो कोई कुछ नहीं कहेगा। गोली चलाने पर अब ठीक नहीं होगा। सात करोड़ मनुष्यों को अब दबा कर नहीं रख सकते। बंगालियों ने मरना सीखा है, उन्हें कोई दबा नहीं सकेगा।

शहीदों और आहतों के परिवारों के लिए अवामी लीग ने सहायता कमेटी गठित की है। हम लोग सहायता की चेष्टा करेंगे। आप लोगों से जो संभव हो दे जाइयेगा।

सात दिनों की हड़ताल में जिन श्रमिकों ने भाग लिया था कर्फ्यू के कारण काम नहीं कर पाए, उद्योगपति उनका पूरा वेतन दे दें।

सरकारी कर्मचारियों से कहता हूँ, मैं जो कह रहा हूँ मानना होगा। किसी को आफिस में न देखा जाय। इस देश की मुक्ति न होने तक लगान, टैक्स वगैरह बंद रहेगा। आप लोग मुझ पर छोड़ दें, आंदोलन किस प्रकार किया जाता है—यह मुझे मालूम है।

किन्तु होशियार! एक बात याद रखिए हम लोगों के बीच शत्रु घुस आये हैं, छद्मवेश में। वे गृहकलह कराना चाहते हैं। बंगाली, अबंगाली, हिन्दू, मुसलमान सभी हमारे भाई हैं, उनकी रक्षा का दायित्व हमारा है। रेडियो,

टेलीविजन, संवाद पत्र यदि हमारे आन्दोलन के समाचार का प्रचार नहीं करे, तो एक भी बंगाली रेडियो या टेलीविजन में नहीं जाय।

शांतिपूर्ण ढंग से फैसला होने पर भाई-भाई की तरह रहने की संभावना है अन्यथा नहीं। ज्यादती मत कीजिये, नहीं तो दुआ-सलाम भी बन्द हो जा सकता है।

प्रस्तुत रहिये, ठंडे हो जाने से काम नहीं चलेगा। आन्दोलन और विक्षोभ चलाते जाइये। आन्दोलन में ढिलाई आने पर वे हम पर टूट पड़ेंगे। अनुशासन बनाये रखिए। अनुशासन को छोड़ कर कोई जाति संग्राम में विजयी नहीं हो सकती।

मेरा अनुरोध है प्रत्येक ग्राम, मुहल्ले, यूनियन में अवामी लीग के नेतृत्व में संग्राम समिति बनाइए। हाथ में जो है। उसी को लेकर प्रस्तुत रहिए। रक्त जब दिया है तो और देंगें। इन्शाअल्ला! मैं इस देश के मनुष्यों को मुक्त करके रहूँगा। इस बार का संग्राम मुक्ति का संग्राम है, इस बार का संग्राम स्वाधीनता का संग्राम है।

जय बांगला!

बांगला देश के सम्बन्ध में कुछ सामान्य ज्ञातव्य तथ्य

संवैधानिक नाम—गण प्रजातंत्री बांगला देश

अवस्थिति—	अक्षांश २०·७५° और २५·७५° के बीच, देशांतर २०·७५° और २०·७५° और २५·७५° देशांतर ८८·३०° और ९१·७५° पूर्व।
क्षेत्रफल—	५५,१२६ वर्गमील।
सीमा—	उत्तर पश्चिम—बंगाल और आसाम (भारत), दक्षिण—बर्मा और बंगाल की खाड़ी, पूर्व –आसाम (भारत) और बर्मा, पश्चिम—प. बंगाल और बिहार (भारत)।
जलवायु—	न्यूनतम तापमान (जनवरी में) ४९·६०° फा० से ५६·२०° फा० जुलाई में १७·९° फा० से ७८·६° फा०। अधिकतम तापमान (जनवरी में) ७५·४° फा० से ७८·४° फा० और (जुलाई में) ८५·९° फा० से ८९° फा०। वार्षिक तापमान ५७° फा० से ८०°।
वर्षा—	निम्नतम ४७·९″ उच्चतम २२५·७६″
राजधानी—	ढाका (क्षेत्रफल १०० वर्गमील)
जनसंख्या—	कुल योग ५,०८,४०,२३५ (१९६१ की गणना के अनुसार) [वर्तमान अनुमानित जनसंख्या—७,५०,००,०००]
	मुसलमान—४,०८,९०,४८१।
	हिन्दू— ९३,७९,६६१।
	बौद्ध— ३,७३,८६७।
	ईसाई— १,४८,९०३।

राष्ट्रभाषा— बँगला (अंग्रेजी व्यापक पैमाने पर बोली और समझी जाती है)

राष्ट्रीय दिवस— क. स्वाधीनता दिवस २६ मार्च ।
ख. विजय दिवस १६ दिसम्बर ।
ग. शहीद दिवस २१ फरवरी ।

प्रमुख नदियाँ— मेघना, ब्रह्मपुत्र, पद्मा, यमुना, सुरमा, कर्णफूली ।

महत्त्वपूर्ण फसलें—जूट, चावल, तम्बाकू, चाय, ईख, दालें ।

महत्त्वपूर्ण उद्योग—जूट, चीनी, कागज, वस्त्र, सीमेंट, प्राकृतिक गैस, अखबारी कागज ।

बन्दरगाह— चटगाँव, कालना (खुलना)

हवाई अड्डे— ढाका (अंतर्राष्ट्रीय), चटगाँव, जेसोर, सिलहट, कुमिल्ला, कॉक्स बाजार, ईश्वर्दी ।

रेडियो स्टेशन— ढाका, चिरगाँव, राजशाही, खुलना, रंगपुर, सिलहट ।

टेलीविजन— ढाका ।

बिजली— २२० वोल्ट ए. सी. सभी नगरों एवं कसबों में ।

भ्रमण-काल— अक्टूबर से मार्च ।

संचालित पथ प्रदर्शक भ्रमण एवं शिक्षित पथ-प्रदर्शकों की सहायता ढाका एवं चटगाँव में उपलब्ध है ।

बांगला देश की मुद्रा का विनिमय-मूल्य—ढाका १८·९७=१ पौंड ।
ढाका ७·३३=१ अमेरिकी डॉलर

हस्तशिल्प एवं उपहार योग्य सामग्री—गुलाबी, मोती, मुस्लिम वस्त्र, रूपहरी जरदोजी का काम, बेंत और शंख से बनी वस्तुएँ, टेराकोटा, खिलौने, गुड़िया-निर्माण, हाथ से बने वस्त्र, शीतलपाटी ।

खेल— फुटबॉल, वौलीबॉल, बास्केट बॉल, कबड्डी, दरजाबंध ।

त्यौहार एवं मेले—ईद-उल-अजा २७, २८ जनवरी ।
बंगाली नव वर्ष दिवस १४ अप्रैल ।
ईद-ए-मीलादुल नबी २० अप्रैल ।

बुद्ध-पूर्णिमा २७ अप्रैल ।
दुर्गा पूजा १४ और १५ अक्टूबर ।
ईद-उल-फितर ८ और ६ नवम्बर ।
नवान्न १६ से १६ दिसम्बर ।
क्रिसमस २५ दिसम्बर ।
मुहर्रम २६ फरवरी ।
चैत्रसंक्रांति १३ अप्रैल ।
फतेहा याजदाहम २५ मई ।
शब-ई-मिराज ७ सितम्बर ।
शब-ई-बारात २६ सितम्बर ।
लक्ष्मी पूजा २२ अक्टूबर ।
जमातुल विदा ३ नवम्बर ।
शब-ई-कद्र ५ नवम्बर ।
माघी पूर्णिमा फरवरी ।

× × ×